Regd. No. P. 8

वर्ष ५] श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः संख्या १]

श्रीव्यासपूजा संख्या

भागवत

एकमात्र

पारमार्थिक

मासिक पत्र

५ गोविन्द
गौराब्द
४५२

फाल्गुण कृष्ण ५
संवत
१९८५ वि०

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि-लक्षण, फलाभिसन्धान-रहित, ऐकान्तिकी
[illegible] भक्ति उदय होती है, [illegible] मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है—
[illegible] बलसे अनर्थ उपशान्त होनेसे आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है।

[illegible]-त्रि[illegible]स्वामी श्रीभक्तिभूदेव श्रौती महाराज (वार्षिक [illegible])

[illegible] Sree Bhakti Bhudeb S[illegible]

विषय सूची

उद्देश्य

शुद्ध भगवद्भक्तिका प्रचार करना

प्रबन्ध-सम्बन्धी

(१) यह पत्र प्रति मास ५ कृष्णको प्रकाशित होता है।

(२) इस पत्रकी डाकव्यय सहित वार्षिक भिक्षा १) है।

(३) इस पत्रकी प्रति संख्याकी भिक्षा ~)॥ है।

लेख-सम्बन्धी

लेखकोंको केवल भागवत धर्म सम्बन्धी लेख ही भागवत पत्रमें छपनेके लिये सम्पादक "भागवत" के पतामें भेजना चाहिये। जो लेख सम्पादकको पसन्द न होगा वह नहीं छापा जायगा और वापस भी नहीं किया जायगा।

विज्ञापन-सम्बन्धी

"भागवत" में विज्ञापन छपाईका दर नीचे लिखा है :—

साधारण पृष्ठ

प्रति संख्या

पूरा पृष्ठ या दो कालम	..	८)
आधा "	..	५)
चौथाई "	...	३)
२ इंच "	..	१॥)
१ " "	...	१)

स्थायी विज्ञापन और कवरपर विज्ञापन छपानेका रेट नीचे लिखे पतेपर पत्र-व्यवहार द्वारा तय करना चाहिये।

पत्र व्यवहारका पता -

मैनेजर—"भागवत"

श्रीगौड़ीयमठ,

[illegible] पटना।

All communications are to be addressed to

The Man[illegible] "Bh[illegible]

[illegible]

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

भागवत

कृष्णे स्वधामोपगते धर्म्मज्ञानादिभिः सह। कलौ नष्टदृशामेषः पुराणार्कोऽधुनोदितः॥

श्रीगौड़ीयमठ, मोरापुर (पटना)

वर्ष ५ [illegible] संख्या १

नम ॐ विष्णुपादाय कृष्णप्रेष्ठाय भूतले।
श्रीमते भक्तिसिद्धान्तसरस्वतीति नामिने॥
श्रीवार्षभानवीदेवीदयिताय कृपाब्धये।
कृष्णसम्बन्धविज्ञानदायिने प्रभवे नमः॥
माधुर्य्योज्ज्वलप्रेमाढ्य—श्रीरूपानुगभक्तिद।
श्रीगौरकरुणाशक्तिविग्रहाय नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते गौरवाणी—श्रीमूर्त्तये दीनतारिणे।
रूपानुगविरुद्धापसिद्धान्तध्वान्तहारिणे॥

श्रीश्रीप्रभुपादपद्म-स्तवकम्

(श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर स्वामिपाद विरचितम्)

सुजनार्बुदराधितपादयुगं
युगधर्मधुरन्धरपात्रवरम् ।
वरदाभयदायकपूज्यपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥१॥

भजनोर्जित-सज्जन-सङ्घपतिं
पतिताधिक-कारुणिकैकगतिम् ।
गतिवञ्चितवञ्चकाचिन्त्यपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥२॥

अतिकोमलकाञ्चनदीर्घतनुं
तनुनिन्दितहेममृणालमदम् ।
मदनार्बुदवन्दितचन्द्रपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥३॥

निजसेवकतारकरञ्जिविधुं
विधुताहितहुङ्कृतसिंहवरम् ।
वरणागतबालिशशन्दपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥४॥

विपुलीकृतवैभवगौरभुवं
भुवनेषु विकीर्तितगौरदयम् ।
दयनीयगणार्पितगौरपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥५॥

चिरगौरजनाश्रयविश्वगुरुं
गुरुगौरकिशोरकदास्यपरम् ।
परमादृतभक्तिविनोदपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥६॥

रघुरूपसनातनकीर्तिधरं
धरणीतलकीर्तितजीवकविम् ।
कविराजनरोत्तमसख्यपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥७॥

कृपया हरिकीर्तनमूर्तिधरं
धरणीभरहारकगौरजनम् ।
जनकाधिकवत्सलस्निग्धपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥८॥

शरणागतकिङ्करकल्पतरुं
तरुधिक्कृतधीरवदान्यवरम् ।
वरदेन्द्रगणार्चितदिव्यपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥९॥

परहंसवरं परमार्थपतिं
पतितोद्धरणे कृतवेशयतिम् ।
यतिराजगणैः परिसेव्यपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥१०॥

वृषभानुसुतादयितानुचरं
चरणाश्रितरेणुधरस्तमहम् ।
महदद्भुतपावनशक्तिपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥११॥

वर्षारम्भ

भागवतके पंचम वर्षका आरम्भ हुआ। बालक का पांचवां वर्ष होनेसे पितामाताको बहुत ही आनन्द होता है। वे बच्चोंके अध्ययन का बन्दोबस्त करते हैं। किन्तु इसे बालक होनेपर भी इसको ऐसा नहीं समझना चाहिये। भागवत नित्य सत्यधर्मका प्रचारक है। नीतिवादियोंके विचार हैं—

"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्", अर्थात् सत्य बोलो, और वह प्रिय हो; अप्रिय सत्य मत बोलना। किन्तु धर्म राज्यमें ऐसा विचार नहीं चलता। [illegible] । वह कपट क्या है? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। जो इन चारों वस्तुओंका याचक है, वही कपटी है, किन्तु भागवत में कहा गया है:

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥

(भागवत १।१।२)

महामुनि वेदव्यासकृत श्रीमद्भागवतमें हिंसारहित साधुओंका धर्म निरूपित हुआ है। उस धर्म में धर्म, अर्थ, काम या मोक्षकी अभिलाषा भी नहीं है। इस शास्त्रकी आलोचनासे त्रिताप जड़से नष्ट हो जाते हैं, और श्रवणकारी सुकृतिमान व्यक्तियोंके हृदयमें हरि फौरन अवरुद्ध हो जाते हैं। सुतराम्, भागवतके सिवा और किसी भी शास्त्रकी जरूरत नहीं है। श्रीमद्भागवतकी वाणीके प्रचारक इस भागवत-पत्रकी बोली सुतरां वही है।

भागवत आभासवादोंको बिलकुल स्थान नहीं [illegible] कि भागवतका कहना है—

न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा
न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः॥
तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो
यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यत्
शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः॥

(भागवत १।५।१०।११)

जो वाक्य या ग्रन्थ विचित्र पदविशिष्ट होकर भी भुवनपावन भगवान्‌की महिमाका कीर्त्तन नहीं करता, ज्ञानीलोग उसे वायसतीर्थ (कौएका उच्छिष्ट स्थान जहां बहुत ही गंदा रहता है) अर्थात् कौएके तुल्य कामीगणका रतिस्थान कहते हैं, उसमें सत्व गुणयुक्त मनमें स्थित रहने वाले मुनिलोगोंको कभी भी आनन्द नहीं होता, क्योंकि इनलोगोंका निवास सदा कमलनाथ ब्रह्ममें ही है। परन्तु जिस वाक्य या ग्रन्थमें भगवान् अनन्तदेवके महिमायुक्त नामोंका वर्णन है उसमें मामूली शब्द रहनेपर भी साधुगण उसीका श्रवण, कीर्त्तन तथा गान करते हैं क्योंकि वह शब्द जगतके पापोंका विनाश करता है। भागवतमें कर्म, ज्ञान, योग तथा अन्यान्य साधारण धर्मका विचार नहीं किया जाता है। अन्याभिलाषीलोगोंकी कोई प्रिय बातें भी इसमें नहीं प्रकाशित की जाती। किन्तु भागवत-धर्मके मूल पुरुष भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य तथा उनके प्रधान पार्षद श्रीरूपगोस्वामी के प्रचारमें यही सिद्धान्त है—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

भागवत उसी शुद्ध भक्ति धर्मका प्रचारक है, जिस धर्ममें भगवत्सेवाके अतिरिक्त दूसरी अभि-

लापा नहीं है, और जो ज्ञान, कर्म तथा अन्यान्य साधनोंके द्वारा आरम्भ होता है। पर जिन जिन कामोंमें भगवान्‌के चिन्तन-मनन होते हैं, उन्हीं कामोंको भक्तिके अनुकूल भावसे करनेका यह उपदेश करता है।

"सत्यं परं धीमहि" अर्थात् उसी परम सत्य भगवानका ही हमलोग ध्यान करते हैं। यही भागवतका मूलमंत्र है। भागवत और किसीके चिन्तन वा सेवाकी बातें नहीं उच्चारण करता। भगवान् कृष्णचन्द्र ही एकमात्र नित्यकाल विराजते हैं इसीलिये उन्हें केवल "सत्य" कहा जाता है। न तो प्रलयमें उनका नाश होता है न फिर सृष्टिमें जन्म। परन्तु उनके श्रीमुखका यही वचन है

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥
(भागवत २।९।३२)

श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कहा है कि सृष्टिके पहिले मैं ही था, अन्य कुछ नहीं था; सृष्टिके उपरान्त भी मैं रहता हूं और अन्तमें भी मेरा अवस्थान होगा। सुतराम्, उसी नित्यवस्तुके उपासकलोग सदा उन्हींकी उपसना करते हैं। वे लोग भी नित्य हैं।

उस सत्यवस्तुकी उपासनामें अन्य अभिलाषा भी नहीं है। वनियेके समान कोई भाव उसमें आ ही नहीं सकता। आनेपर भी करुणामय भगवान् कृपावश उस अभिलाषको हटाकर अपना आसन उसके हृदयमें बिछा लेते हैं। अतएव भागवत पत्रके आश्रय करना।

चिद्विलास

(श्रीयुत डा० अवध बिहारीलाल कपूर, एम० ए०, पी० एच० डी०)

मनुष्यमें विचार करनेकी शक्ति है। इसीलिये सांसारिक जीवोंमें उसका दर्जा सबसे ऊंचा है। परन्तु उसमें एक बहुत बड़ी कमजोरी यह है कि वह प्रत्येक वस्तुको जो किसी न किसी रूपमें उसके विचारक्षेत्रमें प्रवेश करती है अपने दृष्टिकोणसे ही देखनेकी चेष्टा करता है। इस कमजोरीके कारण मनुष्यने व्यावहारिक क्षेत्रमें तो निस्सन्देह अगणित भूलें की हैं, किन्तु धर्म तथा ज्ञानक्षेत्रमें भी उसकी अनेक त्रुटियोंका प्रधान कारण यही है। वह भगवानमें नरत्वका आरोप करता है, पारमार्थिक जगतको जड़जगतके देश-कालकी सीमाओंमे बांधनेकी चेष्टा करता है और भगवान् और भक्तोंके चिद्विलासको सांसारिक तथा जड़शरीरधारी जीवोंके भोग-विलासके समान समझता है।

दर्शनशास्त्रमें निर्विशेषवाद और साधनमार्गमें विरागकी उत्पत्ति इसी भूलसे हुई है। सांसारिक वस्तुओंके नाम रूप गुणादि सीमाबद्ध तथा नश्वर हैं। इसीलिये बहुतसे दार्शनिकोंका मत है कि भगवान् जो अनन्त और चिरस्थायी हैं रूप-गुणादि से सम्पन्न नहीं हो सकते। उनके बारेमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वह निर्विशेष निर्गुण तथा निर्लेप हैं। इसीप्रकार सांसारिक-विषयभोगोंको नश्वर और दुःखप्रद देखकर बहुतसे लोग विचार करते हैं कि पारमार्थिक ... एवं विला-

मिताका कोई स्थान नहीं हो सकता । परन्तु पारमार्थिक जगत्‌में जिस प्रकार निर्विशेष और सविशेषमें कोई विरोध नहीं है उसी प्रकार विलास और विरागमें भी परस्पर विरोध नहीं है। भगवान् अनन्त और अखण्ड होते हुए भी निर्विशेष हैं। और किसी प्रकारके विषयभोगकी इच्छा न रखते हुए भी अपने नित्य पार्षदोंके साथ लीला-विलासमें सदा लिप्त रहते हैं। उनकी इन्द्रियाँ बद्ध जीवोंकी भांति नश्वर और प्राकृत नहीं हैं। वह सच्चिदानन्द विग्रह हैं—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥

और इसी कारण उनकी इन्द्रियों और क्रियाओंमें एक अद्भुत विचित्रता है—

अङ्गानि यस्य सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति
पश्यन्ति पान्ति कलयन्ति चिरं जगन्ति।
आनन्दचिन्मयसदुज्ज्वलविग्रहस्य
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥
(ब्र० सं०)

निर्विशेष ब्रह्म जिसमें चिद्‌विलासका कोई स्थान नहीं, केवल ज्ञानियोंकी कल्पनामात्र है। यह भगवानका कृत्रिम और असम्पूर्णरूप है। ज्ञानी तभी तक उसकी प्रशंसा किया करते हैं और उसके ध्यानमें लीन रहते हैं जब तक भगवान्‌की विलास मूर्तिके दर्शनसे वह वंचित रहते हैं। नारायण कविने क्या ही अच्छा कहा है--

चाहे तू योग करि भृकुटी मध्य ध्यान धरि,
चाहे नाम-रूप मिथ्या जानिकै निहारि लै।
निर्गुन, निर्भय, निराकार ज्योति व्याप रही,
ऐसो तत्त्वज्ञान निज मनमें तू धारि लै ॥
नारायन अपनेको आपही बखान तू,
मोतें वह भिन्न नहीं या बिधि पुकारि लै।
जौं लौं तोहि नन्द-कुमार नाहिं दृष्टि पर्यो,
तब लौं तू बैठि भले ब्रह्मको बिचारि लै ॥

प्राकृत जगत् अप्राकृत जगत्‌की प्रतिछबिके समान है। इसीलिये अप्राकृत जगत्‌में जो अत्यन्त उत्कृष्ट है वही प्राकृत जगत्‌में अत्यन्त निकृष्ट है। प्राकृत जगत्‌में विलास दुःखका कारण है परन्तु अप्राकृत जगत्‌में वह परमानन्दका देने वाला है। चतुःसन और शुकदेवादि मुनिगण उच्चकोटिके वैरागी थे, परन्तु वह भी चिद्‌विलासके सौन्दर्यमें आकर्षित हुए थे और उन्होंने शान्त रसकी अपेक्षा, जिसमें जीव मुक्त होकर निरपेक्षतापूर्वक अवस्थान करता है, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य रसकी श्रेष्ठता स्वीकारकी थी जिनमें चिद्‌विलास उत्तरोत्तर पूर्णताको प्राप्त होता है।

वास्तवमें अप्राकृत जगत्‌में विलास और विराग परस्पर विरोधी न होकर एक दूसरेके सहयोगी हैं। माधुर्य रसमें विलास सबसे अधिक प्रस्फुटित होता है और विराग भी यहीं अपनी पराकाष्ठापर पहुँचता है। जहाँ पर समस्त क्रियाओंका एकमात्र तात्पर्य भगवान्‌को सुख पहुँचाना है वहाँ 'विलास' और 'विराग' का पारस्परिक सहयोगी होना स्वभाविक ही है। वहां तो भक्त उस प्रेमानन्दका भी तिरस्कार करता है जो कृष्ण सेवानन्दमें बाधा डालता है—

"निज प्रेमानन्दे यदि कृष्ण-सेवानन्द बाधे।
से आनन्देर प्रति भक्तेर हय महाक्रोधे" ॥
लोकधर्म्म, वेदधर्म्म, देहधर्म्म कर्म्म।
लज्जा, धैर्य्य, देहसुख, आत्मसुख मर्म्म ॥
दुस्त्यज्य आर्य्यपथ, निज परिजन।
स्वजने करये जत ताड़नभर्त्सने ॥

सर्व्व त्याग करि करे कृष्णेर भजन।
कृष्णसुख हेतु करे प्रेम सेवन ।
इहाके कहिये कृष्णे दृढ़ अनुराग।
स्वच्छधौत वस्त्रे जैछे नाहि कोन दाग ॥

गोपियोंके जितने भी काम हैं सब कृष्णके हेतु हैं। उनका तन, मन, धन सब भगवान्‌को ही समर्पित है। अपने शरीरसे जो उनको आसक्ति मालूम पड़ती है वह भी भगवान्‌के लिये ही है। कविराज गोस्वामी गोपियोंके अपनी देहकी रक्षा और श्रृंगारादि करनेका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

तबे जे देखिये गोपीर निज देहे प्रीति ।
सेहो त कृष्णेर लागि जानिह निश्चित ॥
एइ देह केलुँ आमि कृष्णे समर्पण ।
तार धन, तार एई सम्भोग साधन ॥
एदेह दर्शन स्पर्शे कृष्ण सन्तोषण ।
एइ लागि करे अङ्गेर मार्जन भूषण ॥

नामाचार्य श्रील ठाकुर हरिदास (२)

जब ठाकुर हरिदाससे नवाबने कहा कि "काफिर हो गये हो, आप यवन हो। तब आप वदने ना छाड़ि हरिनाम" और उनको समझाया कि पिता-मातासे प्राप्त यह जन्म-देह चिरस्थायी नहीं है। मायिक वस्तुका नाम (मनुष्यका दिया हुआ) कल्पित है। परन्तु वैकुण्ठनाम तथा भगवान् एक ही वस्तु है। अतएव नामसेवा परित्यागकर मैं स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरसे अवस्थापन नहीं कर सकता। श्रौत पथ अवलम्बनकर मैंने वैकुण्ठनाम प्राप्त किया है, उस कृष्णकीर्त्तनके अतिरिक्त मेरा और कोई कर्त्तव्य नहीं है। उसको छोड़कर मैं कभी भी मनुष्यकल्पित सामाजिक आचार ग्रहण नहीं करूंगा। इसके लिये समाज तथा काजी मुझे जो दण्ड दें उसे मैं सहन करूंगा।

ठाकुर-हरिदासके कहे हुए सिद्धान्तको सुनकर नवाबने काजीसे पूछा कि अब क्या करना चाहिये। तब श्रौतपन्थी वैकुण्ठ-शब्दनिष्ठ जगद्‌गुरु ठाकुर हरिदास तथा उनके प्रचारित सत्यका विलोप करनेके लिये श्रुतिविरोधी असुर काजी बोला कि प्यादे-लोग इसको बाइस -बाजारोंमें घुमाकर बेंतोंसे मारें जिससे इसके प्राण निकल जायं, इसमें और कुछ विचार न किया जाय। यही हिन्दुत्व ग्रहणकर हिन्दुओंके घृणित आचारको स्वीकारपूर्वक हिन्दुओंके देवताओंके नाम-ग्रहणरूप पापका उचित दण्ड है। इतनी मार खानेपर भी यदि हरिदास जीता रहे तब वह निष्कपट तथा सत्यवादी समझा जायगा, और यदि वह मार खाते खाते मर जायगा तो उसको उपयुक्त दण्ड ही मिला। तब काजी प्यादोंको पुकारकर गरजकर बोला कि इसको बाइस बाजारोंमें घुमाकर इतनी मार मारना कि इसके प्राण निकल जाय। सत्योपासक ठाकुर-हरिदासमें जाति बुद्धिकर, उनके शरीरको नष्टकर उनको उद्धार करनेका विचार प्रकट करते हुए काजी बोला कि यवन होकर यह हिन्दुआनी करता है। अतएव प्राणान्त होनेसे यह इस पापसे छुटकारा पायगा। जो लोग यवन-धर्म छोड़कर काफिर हिन्दूका धर्म तथा आचार ग्रहण करते हैं, प्राणदण्ड ही उनकी उचित सजा है।

सत्यविरोधी काजीकी बातें मानकर नवाबकी आज्ञासे प्यादे-लोग ठाकुर-हरिदासको पकड़कर ले गये और प्रति बाजारमें घुमा घुमाकर क्रोधपूर्वक मारने लगे। जो लोग वैष्णवोंके प्रति विद्वेष करते

हैं, उनलोगोंका पाप परिपूर्णता प्राप्त करता है। पाखण्डी काजीके ठाकुर-हरिदासके प्रति द्रोह करनेके कारण, वह एवं नवाब तथा उनके अनुचरगण, सभी महा-पापके भागी हुए। परन्तु ठाकुर हरिदास निरन्तर "कृष्ण कृष्ण" स्मरण करते हुए नामानन्दमें मग्न थे और इसलिये शारीरिक दुःखका अनुभव नहीं करते थे। ठाकुर-हरिदासके प्रति महा अत्याचारकी बातें देख तथा सुनकर, सज्जनगण अत्यन्त दुःखित हुए। उन लोगोंमेंसे किसी किसीने कहा कि वैष्णव-विरोधके कारण देशमें शीघ्र ही महा अमङ्गल होगा। वैष्णव-विद्रोहके कारण ही पृथ्वीमें दुर्भिक्ष, अनावृष्टि, महामारी, विप्लव, भूकम्प प्रभृति नाना प्रकारके क्लेश उत्पन्न होते हैं। भक्त-द्रोहके कारण किसी किसी सत्यविश्वासीके मनमें समग्रदेशके नाश हो जानेकी आशङ्का होने लगी। किसी किसीने कहा कि यह राज्य शीघ्र ही उजड़ जायगा। कोई क्रोधवश राजा तथा वजीरको शाप देने लगे तथा कोई यवन लोगोंको करबद्ध कहने लगा कि इसको कम-कम मारोगे तो मैं तुम्हें इनाम दूंगा। तोभी दुष्टलोगोंको दया नहीं आती थी और वे प्रति बाजारमें अत्यन्त क्रोधपूर्वक मारते जाते थे। परन्तु कृष्णकी अद्भुत कृपासे हरिदास ठाकुरके श्रीअंगपर इतना प्रहार पड़नेपर भी उनको प्रह्लादके सदृश लेशमात्र भी क्लेश नहीं हुआ।

हिरण्यकशिपुने जिसप्रकार अपने महाभागवत पुत्र प्रह्लादको नाना प्रकारसे कष्ट देकर बध करनेकी चेष्टाकी थी, महापापी यवनगण भी उसी प्रकार हरिदास-ठाकुरको क्लेश देकर मारनेकी चेष्टा करने लगे, किन्तु तिसपर भी उन्होंने भक्तराज प्रह्लादकी नाईं लेशमात्र भी दुःख-क्लेशका अनुभव नहीं किया। महाभागवतगणोंकी इसप्रकारकी सहिष्णुता स्वाभाविक होती है। वे भगवत्सेवामें प्रतिक्षण इसप्रकार व्यस्त तथा निरत रहते हैं कि भगवद्बहिर्मुख संसारके लोगोंकी हिंसा-वृत्ति उनको किसी प्रकारसे उद्विग्न करनेमें समर्थ नहीं होती। श्रीमन्महाप्रभुने इसीलिये शिक्षाष्टकमें कहा है कि जो वृक्षके सदृश सहिष्णुता-गुण सम्पन्न हैं वे ही कृष्ण-कथा कीर्त्तन करनेमें समर्थ होंगे, दूसरे नहीं। यदि साधक सहिष्णुता रहित हों, तो वे हरि-कीर्त्तन नहीं कर सकेंगे; कारण संसारमें असंख्य स्थानोंमें देखा गया है कि सब प्रकारके शुभदायक सत्य कथा प्रचारक हरिकीर्त्तनकारीको ईशविमुख जन अन्याय-पूर्वक आक्रमण करते हैं, एवम् उनके हरिकीर्त्तन-रत-मुखको बन्द करनेके लिये नानाप्रकारसे चेष्टा करते हैं। कुल वा जातिमद, धनमद तथा अपरा-विद्यामदसे प्रमत्त दुष्प्रवृत्त-समाज एक मात्र वास्तव-सत्यवस्तु हरि संकीर्त्तनको समस्तरूपसे बाधा देनेके लिये सर्वदा यत्न करते हैं, यहां तक कि, कपटकर वे लोग नाममात्रके हरिसंकीर्त्तन दलमें योगदान करनेका असद्रूपसे छल करके भी सत्यवस्तु हरि-नामके प्रति अव्यक्तरूपसे विरोध करते हैं।

असुरलोगोंके अत्यन्त प्रहार करनेपरभी हरि-दास-ठाकुरको किसीप्रकारका शारीरिक दुःख नहीं हुआ। यह बात तो दूर रहे उनकी सहिष्णुताका वृत्तान्त स्मरण करनेसे ही मनुष्यके सभीप्रकारके दुःख विनष्ट हो जाते हैं। वे उन पापी सत्य-विरोधी असुरलोगोंकीके कल्याणकी चिन्ता हृदयमें धारण करने लगे और अपने प्रभु श्रीकृष्णके समीप उन-लोगोंके अपराधको क्षमा करनेके लिये प्रार्थना करने लगे। जोलोग भागवत-वैष्णवगणोंके विरुद्ध आचरण करते हैं, उनसब अपराधियोंके दुराचारके लिये साधुगण उनलोगोंके मङ्गल तथा, उद्धारके लिये उत्-

लोगोंको अत्यन्त दयाका पात्र समझकर हृदयमें अतिशय दुःख अनुभव करते हैं। ख्रीष्ट तथा हजरतके चरित्रमें भी इस प्रकारका चित्र देखनेमें आता है। हरिदास ठाकुर हृदयमें कहने लगे "हे कृष्ण इन जीवोंपर कृपा कीजिये। मुझसे द्रोह करनेके कारण इनको अपराध न हो।" भगवद्भक्तोंके प्रति विरुद्ध आचरण करनेसे भगवान् भयानकरूपसे असन्तुष्ट होते हैं। महा-पापी यवनलोगोंका अपने ऊपर अत्याचार होनेके कारण भगवानकी अप्रसन्नता देखकर ठाकुर-हरिदासजीने भगवानके चरणोंमें उनलोगोंके कल्याणके लिये प्रार्थना की थी। परन्तु पापीलोग ठाकुर-हरिदासको तीन बाजारमें घुमाते हुए उनपर प्रहार करते जाते थे और उनके प्राण लेनेके लिये यथेष्ट चेष्टा करते थे। किन्तु ऐसा करने पर भी जब उनके प्राण नहीं निकले तथा उस प्रहारकी स्मृति भी उनको नहीं हुई तब यवनलोग सोचने लगे कि इतनी मार खानेपर क्या मनुष्यके प्राण रह सकते हैं? दो तीन बाजारमें मारनेसे ही तो आदमी मर जाता है परन्तु बाइस बाजारोंमें मारनेपर भी यह मृत्युको प्राप्त नहीं हुआ बल्कि कभी कभी हँसता भी है! यह मनुष्य क्या पीर है?-- ऐसा सब मन ही मन सोचने लगे कि साधारण बद्धजीवगण बाहरी संसारके चिन्ता-स्रोतमें बिल्कुल ही विमूढ होकर अपने अपने चंचल मनको ही व्यावहारिक कार्योंका परिचालक समझते हैं। किन्तु भगवद्भक्तगण हरिसेवामें निरन्तर व्यस्त रहकर बाहरी विषयोंका भोग करनेके लिये कभी अपनेको नियुक्त नहीं करते। संसारी जड़-वस्तु या किसी घटनाके विषयमें उन्हें बाहरी- देह तथा भीतरी-मनकी स्मृति किसी प्रकार नहीं रहती सम्पूर्णरूपसे देहात्मबोध-विस्मृति हो जाती है उनकी कृष्णनाममें प्रीति, जड़ वस्तुमें उदासीनता तथा निर्दोष-आनन्दमय अवस्था बनी रहती है।

तब उग्र-प्रहारकारी यवन-भृत्यगण हरिदास-ठाकुरसे कहने लगे कि इतना प्रहार करनेपर भी तुम्हारा प्राण नहीं निकला इसलिये मालूम पड़ता है कि तुमको लेकर हमलोगोंका सर्वनाश होगा। प्रहार-कर यदि तुम्हारा- प्राण हमलोग नहीं ले सकें तो काजी क्रोधके वश हमलोगों को मरवा डालेगा। तब हरिदास ठाकुरने कहा कि तुमलोगोंके द्वारा अत्यन्त प्रहृत होकर भी यदि मेरे प्रकट अवस्थामें तुमलोगोंका किसी प्रकार का अनिष्ट हो तो तुमलोगोंके उस अमङ्गलके विनाशके लिये तथा तुम्हारे मङ्गलके लिये मैं इसी समय देह त्याग कर सकता हूँ -ऐसा कहकर वे शुद्धसत्व-हृदयमें चिन्मय भगवद्ध्यानमें मग्न होकर शुद्ध समाधि-अवस्थामें मृतवत हो गये। भगवद्भाव समाधिके कारण प्रभु हरिदास चेष्टारहित हो गये और अब उनका निःश्वास-प्रश्वास बन्द हो गया ऐसा देखकर यवनगण विस्मित हो गये और उनको उठाकर नवाबके द्वार पर ले गये। तब सत्य-विरोधी नवाब तथा काजी समाधियोगाश्रित जगद्गुरुको शव समझकर अपने अपने चित्तवृत्तिके अनुसार यों व्यवस्था करने लगे:

नवाबने कहा कि इसको ले जाकर मिट्टी दो परन्तु काजीने इस बातको स्वीकार नहीं किया और उन्होंने कहा कि ऐसा करनेसे इसकी सद्गति हो जायगी। वह घोर पाखण्डको प्रकट करते हुए कहने लगा कि हरिदासने अति-श्रेष्ठ यवनकुलमें जन्म ग्रहण करके भी नीच कर्म किया अर्थात हिन्दुओंके देवताका नाम ग्रहण किया अतएव इसको मिट्टीमें न गाड़कर गङ्गाजीमें फेंक दो जिसमें इसकी सद्गति न हो और यह अनादि-काल तक दुःख भोगता रहे। तब काजीके आज्ञानु-

सार यवनलोग ठाकुर-हरिदासको उठाने लगे परन्तु वे ध्यानानन्दमें निश्चल हो गये और साक्षात् विश्वम्भर उनके शरीरमें प्रकाशित हुए। उनको हटानेके लिये बहुतसे बलवान-यवन चेष्टा करने लगे परन्तु प्रभु महास्तम्भके सदृश निश्चल थे। कृष्णानन्दसुधा-सिन्धुमें मग्न रहनेके कारण ठाकुरका बाह्य प्रकाश नहीं था। वे कब अन्तरीक्षमें, कब पृथ्वीपर तथा कब गङ्गामें थे इसे बातकी स्मृति उन्हें नहीं थी। प्रह्लादको जिस प्रकार भगवान् वसुदेवके प्रति स्वाभाविक रति थी, बाल्यावस्थामें अनित्य क्रीड़ादि परित्याग करके जिस प्रकार भगवान श्रीकृष्णके निरन्तर ऐकान्तिक-स्मरणके प्रभावसे कृष्णकी सेवायुक्त चित्त तथा कृष्णाक्रान्त-हृदय होकर वह सम्पूर्णरूपसे संसारी विषय ज्ञान-शून्य थे, जिसप्रकार गोविन्द-परिरम्भित होकर वह उपवेशन, पर्यटन, भोजन, शयन,पान तथा वाक्य-उच्चारण करके भी इन सकल चेष्टाओंका अनुसन्धान नहीं करते थे—केवल अभ्यासवश ही सम्पादन करते थे—उसीप्रकारकी रति ठाकुर-हरिदासकी भगवानके चरणारविन्दमें थी। जिन ठाकुर-हरिदासके हृदयमें भगवान गौराङ्गदेव प्रत्यक्षरूपसे निरन्तर निवास करते थे उनको बाहरमें क्या हो रहा है इस बातकी सुधि नहीं थी। लङ्का विजय करनेके समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके नित्यसिद्ध पार्षद हनुमानजीने जिस प्रकार राक्षसराज रावणके पुत्र इन्द्रजीतके छोड़े हुए ब्रह्मास्त्रके बन्धनमें पड़कर ब्रह्मास्त्रके सम्मानकी रक्षाकी थी, उसीप्रकार ठाकुर-हरिदासने भी समस्त जगत्के समक्ष सर्वोत्तम सहिष्णुताका आदर्श उपस्थित करनेके लिये यवनोंके भीषण निष्ठुर प्रहारको स्वीकार किया था। ठाकुरने अपने आचरणद्वारा संसारके लोगोंको उपदेश दिया है कि हरिनाम ग्रहण करनेमें चिरकाल दुर्गति हो तथा प्राण भी निकल जाय तौभी भगवद्भजन नहीं छोड़ना चाहिये। कृष्णानन्दमें मग्न ठाकुर-हरिदासको गङ्गामें फेंककर जब यवनलोग चले गये तब वे बहकर ईश्वर-इच्छासे कुछ देरमें किनारे लगकर परमानन्दमें मग्न होकर उठे और उच्च स्वरसे कृष्णनाम ग्रहण करते हुए फुलिया नगरमें पहुँचे। उनकी अद्भुत शक्तिको देखकर यवन लोगोंकी उनके प्रति हिंसावृत्ति विनष्ट हो गई और उनलोगोंका मन निर्मल हो गया। सबोंने उनको पीर समझकर नमस्कार किया और पापोंसे निस्तार पा गये। तब नवाबने सम्भ्रमके साथ हाथ जोड़कर कहा कि मुझे अब ठीक मालूम पड़ता है कि आप बहुत बड़े पीर हैं। साधारण योगी वा ज्ञानी अपने बड़प्पनको दिखलानेके लिये अद्वय-ज्ञानकी (भगवत्-ज्ञानकी) बातें बोल सकता है परन्तु वास्तवमें आप ही सिद्ध महापुरुष हैं। तब नवाबने अपने किये अपराधको क्षमा करनेके लिये प्रार्थना की, और कहा कि आप समदर्शी एवं शत्रु-मित्र रहित हैं। इन तीनों भुवनोंमें ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो आपको पहचान सके। संसारके लोग इन्द्रियज-ज्ञान द्वारा महा भागवत परमहंस-वैष्णवको नहीं पहचान सकते। अब आप निज इच्छानुसार गङ्गा-तटपर निर्जन गुफामें वासकर भजन कीजिये अथवा विचरणकर संसारके लोगोंका मंगल कीजिये—जैसी इच्छा हो वैसाही कीजिये। यवनगण साधारणतः भगवद्भक्ति रहित होते हैं। अन्याभिलाषी, कर्मी तथा ज्ञानी प्रभृति अभक्त सम्प्रदायगण महाभागवत श्रेष्ठ ठाकुर-हरिदासके औदार्य एवं माहात्म्यके दर्शनकरनेसे उनको अपने-अपने-विषयोंकी उपलब्धि होनेसे छुटकारा मिलती है। नितान्त ईश-विमुख

पापिष्ट जीवगण भी उनका दर्शनकर अपनी भक्ति-विरोधी-चेष्टाको भूलकर मुग्ध हो गये थे । अहो, महाभागवत परमहंस वैष्णव-शिरोमणिकी कैसी अलौकिक महिमा है ! ठाकुर-हरिदाससे विरोध करनेवाले जिस नवाबने पहले भीषण क्रोधवश ठाकुरको अति कठिन दण्ड देनेके लिये अपने समीप पकड़वाकर मंगाया था उसी विष्णु-वैष्णव विरोधी महा-पापी व्यक्तिने कैसे अन्तमें ठाकुरकी अलौकिक क्षमा तथा सहिष्णुताका ज्वलन्त आदर्श देखकर अतिशय विस्मित तथा मुग्ध होकर उनको ईश्वर-प्रेरित अनिमर्त्य (मृत्युसे अतीत) महापुरुष समझकर पूज्य समझा ! इतना ही नहीं, वह पाखण्डी महापराधी अनुतापरूपी अग्निसे दग्ध होकर अपने अपराधको क्षमा करानेके लिये प्रार्थनाकर ठाकुरके चरण-कमलकी वन्दना करनेके लिये भी बाध्य हुआ ।

फुलियाके काजीके अत्याचार तथा नवाबकी यन्त्रणासे छुटकारा पाकर ठाकुर-हरिदास फुलिया-ग्रामनिवासी ब्राह्मणोंके नित्य-कल्याण साधनके लिये उच्च स्वरसे हरिनाम करते ब्राह्मणोंके समीप उपस्थित हुए। सङ्कीर्ण-साम्प्रदायिकता तथा सामाजिक भक्ति विद्वेषवश किसी किसी ब्राह्मणपद-वाच्य पुरुषने हरिदास-ठाकुरको पहले नामदाता श्रीगुरुदेव स्वीकारकरनेके लिये रुचि प्रदर्शित नहीं की थी। परन्तु आज उनकी अलौकिक, अमित शक्तिकी बात सुनकर अत्यन्त मर्यादा-सम्पन्न ब्राह्मणोंने भी उनको भगवत अभिन्न-नामदाता स्वीकार किया एवं महा आनन्द-के साथ उनका आदर करने लगे। महाभागवत ठाकुर-हरिदासके संगमें ब्राह्मणगण हरिध्वनि करने लगे और ठाकुर आनन्दसे नाचने लगे। उससमय ठाकुरको अद्भुत अष्टसात्त्विक भाव-विकार होकर अश्रु, कम्प, हास्य, मूर्च्छा, पुलक तथा हुङ्कारादि होने लगा। ठाकुर प्रेमरसमें लोटने लगे जिसको देखकर ब्राह्मणगण आनन्दसागरमें गोते खाने लगे। कुछ देरके उपरान्त हरिदास-ठाकुर स्थिर होकर बैठे और विप्रगण उनको चारो ओरसे घेरकर बैठ गये। तब विप्रगणसे अपने द्रोहकी बात सुनकर तथा उनको दुःखित देखकर उनको समझाते हुए ठाकुरने सामान्यजीवके सदृश दीनताके साथ कहा कि आप लोग मेरे लिये चिन्ता मत कीजिये। चूंकि मैंने पूर्व जन्मके कर्म-दोषसे भगवद्-विमुखताके कारण भगवद्-विरोधमयी कथा सुनी और उसका यथोचित प्रतीकार नहीं किया, इसलिये भगवानने मुझे ऐसा दण्ड दिया।

जो भक्त तथा भगवानके प्रति विद्वेषकी बात सुनकर अपनेको सहिष्णु दिखलानेके लिये उसका प्रतीकार करनेके विचारसे प्रयत्न नहीं करते उनको भगवान कठोर दण्ड देते हैं। विषयासक्त सम्प्रदाय-के लोग हरि-गुरुवैष्णवकी निन्दाकी बात सुनकर भी अपनी घृणित नीच कपटताको वैष्णवाचार कह-कर समर्थन करते हैं, इसलिये उनकी भीषण दुर्दशा होती है। ठाकुर-हरिदास वास्तवमें सहिष्णुता-धर्मके सर्वोत्तम आदर्श थे, परन्तु कपटी विषयासक्त सम्प्रदायके लोग (अर्थात अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्षकामी) ठाकुर-हरिदासके सहिष्णुता-धर्मका कृत्रिम अनुकरणकर नानाप्रकारके क्लेशको प्राप्त होते हैं। महाभागवत-परमहंस-वैष्णव स्वयं निन्दादि रहित हृदयसे भगवद्-विमुखतासे उत्पन्न दूसरेकी निन्दा-प्रशंसा-प्रजल्प-चर्चा जड़ बहिर्दर्शन नहीं करते, किन्तु विषयासक्त लोगोंको उस प्रकारकी उच्च अवस्था प्राप्त नहीं होनेके कारण उनके लिये श्रेष्ठ-भक्तका अनुकरण करनेकी चेष्टा घृणित कपटमात्र है; इसलिये उनको अवश्यही दुःख भोगना पड़ता है।

यहाँ बात कपटी-विषयासक्त-वैष्णव-सम्प्रदायके लोगोंको समझानेके लिये ठाकुर-हरिदासने साधारण लोगोंके सदृश कर्म-फल भोगकी बात कही। विषयासक्त-जीवको कर्मफल भोगना पड़ता है, किन्तु हरिनाम उच्चारण करनेवाले मुक्तकुलशिरोमणि हरिदास-ठाकुर कर्म-फलाधीन नहीं थे। इस सम्बन्धमें श्रीरूपगोस्वामी प्रभुजीने भी कहा है कि ब्रह्मसाक्षात्कार-निष्ठाद्वारा भी भोगके अतिरिक्तप्रारब्धकर्म नाश नहीं होता है, किन्तु हे नाथ, जिह्वापर तुम्हारेनामकी स्फूर्तिमात्रसे ही (नामाभाससे ही) वह प्रारब्धकर्म समूल नष्ट हो जाता है।

विष्णुवैष्णवकी निन्दा सुनकर जो मूढव्यक्ति 'तरोरपि सहिष्णु', श्लोकके वास्तव तात्पर्यके विरुद्ध कृत्रिम सहिष्णुताके बहाने अपनेको उदार-चरित्र-प्रदर्शित करता है उसको उसके महा अपराध-का फल समझना चाहिये। इसीलिये जगद्गुरु ठाकुर-हरिदास कपट- दैन्य अभिनयकारी-विषयासक्त मूर्ख-जीवोंके कल्याणके लिये दीनता पूर्वक कहने लगे कि मैंने प्रभुकी बहुत निन्दा सुनी थी इसलिये ईश्वरने मुझे ऐसा दण्ड देकर मेरी बहुत भलाई की और थोड़ीसी ही सजा देकर मेरे बहुत बड़े दोषको क्षमाकर दिया। विष्णु-निन्दा सुननेसे कुम्भीपाक नरकमें जाना पड़ता है—ऐसा मैंने अपने कानों द्वारा सुना है। ऐसा महापराध मैं फिर न करूँ—इसीलिये प्रभुकी कृपासे यवनद्वारा ऐसी व्यवस्था हुई थी। स्वयं पुण्य-पापातीत महाभाग-वत होकर भी ठाकुरने अपनेको यम-दण्ड्य बद्ध-जीव सदृश मानकर लोकशिक्षाके लिये दीनता-पूर्वक ब्राह्मणोंको विष्णुनिन्दा श्रवण करनेसे सतर्क कर दिया। इसप्रकार ठाकुर-हरिदास विप्रगणके सहित महाआनन्दसे संकीर्त्तन करने लगे। उनको जिन यवनलोगोंने दुःख दिया था वे वैष्णवाचार्य द्रोहरूपी महापराधके फलसे कुछ दिनोंमें सवंश नष्ट हो गये। तदुपरान्त ठाकुर-हरिदास गङ्गा-किनारे गुफा निर्माणकर एकान्तमें रात दिन कृष्ण-स्मरण करने लगे। वहांपर वे तीन-लक्षनाम ग्रहण करते थे और वह गुफा वैकुण्ठके सदृश हो गया था। परन्तु उसगुफाके भीतर एक महानाग वास करता था जिसकी ज्वालाको कोई प्राणी नहीं सह सकता था। हरिदास-ठाकुरके दर्शनके लिये जोलोग वहां आते थे उस सर्पकी ज्वालाके प्रभावसे वे शीघ्रही वहांसे चले जाते थे। परन्तु नामग्रहणमें रत ठाकुरको इस बातकी कुछ भी अनु-भूति नहीं थी। तब विप्रगण गुफासे कुछ दूर बैठ-कर विचार करने लगे कि ठाकुरकी गुफामें इतनी ज्वाला क्यों है, परन्तु कुछ निश्चय नहीं कर सके। जब इसबातकी खबर चारों ओर फैल गई तब वहांपर ग्रामनिवासी एक वैद्य आया और बोला कि इस गुफाके भीतर एक महानाग रहता है जिसकी ज्वालासे यहां पर कोई ठहर नहीं सकता। इसलिये ठाकुर यहांसे शीघ्र ही दूसरे स्थानमें चले जायँ। सर्पका सङ्ग त्यागकरना चाहिये ऐसा विचारकर सबोंने सर्पका वृतान्त ठाकुरसे कहा और उस भजनस्थानको छोड़ देनेके लिये अनुरोध किया। उन-लोगोंके प्रस्तावको सुनकर ठाकुरने कहा कि इस गुफेमें मैं बहुत दिनोंसे अवस्थान करता हूँ परन्तु मैंने किसीप्रकारका विष वा ज्वाला अनुभव नहीं की। परन्तु जब आपलोग मेरे लिये व्यस्त हैं, तब आप-लोगोंके सन्तोषके लिये मैं अन्यत्र चला जाउँगा। यदि वास्तवमें यहांपर नागराज हों और यदि वे इस स्थानको कल न छोड़ेंगे तो मैं कल यहांसे

किसी दूसरे स्थानको प्रस्थान करूँगा। आपलोग अब चिन्तारहित हो कृष्ण-गुण-गान कीजिये। ठाकुर के आदेशानुसार कृष्ण संकीर्त्तन होते समय वहांपर एक अद्भुत घटना हुई। महाभागवत ठाकुर हरि दासके स्थान-त्याग करनेके सङ्कल्पको सुनकर महा नाग सन्ध्या समय उनकी भजनकुटीके गढ़ेसे निकल-कर सबोंके सामनेही अन्य स्थानको चले। वे अद्भुत नागराज महाभयङ्कर तथा पीत-नील एवं शुक्लवर्णके परम सुन्दर थे। उनके मस्तकपरसे एक प्रखर मणिका तेज निकल रहा था जिसको देखकर विप्रलोग भयसे "कृष्ण कृष्ण" कहने लगे। सर्पके चले जानेके उपरान्त वहांपर और ज्वाला नहीं रही जिससे विप्रगण अत्यन्त आनन्दित हुए। हरिदास-ठाकुरकी महाशक्तिको देखकर विप्रलोगोंको उनमें विशेष भक्ति उत्पन्न हुई। हरिदास-ठाकुरका ऐसा प्रभाव है कि जिनके वचन सुनकर नागराज उनकी भजन-कुटि छोड़कर चले गये, जिनकी दृष्टि पड़नेसे अविद्या-बन्धन छूट जाता है, तथा कृष्ण भी जिनका वचनका उल्लङ्घन नहीं करते।

(क्रमशः)

श्रीसरस्वती-पूजा

आज श्रीसरस्वती पूजाका दिन है। परा विद्याके उपासकगण आज संकीर्त्तनके साथ श्रीश्री विष्णुप्रियादेवीकी पूजामें नियुक्त हैं; और अपरा विद्याके उपासकगण अपनी अपनी कामनाकी पूर्त्तिके लिये अपरा विद्याकी अधीश्वरी श्रीसरस्वतीकी पूजामें लगे हैं। अपरा विद्याके उपासकगण वाणीपूजा किसको कहते हैं नहीं जानते, इसलिये वे लोग आज छाया (प्रतिबिम्ब) सरस्वतीके निकट सकाम प्रार्थना कर रहे हैं। परा विद्याकी आलोचना करने वालोंका इस प्रकारकी अज्ञता नहीं रहता, इसलिये वे लोग कामना-वासनाको छोड़कर संकीर्त्तन यज्ञमें कृष्णकी आराधनामें तत्पर रहते हैं।

बद्ध तथा मुक्त दोनों ही सरस्वतीकी पूजा करते हैं। हमलोग बद्धजीव अर्थ वा प्रतिष्ठा देने वाली विद्याकी इच्छासे सरस्वती-पूजा करते हैं। श्रीजीवगोस्वामी प्रभुने लिखा है कि प्राकृतजन-पूजिता सरस्वतीदेवी सङ्गीत शास्त्रादिके प्रतिपाद्य देवता हैं। सरस्वती—वाक्यकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इनको विद्या वा ज्ञानकी अधिष्ठात्री देवता भी कहते हैं। इस जड़ जगतमें मायादेवी दुर्गा नामसे परिचित हैं। उनके आवरणोंमें सरस्वती देवी पड़ जाती हैं, और ऐकान्तिक भक्तगण सरस्वती देवीका भगवच्छक्तिरूपमें पूजा करते हैं। तब प्रश्न हो सकता है कि बद्ध तथा मुक्त दोनों प्रकारके जीवोंके उपास्य देवता सरस्वती एक हैं अथवा पृथक्। मायामुक्त तथा मायाबद्ध जीवोंकी उपास्य सरस्वती एक नहीं हैं। एक स्वरूपशक्ति अर्थात् अन्तरङ्गशक्तिकी वृत्ति हैं और दूसरी मायाशक्ति वा बहिरङ्गशक्तिकी वृत्ति हैं। एक कृष्ण-कृपारूपिणी, कृष्णकीर्त्तन-सरस्वती वा वैकुण्ठ-सरस्वती और दूसरी विमुख-विमोहिनी कृष्णेतर रागविलासिनी (मायिक वस्तुमें आनन्द देने वाली) है। दोनों सरस्वतीके जीवन कृष्ण हैं। माया-शक्ति एवं चिच्छक्ति शक्तिविचारसे अभिन्न होने-पर भी वस्तु तथा वस्तुकी छाया जिसप्रकार पृथक् रहती हैं, उसी प्रकार छायासरस्वती तथा वैकुण्ठ-सरस्वती परस्पर भिन्न है। मायाशक्ति शक्तिमान् भगवानकी शक्ति होनेपर भी दृष्टा पत्नी जिसप्रकार

स्वामीके समीप जानेमें लज्जा बोध करती है उसी प्रकार मायाशक्ति "विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया" इस भागवत-वचनानुसार भगवानके सम्मुख नहीं जा सकती, और चिच्छक्ति भगवानके निकट निरन्तर अवस्थान करके उनका सेवासुख प्राप्त करती हैं।

हमलोग छायासरस्वतीके सेवक हैं। सरस्वती उपासकगणोंके बीच प्रसिद्ध कवि कालिदास तथा केशवकाश्मीरी नामक विख्यात दिग्विजयी पण्डितका नाम सुनते हैं। परा विद्यास्वरूपिणी श्रीसरस्वती श्रीगौरहरि जिस समय नवद्वीपमें अवतीर्ण हुए थे उस समय सरस्वतीके श्रेष्ठ पुत्रगणोंकी समस्त जड़ पाण्डित्य-प्रतिभा कुण्ठित हो गयी थी। महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यके निकट पराजित दिग्विजयी केशवकाश्मीरीको सरस्वतीने ऐसा उपदेश किया था—

"हे विप्र! सुनो मैं तुमसे अत्यन्त गोपनीय कथा कहती हूँ जो वेदके लिये भी अगोचर है। यदि तुम यह रहस्य किसी दूसरेको बताओगे तो शीघ्रही तुम्हारी आयु क्षीण हो जायगी और तुम मृत्युको प्राप्त होगे। जिनसे तुम्हारी पराजय हुई है वे अवश्य ही अनन्त ब्रह्माण्डके प्रभु हैं मैं उनके चरणकमलकी नित्य दासी हूँ और जड़-सरस्वती (अपरा विद्या) होनेके कारण उनके सम्मुख जानेसे लज्जित होती हूँ।"

कीर्त्तनमुख भक्तिका दूसरा नाम शुद्धसरस्वती है। वे कृष्णके अत्यन्त प्रिय हैं। वे शुद्ध भक्तगणोंकी जिह्वापर अवस्थानकर निरन्तर भगवत्सेवामें निरत रहती है। शुद्ध भक्तगण श्रवण-कीर्त्तनद्वारा, इस सरस्वतीकी नित्य पूजा करते हैं। श्रीयुक्त जयदेव-सरस्वती इसी शुद्धसरस्वतीके एक प्रधान पूजक थे। सेवोन्मुख भक्तोंकी जिह्वापर जिस शुद्धसरस्वतीकी स्फूर्ति होती है, भाग्यवान् जीवगण श्रवणद्वारा उनकी सेवा करते हैं। शुद्धसरस्वती देवी भी भाग्यवान जीवोंके कर्णरन्ध्र द्वारा हृदयमें प्रवेशकर उनके हृदयको निर्मल तथा अपने पति श्रीहरिके अवस्थानके योग्य बनाकर उस भाग्यवान् भक्तकी जिह्वापर नृत्य (नाच) करते करते अपने स्वामीको प्रसन्न करती हैं। जो वाणी कृष्णको प्रसन्न नहीं करके जीवोंको प्रसन्न करती है उसी वाणीको जड़ वा छाया सरस्वती कहते हैं। इसी छाया सरस्वती की पूजामें जगतके लोग नियुक्त हैं। इसीलिये वे कृष्ण-बहिर्मुख होकर नाना प्रकारके दुःख तथा क्लेश सहन करते हैं, और परा सरस्वतीके उपासक कृष्णोन्मुख रहकर निरंतर कृष्णसेवाके आनन्दमें मग्न हो जाते हैं। भक्तकी उपास्य शुद्ध-सरस्वती तथा अभक्त पूजित सरस्वतीमें क्या भेद है इसको किसी महाजनने इस प्रकार वर्णन किया है:-

मनरे, केन कर विद्यार गौरव?
स्मृतिशास्त्र व्याकरण, नाना भाषा आलोचन,
वृद्धि करे यशेर सौरभ॥
किन्तु देख चिन्ता करि' यदि ना भजिले हरि,
विद्या तव केवल रौरव।
कृष्ण प्रति अनुरक्ति, सेइ वीजे जन्मे भक्ति,
विद्या ह'ते ताहा असम्भव॥
विद्यार मार्ज्जना ता'र, कभु कभु अपकार,
जगतेते करि' अनुभव।
जे विद्यार आलोचने, कृष्णरति स्फुरे मने,
ताहारी आदर जान सब॥
भक्ति वाधा याहा ह'ते से विद्यार मस्तकेते,
पादाघात कर अकैतव।
सरस्वती कृष्णप्रिया कृष्णभक्ति ता'र हिया
विनोदेर सेइ से वैभव॥

भक्तगण मायाशक्तिकी अधीनता परित्यागकर चच्छक्तिके आनुगत्यमें रहते हैं इसलिये वे ही वास्तव में सरस्वतीपूजाके अधिकारी हैं। वे लोग सरस्वती को अपनीसेवामें नियुक्त न कर उनके द्वारा विद्या-वधूजीवन श्रीकृष्णकी ही सेवा करते हैं, जिसमें शुद्धसरस्वतीको सन्तोष होता है। किन्तु, हरि-विमुखजन पूजनीय सरस्वतीके प्रति उदासीन रहकर अपने लाभ, पूजा और प्रतिष्ठादिके लिये जिस सरस्वतीकी पूजा करते हैं उससे उनकी हरि-विमुखता दिन-पर-दिन बढ़ती ही जाती है और वे परा विद्यारूपी वाणीपूजासे वञ्चित रहते है।

अपनी इन्द्रियोंकी प्रसन्नताका दूसरा नाम काम है—जिसको हरिविमुखता वा नास्तिकता भी कहते हैं। इस प्रकारकी नास्तिकता कभी प्रच्छन्न तथा कभी स्पष्टरूपसे देखनेमें आती है। इसीलिये वे लोग नानाप्रकारसे भोग प्रदाता देवताओंकी आरा-धनामें व्यस्त रहते हैं। देवता यदि सेव्य हों तो उनसे धन, जन विद्यादि अदा करनेके लिये इतनी चेष्टा क्यों की जाती है? वे क्या हमलोगोंके दास हैं कि हमलोगोंको तावेदारी करेंगे—हमलोगोंकी इन्द्रिय-तृप्तिकी वस्तु पहुँचा देंगे? इसीलिये कहा जाता है कि यह देवतापूजा है, या देवतासे अपने लिये पूजा अदा करानेकी चेष्टा है।

हमलोग अपनी अपनी विद्याकी पारदर्शिता (निपुणता) के लिये सरस्वतीकी पूजा करते हैं। हमलोगोंका प्रयोजन—कनक, कामिनी तथा जड़-प्रतिष्ठा है। इसीको आत्मेन्द्रियतर्पण वा काम भी कहते हैं। इस देशके बहुतसे स्थानोंमें तथा विद्या-लयोंमें सरस्वतीपूजा एक प्रधान उत्सव हो गया है। परन्तु शुद्धभक्त लाभ-पूजा-प्रतिष्ठादिके लिये सरस्वतीकी पूजा करके वणिक-वृत्ति अवलम्बन नहीं करते। वे लोग परा विद्यारूपिणी सरस्वती-देवीकी अनुगत श्रवण-कीर्त्तनद्वारा पूजा करते रहते हैं। इसीलिये कहा जाता है कि भगवद्भक्त ही श्रेष्ठ सरस्वती-पूजक हैं।

ॐ विष्णुपाद चिद्विलास अष्टोत्तर शत श्री

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके

पंचषष्टितम-आविर्भाव-तिथिपूजाके उपलक्षमें

कुसुमाञ्जलि

परम दयालु श्रीगुरुदेव!

आज व्यासपूजाके दिवस आपके श्रीचरणोंमें कुसुमाञ्जलि समर्पित करते हुए हमारे हृदयमें स्वाभा-विक रीतिसे यह प्रश्न उठता है कि क्या वास्तवमें आपकी असीम और अनुपम कृपाकी अनुभूति करते हुए हम इस कुसुमाञ्जलि द्वारा आपके प्रति प्रकृतरूपसे अपनी कृतज्ञता प्रकट कर रहे हैं? क्या यह कुसुमाञ्जलि उन्हीं सुन्दर और सुगंधित पुष्पों द्वारा तैयारकी हुई है जो आपकी अहैतुकी कृपाकी वास्तविक अनुभूतिके सलिलसे नित्य प्रति सींचे हुए हृदय-उद्यानसे चुन कर लाये गये हैं, अथवा उन कृत्रिम फूलों द्वारा बनी है जो दिखावटी भावस्रोतके रङ्ग-बिरङ्गे कपड़ोंको गूंथ-कर बनाये जाते हैं। गुरुदेव! हमारी बुद्धि अहङ्कार-

रूपी मदिरासे दूषित है और इस प्रश्नका ठीक ठीक उत्तर देनेका हमें साहस नहीं होता; परन्तु हमें इस बातकी शङ्का है कि कदाचित् कुसुमाञ्जलि समर्पित करने का यह सब हमारा ढोंग मात्र है। यदि ऐसा नहीं तो आज हमारा हृदय आपकी असीम कृपा-की उपलब्धि कर आपके चरण कमलोंमें कृतज्ञता और प्रेमके भावसे व्याकुल होकर क्यों नहीं लोटने लगता? क्यों नहीं प्रेमाश्रुओंसे हमारा शरीर सराबोर हो जाता और अपने भावोंको प्रकट करनेकी व्यर्थ चेष्टामें कंठ रूँधने लगता?

आपकी करुणाका सागर कैसा अपार है, दयानिधे, इसका तनिक भी ज्ञान यदि हमें होता तो हम आप-के प्रेममें अवश्य विभोर हो जाते और दीवाने होकर नित्य प्रति आपकी दयाके गीत गाया करते। हमारे जैसे जीवोंको संसार बन्धनसे मुक्त कर भगवत्-सेवामें नियुक्त करनेके लिये कितनी तन मनसे आपने चेष्टा की है, साधनके कैसे कैसे नूतन और आधुनिक परिस्थितियोंके अनुकूल उपायोंका आविष्कार कर सभी श्रेणीके मनुष्योंको भगवत्सेवामें जीवन व्य-तीत करनेका सुअवसर दिया है।

किस प्रकार देश-विदेशमें नाना भक्तिमठ-रूपी पारमार्थिक अस्पताल स्थापित कर नित्य-काल मायारोग-ग्रसित तथा त्रितापसे पीड़ित जीवोंकी चिकित्साका सुन्दर प्रबन्ध किया है और मोह तथा अज्ञानकी नींदमें पड़े चिरकाल-से सोने हुए जीवोंको 'गौड़ीय', 'नदिया-प्रकाश', 'भागवत' इत्यादि पारमार्थिक पत्र रूपी दूतोंको भेज कर जगाते रहनेके लिये कैसी सुन्दर व्यव-स्थाकी है। सुयोग्य शिष्योंमें अपनी अलौकिक शक्तिका संचारकर उनके द्वारा पृथ्वीके विचित्र स्थानोंमें शुद्ध भक्तिका प्रचार करवाया है।

किस प्रकार साधन मार्गमें अनेक पथभ्रान्त करनेवाले मत-मतान्तरोंको अपनी शास्त्रसम्बन्धी युक्तियोंसे खंड खंड कर आपने हमारा मार्ग विघ्नरहित कर दिया है।

कहां तक हम आपकी करुणाका वर्णन कर सकते हैं। गुरुदेव, आपने तो पतितसे भी पतित, दुष्टसे भी दुष्ट और भक्तिकी आड़में नाना प्रकार-के भोग और विषयोंमें लिप्त घोर अपराध करने वाले व्यक्तियोंको भी अपनी शरणमें आकर्षित कर अपना कल्याण करनेका भरपूर अवसर दिया है। और, यद्यपि इस समय आप हमारे जड़ नेत्रोंसे ओझल हो गये हैं, तथापि आपकी इस अनुपम दयाका स्रोत अब भी-साक्षात्रूपसे प्रवाहित होता हुआ दीखता है। आज वही करुणा स्रोत आपसे नित्यकाल अभिन्न और आपकी सम्पूर्ण पारमार्थिक सम्पत्तिके एकमात्र उत्तराधिकारी आचार्यवर ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्अनन्त वासुदेव परविद्याभूषण गोस्वामी प्रभुके श्रीचरणोंसे प्रवाहित हो रहा है।

आपके इस अपार करुणासागरके एक बिन्दुकी भी यदि हमें वास्तविक उपलब्धि होती तो हम आज कृतकृत्य हो जाते। आपका करुणा-सागर जितना अपार है उतना ही हमारे निकट यह शोक और लज्जाका विषय है कि आपके श्रीचरणोंमें हम प्रतिवर्ष जो श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हैं, उनमें यद्यपि मौखिक-रूपसे आपका गुणगान करते और हमारे कल्याणके लिये जो नानाप्रकारकी चेष्टाओंमें आप संलग्न रहते हैं उनके कारण आपके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करते हैं, फिर भी हमारे अन्तःकरणमें इसकी तनिक भी उपलब्धि नहीं होती। परन्तु दया-मय! हमें सम्पूर्ण आशा है कि हमारे इस दिखावटी

प्रयत्नका भी आपके निकट कुछ मूल्य है और आपकी अहैतुकी कृपामें हमारा यह प्रयत्न आपकी करुणाकी क्रमिक अनुभूतिके द्वारा कभी न कभी प्राकृत सेवामें परिवर्तित हो जायगा।

नित्य- सेवाभिखारी

आपके सेवकवृन्द

विविध-संवाद

गया जिलेमें प्रचार--श्रीश्रीविश्ववैष्णवराज-सभाके अन्यतम प्रचारक उपदेशक पण्डित श्रीपाद रूपविलास ब्रह्मचारी बी० ए० भक्तिशास्त्री, विद्यार्णव महोदयने कई ब्रह्मचारियोंके साथ गया जिलेके अन्तर्गत औरङ्गाबाद सबडिविजनके विभिन्न स्थानोंमें कई दिन हरिकथा प्रचार किया था।

गत १४ वीं जनवरी शनिवारको डा० श्रीयुत धरणीधर प्रसाद एम० बी० महाशयके गृहमें ब्रह्मचारीजीने श्रीचैतन्यचरितामृतमें सनातन-शिक्षा-पाठ किया था। दूसरे दिन दुर्गाकमिटी हाउसके विस्तृत होलमें एक महती सभामें राय साहब श्रीयुत अखौरी कृष्ण प्रसाद सिंह बी० एल०,एम० एल०ए०, महोदयके सभापतित्वमें ब्रह्मचारीजीने हिन्दी भाषामें "श्रीचैतन्यदेव और श्रीनाम सङ्कीर्तन" के सम्बन्धमें प्रायः डेढ़ घण्टे तक एक हृदयग्राहिणी वक्तृता देकर श्रोतृवृन्दका चित्ताकर्षण किया था।

पलामू जिलामें प्रचार

गत २० वीं जनवरीको ब्रह्मचारीजी औरङ्गाबाद-का प्रचार शेषकर पलामू जिलाके अन्तर्गत नगरउन्टारी थानाके अस्पतालके डा० श्रीयुत नरेशचन्द्र राय महाशयके सादर निवेदनसे कई ब्रह्मचारियोंके साथ पहुंचकर प्रायः एक सप्ताह तक वहां शुद्धभक्तिका प्रचार किया। तत्पश्चात् २७ वीं जनवरीको डाल-टेनगंज पहुँचकर वहां भी पाठ, व्याख्यान और सङ्कीर्त्तन कर शुद्धभक्तिका प्रचार कर रहे हैं।

श्रीधामनवद्वीप परिक्रमा

आगामी २४ फरवरी शुक्रवारसे लेकर नौ दिनों तक श्रीश्रीविश्ववैष्णवराजसभाके उद्योगसे श्रीगौड़ीयाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्री-श्रीमद् अनन्तवासुदेव परविद्याभरण गोस्वामी प्रभुके निर्देशानुसार सङ्कीर्त्तनसहित श्रीधाम नवद्वीपकी परिक्रमा होगी। उस सुअवसरपर बहुतसे साधु लोग परिक्रमामें योगदान देंगे। संसारकी परिक्रमा करनेसे केवल संसारासक्ति ही बढ़ती है किन्तु यदि धामकी परिक्रमा की जाय तो इससे नित्य मङ्गल प्राप्त होगा। धाम चिन्मय वस्तु है। हरि, गुरु, वैष्णव लोगोंके आनुगत्यमें शरणागत होकर हरिकथा श्रवण कीर्त्तन करते हुए यदि धामकी परिक्रमा की जाय तो सर्वेन्द्रिय द्वारा हृषिकेशकी सेवा आपसे आप हो जायगी। श्रीकृष्णचन्द्र वा वृन्दावन धामसे भी श्रीगौर व श्रीगौरधाम अधिक उदार हैं। धामकी कृपा नहीं होनेसे कभी भी भगवानकी कृपा प्राप्त नहीं हो सकती। विशेष कर कलियुगमें श्रीगौराङ्गमहाप्रभु-की कृपा प्राप्त किये बिना कल्याण नहीं क्योंकि वे ही कलियुगके एकमात्रधर्म--नामसंकीर्त्तनके पिता हैं। भिन्न भिन्न देशोंसे बहुत लोग श्रीधामकी परिक्रमा करनेके लिये आयेंगे। सज्जनगणके कृपापूर्वक परिक्रमामें योगदान देनेसे परमानन्द प्राप्त होगा।

आगामी ५ मार्च रविवारसे लेकर तीन दिनों तक श्रीधाम मायापुर-योगपीठ (नवद्वीपसे प्रायः ३ मील पर) में श्रीश्रीचैतन्यदेवका जन्मोत्सव मनाया जायगा।

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रवर लिखित श्रील प्रभुपादकी पत्रावली का तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है। प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे [illegible] हैं। हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रावलीका पाठ करनेका अनुरोध करते हैं।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद [illegible] भारतकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व सामाजिक अवस्था, [illegible] समसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीप-का परिचय व [illegible] प्रामाणिक ग्रन्थ व [illegible] सहज व सरल भावसे साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है। ग्रन्थमें [illegible] चित्र दिये गये हैं। सुन्दर जिल्द भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्वान् [illegible] व प्रीति देनेवाला होगा। भिक्षा १) । प्राप्तिस्थान—[illegible] श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वांयारी, ढाका ।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य [illegible] प्रभुपाद [illegible] ठाकुर सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवन-के मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ [illegible] है। [illegible] व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक [illegible] । वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें [illegible] पृष्ठोंमें। विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं। भिक्षा ५)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय [illegible] व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणों-की गवेषणापूर्ण प्रबन्धोंसे सुसज्जित होकर प्रकाशित [illegible] है। [illegible]-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा ॥) आना ।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगश्रेष्ठ [illegible] विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व [illegible] बहुत सरल भाषामें [illegible] मुद्रित। भिक्षा ।॥) मात्र। प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ।

अणुभाष्यम्

[illegible] श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ। बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण। पहले प्रति अध्यायके प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्य-विरचित [illegible], उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपाद का सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व [illegible] तत्त्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है। इसके अतिरिक्त [illegible] क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्र भी संयोजित किया है। भिक्षा २) मात्र।

Printed by:— Brajeshwari Prasad, at The 'Indian Nation Press' and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

Regd. No. P. 468,

वर्ष ५] श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः संख्या २]

भागवत

एक मात्र

पारमार्थिक

मासिक पत्र

५ विष्णु गौराब्द ४५३	चैत्र कृष्ण ५ संवत १९९५ वि०

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि लक्षणा फलाभिसन्धान - रहिता ऐकान्तिकी स्वाभाविकी निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है— उसी भक्तिके बलसे अनर्थ उपशान्त होनेसे आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है।

प्रति संख्या —)॥ | **सम्पादक-त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्तिभूदेव श्रौती महाराज** | वार्षिक २)

Editor—Tridandiswami Sree Bhakti Bhudev Shrauti Maharaj

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

विषय सूची

श्री मायापुरधाममें महामहोत्सव

गत २४ फरवरी शुक्रवारसे लेकर नौ दिनों तक श्रीगौड़ीयाचार्य ॐ श्रीविष्णुपाद परमहंस श्री श्रीमद् अनन्तवासुदेव परविद्या भूषण गोस्वामी प्रभुके निर्देशानुसार संकीर्त्तनसहित श्रीधाम नवद्वीपकी परिक्रमा हुई। इस सुअवसरपर बहुतसे साधुलोग परिक्रमामें योगदान दिये थे। बिहार प्रान्तके भी बहुतसे भक्तगण इस सुअवसर पर उपस्थित थे। महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्यदेवका जन्मोत्सव ५ मार्च रविवारसे लेकर तीन दिनों तक अत्यन्त समारोहके साथ मनाया गया। ता० ५ मार्च को श्री नवद्वीप धाम प्रचारिणी सभाकी वार्षिक अधिवेशन हुइ थी।

पत्र व्यवहारका पता--

मैनेजर——"भागवत"

श्रीगौड़ीयमठ,

मीठापुर, पटना।

All communications are to be addressed to—

The Manager 'Bhagwat'

SRI GAUDIYA MATH

Mithapur, Patna

भागवत

वर्ष ५ श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना) संख्या २

गौ० कृष्ण ५, ४७३ सं० २०१५ वि०, १२ मार्च

श्रीभक्ति सिद्धान्त वाणी

भगवत्-प्राप्ति करना कठिन काम है ऐसा मनमें सोचकर भयभीत होनेसे नहीं हटना: सत्यवस्तु जाननेके लिये हृदयमें बहुत बलकी आवश्यकता होती है। तैरना सीखनेवाला यदि जल देखते ही डर जाय तो उसको तैरना नहीं आयगा। भगवान्‌की शरणागति कठिन बात नहीं है, वही आत्माका अति स्वाभाविक एवं सहज धर्म है। शरणागतिके विपरीत जो कुछ है वह अस्वभाविक तथा क्लेशकर है।

भगवान्‌की कथा सुननी होगी—भगवान्‌के एजेन्टके (आचार्यके) समीप सुननी होगी। जिस समय हरिकथा सुनेंगे, उस समय समस्त पार्थिव अनभिज्ञता, कुतर्क प्रभृतिको हटा देना होगा। भगवान्‌की पराक्रमपूर्ण वीर्यवती कथा सुनते-सुनते हृदयके दौर्बल्यादि अनर्थ कट जायेंगे - हृदयमें अभूतपूर्व साहस होगा: उस समय शरणागति वा आत्माका सहज धर्म सम्पूर्णरूपसे उदित होगा। उस शरणागत हृदयमें चतुर्थमान अर्थात् तुरीय अतीन्द्रिय राज्यका स्वप्रकाश सत्य स्वयं प्रकाशित होगा। इस उपायसे ही सत्य जाना जाता है: और किसी प्रकारसे अकैतव (छल रहित) सत्य नहीं जाना जा सकता। भगवत्-कथा तथा संसारकी कथामें भेद है। प्रत्येक शब्दकी दो प्रकारकी वृत्तियां होती हैं, उनमें एक संसारके परिवर्त्तनशील वस्तुको निर्देश

करता है तथा भगवान्‌को विस्मृत करा देती है; और दूसरी नित्यवस्तुका निर्देश करती है एवं भगवान्‌के स्वरूपको उपलब्ध तथा उद्दीपन कराती है। वैकुण्ठका शाश्वत तथा इस कुण्ठित (नाशशील) संसारके पार्थक्य भेद हैं उसे आचार्यके मुखसे श्रवण करनेसे भगवत्प्रेम ग्रहण करनेकी योग्यता प्राप्त होती है।

गीताशास्त्रमें लिखा है कि जीव या आत्मा स्थूल तथा सूक्ष्म आवरणोंसे आवृत (आच्छादित) होकर भगवत्‌-विस्मृतिके कारण संसारमें आता है। इस प्रकारकी आत्मावस्थामें मनके द्वारा तथा मनके द्वारा जो रूप रसादि विषय ग्रहण किये जाते हैं, उनमें और आत्मिक ... वञ्चित होता है तथा भगवत्‌ स्मृति ... आवृत हो जाता है। सङ्कल्प-विकल्प-भेद निश्चयात्मक मनके सहित अणुचैतन्य ... जीवात्माका पूर्ण पार्थक्य है। मन परिवर्तनशील पर आत्मा अपरिवर्तनीय तथा नित्य है। मनका काम भोग या त्याग और आत्माका काम सेवा है। मन तीन अवस्था—जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति—तककी वस्तुको जान सकता है उसको चतुर्थमानकी वस्तुको जाननेका अधिकार नहीं है। आत्मा ही चतुर्थमान व तुरीयावस्थाका अभिज्ञान प्राप्त कर सकता है। संसारके पाण्डित्यसे वास्तव सत्य नहीं जाने जा सकते।

"वर्तमान अवस्थामें उन समस्त विषयोंको जानना अत्यन्त कठिन है" यह जिसप्रकार सत्य है, उसीप्रकार उन विषयोंको जाननेका जो उपाय है वह भी सत्य है। हमलोगोंके दूरदेशस्थ बान्धवोंका समाचार डाकिया हम लोगोंके निकट ले आता है। किसी किसीका संवाद पिअन नहीं भी ला सकता है। पिअन जिसकी चिट्ठी नहीं लाया उसका भाग्य अत्यन्त मन्द है ऐसा समझना चाहिये। जो लोग पत्रके लिये आर्त्त (पीड़ित) हैं उनके निकट अवश्य ही पिअन चिट्ठी ला देता है।

किसी वस्तुके विषयमें ज्ञान उपार्जन करनेके लिये संसारमें दो प्रकारके उपाय देखे जाते हैं; एक संसारके पाण्डित्यद्वारा वस्तुको जाननेकी चेष्टा, और दूसरा संसारके पाण्डित्यकी असम्पूर्णताकी उपलब्धिकर चित् जगतसे अवतीर्ण पुरुषके (आचार्यके) निकट सम्पूर्णरूपसे आत्म समर्पणकरके श्रौत पथ द्वारा ज्ञान लाभ करना।

यदि मैं दाम्भिक हो जाऊं तो सेवासे चिरकालके लिये वञ्चित हो जाऊंगा। भगवानकी भक्ति जिसप्रकार करना होती है, भगवद्भक्तके चरणोंमें यदि उसी प्रकारकी भक्तिका उदय न हो तो मैं अपदार्थ (अयोग्य) हो गया—जीवन वृथा हो गया। मैं कितना ही अयोग्य क्यों न होऊं मेरे मङ्गलके लिये बहुतसे भक्त कृपापूर्वक आविर्भूत हुए हैं। मेरी दुर्दमनीय दाम्भिकताका दमन करनेके लिये बहुतसे भक्तोंका समावेश हुआ है। वे लोग मुझे भगवद्भजनकी शिक्षा दे रहे हैं। भगवद्भक्तों के निकट अपेक्षाकृत अधिक सम्मान पाऊंगा, इस प्रकारकी दुर्बुद्धिका जिस दिन हजारों हजार झाड़ुओं द्वारा नष्टकर सकूंगा दूसरोंके निकट सुविधा के लाभकी आशासे जिस दिन उद्धार प्राप्त करूँगा, उसी दिन मेरे प्रति भगवानकी कृपा होगी, और मैं भगवद्‌भक्ति प्राप्तकर धन्य होऊँगा—

भक्तिका आश्रयकर यदि हम दाम्भिक हो जायें, केवल भगवानकी पूजाकर भक्तोंकी पूजाके प्रति अनादर प्रदर्शित करें—तो ऐसा होनेसे भक्तोंके चरणोंमें अपराध होनेके कारण नाना प्रकारकी असुविधाएँ

होगा—भक्तिमें अश्रद्धा होकर सम्पूर्णरूपसे अमङ्गल हो जायगा।

मनुष्य-जीवन अमङ्गल सञ्चय करनेके लिये नहीं हुआ है, यह जन्म परम मङ्गल प्राप्त करनेके लिये ही हुआ है—यह मैं क्यों भूल जाता हूं! मैं सबोंसे क्षुद्र तथा अधम हूं इसकी विस्मृति मुझे क्यों होती है! मायाके प्रलोभनसे लालचमें पड़कर भोगी होनेपे बड़ा होनेका विचार नितान्त क्षुद्र तथा अप्रयोजनीय है। यदि संसारमें बड़े होनेकी प्रवृत्तिको कम करनेकी आवश्यकता हो—प्रकृत (वास्तविक) स्वास्थ्य प्राप्त करनेकी आवश्यकता हो, तो वैष्णवोंका विचार ग्रहण करना चाहिये।

जो हरिसेवा करते हैं, वे अपनेको सबोंसे हीन समझते हैं। अपनेको सबोंसे हीन समझनेवाले ऐसे ही व्यक्ति अभिमान-हीन होनेसे ही सर्वश्रेष्ठ हो सकते हैं। सर्वश्रेष्ठ होकर वे हरिभक्तिकी कथा कह सकते हैं।

सर्वोत्तम होनेके लिये अपनी अयोग्यताकी परीक्षा करनी चाहिये। अपनी परीक्षा तो होती नहीं फिर दूसरोंके दोषकी खोजमें इतनी प्रवृत्ति क्यों है? क्या ऐसा ही वैष्णवका स्वभाव होता है? वस्तुतः वैष्णवके चरणारविन्दके आदर्शका ग्रहणकरनेसे अयोग्य भी योग्यता लाभ करते हैं।

मैं अच्छा होऊंगा, मेरा रोग दूर हो मङ्गल हो-यह विचार अच्छा है; परन्तु मैं बड़ा होऊंगा संसारके सभी लोगोंको जीतकर मेरी हिंसा-वृत्ति चरितार्थ हो—इस प्रकारकी धारणा बिलकुल ही प्रशंसनीय नहीं है। आत्मा और ममताकर भक्तोंकी सेवामें बाधा देना अनुचित है।

मेरा जन्म ऐसा हो जिसमें मैं भगवद्भक्तोंके चरणारविन्दकी धूल होकर श्रीरूपानुगसिद्धान्तके अनुसार चल सकूं। अपनी अयोग्यताकी उपलब्धिरूप दीनता ही इसका मूल है। मैं अयोग्य हूं—यह विचार आप ही आप यदि आ जाय तो मैं भगवद्भक्तोंके चरणार-विन्दकी शोभाके दर्शन प्राप्त कर सकूंगा।

भजन

भुलिया तोमारे संसारे आसिया,
पेये (पाकर) नानाविध व्यथा।
तोमारे चरणे, आसियाछि आमि,
बलिब (बोलने के लिये) दुःखेर कथा ॥१॥
जननी-जठरे (गर्भ), छिलाम जखन,
विषम बन्धन पाशे।
एकबार प्रभु, देखा दिया मोरे,
वञ्चिले (छल किया) ए दीन दासे ॥२॥
तखन भाविनु, जनम पाइया,
करिब भजन तव।
जनम हइल, पड़ि माया-जाले
ना हइल ज्ञान लव ॥३॥
आदरेर छेले, स्वजनेर कोले (गोद में)
हासिया (हँसकर) काटानु काल (समय बिता दिया)
जनक जननी स्नेहेते भुलिया,
संसार लागिल भाल (सुन्दर) ॥४॥
क्रमे दिन दिन, बालक हइया,
खेलिनु बालक सह।
आर किछु दिने, ज्ञान उपजिल,
पाठ पड़ि अहरह (सर्वदा) ॥४॥
विद्यार गौरवे, भ्रमि देशे देशे,
धन उपार्जन करि।

[illegible] [illegible] मन [illegible] [illegible] कांदिया (रोकर) कातर अति । [illegible] [illegible] ना भजिया तोरे, (आरको) दिन वृथा गेल, [illegible]) [illegible], भक्तिविनोद, [illegible] कि हवे गति ॥७॥

करुणा-धारा

श्रीब्रह्म-माध्व गौड़ीय-सम्प्रदायके संरक्षक ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीश्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीजी महाराजकी निखिल भुवन मंगलमयी करुणा-धारा

परम मङ्गलमय परमेश्वरकी [illegible] [illegible] [illegible] पर उनकी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]-तत्त्वमें [illegible] करते हैं । यह [illegible] उनके कृपा [illegible] ही समझ सकते हैं । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं । [illegible] [illegible] [illegible] की आवश्यकता है । [illegible] [illegible] [illegible] विषय-वासनाओंसे [illegible] सभा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्रकारक सिद्धान्तसे [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी [illegible] [illegible] [illegible] समयमें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] समय [illegible] भक्तिरसामृत [illegible] [illegible] [illegible] भाव की नितान्त ही आवश्यकता [illegible] [illegible] [illegible] मनुष्यगण भगवत-बहिर्मुखताके [illegible] समाच्छन्न होकर विवश हो गये थे, और [illegible] ऐसा कोई नहीं था जो उनसे निवृत्त [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सके । गोस्वामी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और धर्मपथसे बिलकुल भ्रष्ट हो गया था । उस समय श्रीमद् भक्तिविनोद गोस्वामीजी ने भागवत धर्मका [illegible] फहराया था परम पूज्यपाद श्रीश्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीजी महाराज श्रील भक्तिविनोदसे एक महापुरुषके रूपमें [illegible] श्रीधाम और पुरुषोत्तम क्षेत्रमें आविर्भूत हुए थे । उनका अन्नप्राशन श्री जगन्नाथ देवजीके महाप्रसादसे ही हुआ था । बचपनसे ही उनको हरि कथा-श्रवण, सत्सङ्ग तथा तीर्थ भ्रमणादिका सौभाग्य प्राप्त था । बाल्य कालमें ही उन्होंने भक्ति सदाचारका पालन और भक्तिग्रन्थका अध्ययन किया था । यौवन कालमें परमभक्त श्रीमद् गौरकिशोर दास गोस्वामीजीका सत्सङ्ग प्राप्त हुआ था उन महापुरुषके प्रचारकी जो विशेषता है वही हम लोगों की आलोचनाका विषय है ।

हमलोगोंकी यह धारणा थी कि वैष्णवधर्म जगतके कुछ थोड़ेसे एेसे व्यक्तियोंका ही धर्म है जो सर्वांशमें साम्प्रदायिक या कट्टर हैं । कोई कोई ऐसा भी समझते थे कि यह केवल हिन्दू-धर्मका ही एक अंश है परन्तु इस महात्मा ने ही पहले पहल यह प्रचार किया था कि वैष्णवधर्म सार्वजनीन सार्वकालिक और सार्वभौमिक सनातन धर्म है । यह केवल मनुष्य जातिका ही धर्म नहीं है बल्कि

समस्त जीवों का धर्म है। इसलिये वैष्णवधर्मका दूसरा नाम है जैवधर्म, आत्मधर्म या भागवतधर्म।

साधारण मनुष्य की अथवा किसी किसी नामधारी महात्माओंकी भी यह धारणा है कि प्रचार करना बिल्कुल बुरा है। क्योंकि जो व्यक्ति प्रचार करते हैं वे अपनी साधुताका प्रकाश करते हैं। यह नितान्त [illegible] है। एकान्तमें साधन करना ही यथार्थ साधुता है। किन्तु इस सम्बन्धमें [illegible] यह कहा जाता है कि जगत् में सत्यधर्म का प्रचार नहीं करनेसे ही [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] महात्माका मुख्य [illegible] है कि [illegible] [illegible] होना चाहिये। [illegible] अन्यान्य व्यक्तियोंके मंगलकी कामना नहीं करते [illegible] नहीं हैं किन्तु इस आचार्यके [illegible]। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी यह वाणी है कि

पृथिवीते आछे यत नगरादि ग्राम।
सर्वत्र सञ्चार हइबे मोर नाम॥

अर्थात् पृथिवीपर जितने नगर या ग्राम हैं उन सब स्थानों में मेरे नाम का प्रचार होगा—इस वाक्यकी सार्थकताका सम्पादन करने के लिये इस आचार्यका आविर्भाव हुआ था। पूर्वाचार्यों के चरित्रमें ऐसी विपुल भावसे प्रचार करनेकी चेष्टा नहीं थी। वे लोग शायद इनके लिये ही यह कार्य बाकी रख गये थे। अनेक आचार्योंके चरित्रमें दिग्विजय करनेकी चेष्टा भी दीख पड़ती थी किन्तु इनकी यावतीय चेष्टा थी श्रीचैतन्यदेवकी करुणा का विस्तार करना। भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यने दक्षिण देशमें, श्री नित्यानन्द प्रभुने गौड़ देशमें श्रीरूपसनातनने व्रजमण्डलमें प्रचार किया था पर समय के प्रभावसे वे सब बातें कहीं लुप्त या कहीं विकृत हो गई थीं। किन्तु इस आचार्यने उनसब स्थानोंका उद्धार करते हुए वहां श्रीचैतन्य चरणचिह्नकी स्थापना की और कहीं कहीं मठ मन्दिरकी प्रतिष्ठा करके चैतन्यमहिमाका प्रचारका यथेष्ट बन्दोबस्त किया।

इस आचार्यके जीवनमें यह विशेषता पाई जाती है कि पृथिवीका कोई भी मनुष्य बालक स्त्री वृद्ध [illegible] जब तक इनके श्री [illegible] [illegible] [illegible] थे। इस विचारमें जीवका [illegible] नहीं है किन्तु प्रत्येक व्यक्ति ही गुरुदेवको [illegible] कीर्त्तनका उपचार समझना चाहिये।

प्रचार-कार्यके लिये उन्होंने भारतवर्ष तथा भारतके बाहरके प्रधान प्रधान नगरों तथा-तीर्थस्थानोंमें भगवत्कथाकीर्त्तन मठोंकी स्थापना की है। इन सब मठोंका नाम भी दिया गया "गौड़ीय [illegible]"। शहरमें बहुतसे भवरोगी [illegible] पुनः पुनः जन्म-मृत्युको प्राप्त करते हैं ऐसे भगवद्बहिर्मुख लोग [illegible] होते हैं, इसलिये उन लोगोंको हरिकथा सुनाकर संसारसे मुक्त करनेके लिये उनका इलाज करनेके मतलबसे ही मठोंकी स्थापना की गई।

सर्वकीर्त्तन प्रचारके वास्ते वर्त्तमान वैज्ञानिक युगमें उन्होंने जिन सब अंगोंको साधन बनाया है उनमेंसे मुद्रणयन्त्र अर्थात् छापाखाना ही प्रधान है। प्रचारकार्यके आरम्भ करनेके पहले उन्होंने इस मुद्रणयन्त्रको ही कीर्त्तनके मुख्य अंगके रूपमें ग्रहणकर भक्तिग्रन्थादिकी छपाई शुरू की थी। इसका नाम दिया गया था—"बृहत् मृदंग"। अर्थात्

साधारण मृदंगकी सहायतासे कीर्त्तन होता है जो केवल निकटमें रहने वाले लोगोंको ही सुनाई पड़ता है। किन्तु छापाखानेकी सहायतासे पृथिवीमें सर्वत्र पुस्तक तथा सामयिक पत्रादि छापकर भेजे जा सकते हैं जिससे बहुत दूरमें अवस्थित व्यक्तियोंको भी श्रवणका अवसर मिलता है।

कुछ आचार्य धनके श्रेष्ठ व्यक्तियोंके पास नहीं जाना पसन्द करते थे किन्तु इस आचार्यका उद्देश्य दुनियाके सभी लोगोंके निकट भगवत्कथाका कीर्त्तन करना था। धनी, गरीब, अफसर राजा, महाराजा, जो कोई उनका दर्शन करता था उन सबके निकट ही हरिकीर्त्तन करे बिना उनका अन्य उद्देश्य नहीं था।

उनके प्रचारका और एक तरीका था "सत शिक्षा प्रदर्शनी"। कुरुक्षेत्र, कलकत्ता, नवद्वीप-मायापुर, ढाका, पटना काशी, इलाहाबाद प्रभृति स्थानोंमें कहीं महीने तक, कहीं पन्द्रह दिनों तक पारमार्थिक प्रदर्शनीमें शास्त्रके गूढ़ तात्पर्य सरल रीतिसे समझानेका बन्दोबस्त किया गया था। पारमार्थिक आलोचनाके लिये वैष्णव-सम्मिलन का अधिवेशन हुआ करता था।

भगवानकी जयन्ती तथा वैष्णव-आचार्योंके जन्मदिवसके उत्सवमें सम्भ्रान्त शिक्षित तथा साधारण लोगोंको निमंत्रितकर भगवत्प्रसाद बांटने के बहानेसे भगवत्कथा श्रवणका मौका देना उनकी कृपाका एक और तरीका था।

विभिन्न शहरों तथा गांवोंमें प्रचारक भेजकर भगवत्कथाका प्रचार करवाना उनकी और एक विशेषता थी। श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु तथा ठाकुर हरिदासने नवद्वीप में, और रूप-सनातनादिने व्रज में, श्रील ठाकुर नरोत्तम, श्रीनिवास आचार्य और श्री श्यामानन्द प्रभुने बंगदेश और उत्कलमें प्रचार किया था परन्तु इस महात्माने समस्त भारत तथा भारतके बाहर लण्डन जर्मनी, फ्रांस, अष्ट्रिया, चेकोश्लोभेकिया प्रभृति स्थानोंमें भी सनातनधर्मके प्रचारका बन्दोबस्त किया था। पाश्चात्य श्रेष्ठ धर्मयाजकोंने भी सनातन धर्मकी श्रेष्ठताको मान लिया था। भारत-सचिव महामान्य लार्ड जैटलैण्ड महोदयने लण्डन-गौड़ीय मिशनके सभापतिका पद ग्रहणकर लण्डनमें विष्णु मन्दिर-प्रतिष्ठामें उत्साह दिखलाया था। इस समय कई स्थानोंके भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंके धर्मप्रचारक प्रचारमें अवसर ननख्वाह देकर प्रचार करवानेका बन्दोबस्त भी दिखलाई पड़ता है। परन्तु ये महात्मा ऐसे कार्यको भक्ति रहित या ढोंग समझते तथा कहते थे। वे बराबर कहा करते थे कि व्यवसायी वक्ता Platform Speaker अथवा व्यवसायी पुरोहित Professional priest कभी भी 'गुरु' नहीं हो सकते। खुशामद करने वाला व्यक्ति कभी प्रचारक नहीं बन सकता। व्यापारियों-से सदा अलग रहना। भगवत् वाचक आठों पहरमेंसे आठों पहर भगवत् सेवा करता है कि नहीं यही देखना चाहिये।

इस महात्माने अपने शिष्योंके साथ भारतमें भ्रमण करते हुए भगवत्कथाका प्रचार किया था। इससे विभिन्न प्रदेशोंके रहने वालोंने उनके सत्संग तथा कृपा की प्राप्ति की है। भिन्न भिन्न अवसरों पर भिन्न भिन्न व्यक्तियों ने उनके श्रीमुखारविन्दसे भगवत कथा सुननेका मौका प्राप्त किया था। ओहियो विश्वविद्यालयके अध्यापक मादाम्स, रवेरण्ड प्ठालर्ली जोन्स, अध्यापक डा० पि जोन्स, डाक्टर मोरेनो, डाक्टर स्टेला क्रेमरिस, सर मालकम हैली,

सर जान गेण्डारसन प्रभृति उच्चपदस्थ सज्जनों को भी उन्होंने भगवत्वाणी सुनायी और ये सब व्यक्ति उनके अलौकिक चरित्रसे आकर्षित हुए थे।

आचार्य ठकुरने विभिन्न तीर्थों तथा भगवद्धामों की परिक्रमाकी चाल चलाई है। उनसे प्रवर्तित की गई गौड़ मण्डल परिक्रमा एक अनोखा व्यापार और अनहोनी भक्तयांग है। जिन जिन स्थानोंमें श्रीचैतन्यदेवके पादारोपण आविर्भाव हुए थे उन्होंने अपने शिष्योंको लेकर उन स्थानोंमें संकीर्त्तन और हरिकथाका प्रचार किया था।

श्रीधाम नवद्वीप Oxford of Bengal कहा जाता है। परन्तु कालके प्रभावसे वहांका वह गौरव लुप्त हो गया था। इस आचार्यने वहां फिर विद्यापीठकी स्थापना की। परमार्थ अनुशीलनके लिये उपयुक्त कृष्णानुशीलनागार उच्च अंगरेजी स्कूल छात्रावास इत्यादिका भी प्रतिष्ठा की। भिन्न भिन्न भक्तोंके निवासस्थान धर्मशाला अस्पताल इलेक्ट्रिक लाईट डाकखाने आदि कार्यों द्वारा नवद्वीपके लुप्त गौरवका उद्धार किया।

उनका दान पार्थिव दान नहीं है; समस्त जगत् की बहिर्मुखता को हटाकर कृष्णभक्तिकी नींव देने के लिये ही उनकी यावतीय चेष्टायें थीं। उनके कार्यों में पूर्व आचार्योंके कार्योंसे कुछ विशेषता लक्षित होनेपर भी उन सबोंके साथ एकता थी। उनलोगोंके चरित्र और वैभवको दुनियामें प्रचार करनेकी उनकी चेष्टा में उनकी और भी एक विशेषता है। उन्होंने श्रीरामानुज, मध्व, निम्बार्क विष्णुस्वामी, आचार्य शंकर तथा लिंगायत सम्प्रदाय के भिन्न २ आचार्योंके विषयमें तथ्य संग्रह करने के लिये यथेष्ट कष्ट उठाया था। अन्यान्य सम्प्रदायके आचार्य इनका साम्प्रदायिक वैभवज्ञान देखकर आश्चर्यान्वित हो गये। पेरेमबेदुर, श्रीरंगम्, उडुपी, सलीमाबाद, अड़ाइल, पाण्डरपुर, नाथद्वार, नंजनगड़ प्रभृति स्थानोंमें आपने जो तथ्य संग्रह किया उसे गौड़ीय साहित्यमें प्रकाशितकर जगतका बहुत ही उपकार किया। आपने श्रीरामानुज, मध्व, निम्बादित्य, विष्णुस्वामी, शङ्कराचार्य, माणिक्य भास्कर, श्रीवल्लभाचार्य, श्री विश्वनाथ चक्रवर्त्ती, श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभृति आचार्योंके चरित्र साहित्यमें प्रकाशितकर गौड़ीय सिद्धान्तकी एक और विशेषता दिखलाई थी।

भारतमें दशनामी सन्यासी कहने से मायावादी सन्यासी समझा जाता था, किन्तु आपने विष्णुस्वामी सम्प्रदायसे इसकी प्राचीनता दिखलाई है और शङ्कर-सन्यासीके साथ वैष्णव-सन्यासीका जो भेद है वह भी प्रकट किया है।

'वेदान्त' कहनेसे लोग शङ्करके मतवादको समझते थे। पर आपने वेदान्तका यथार्थ तात्पर्यके प्रचार द्वारा वेदान्तको वैष्णवधर्मका ही एकमात्र शास्त्र बतलाया है। वेदान्तके Ontology और morphology की विशेषता, भागवत और पांचरात्र का समन्वय और अन्यान्य धर्ममतसे अचिन्त्य भेदाभेद सिद्धान्तकी विशेषता प्रदर्शनकी है और निर्विशेष ब्रह्मवादसे पंचोपासना, एकलवासुदेव, (शक्तिशून्य वासुदेव, जो गीताके उपदेशक) लक्ष्मी-नारायण, सीताराम, द्वारकेश, मथुरेश तथा ब्रजेन्द्रनन्दनकी उपासनाकी विशेषता और श्रेष्ठता बतलायी है।

अन्यान्य धर्ममतवादके साथ सनातन वैष्णव-धर्मकी विशेषता कहां है आपने यह भी निर्भीक कण्ठसे कीर्त्तन किया है।

उनकी इन सब दयामयी बातों पर विचार

करनेमें हमलोगोंके हृदयमें एक अपूर्व आनन्द तथा ज्ञानका सञ्चार होगा। श्रीगुरुके इस करुणा धारामें स्नान करनेसे सभी प्रकारके ... यथार्थ मङ्गल प्राप्त कर सकेंगे।

यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो
यस्याप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि।
ध्यायन् स्तुवंस्तस्य यशस्त्रिसन्ध्यं
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

आश्रय

निराश्रय अवस्थामें कोई रह नहीं सकता। प्रत्येक जीव किसी न किसीके आश्रित है। आश्रय दो प्रकारका है— एक नित्य और दूसरा अनित्य। जिस आश्रयकी नित्यता नहीं, वह आश्रयस्वरूप प्रतीत होनेपर भी यथार्थ आश्रय नहीं। अनित्य आश्रय यह संसार या यहाँके मनुष्य हैं और नित्य आश्रय या चेतनके एकमात्र अवलम्बन जगदीश और जगदीशजन हैं। हमलोगोंके सदृश बद्धजीव वर्तमान विश्वको अपना एकमात्र आश्रय समझ केवल वञ्चित हो रहे हैं। इस दुःखमय प्रपञ्चमें कहीं भी आश्रय नहीं। आलोक-वर्तीका श्रीश्रीगुरुपादपद्म ही संसार-समुद्रमें एक-मात्र आश्रयस्थल हैं। वे भवसमुद्रके एकमात्र कर्ण-धार हैं। उनके सिवा और कोई रक्षाकर्त्ता नहीं।

भगवान ही सर्वाश्रय हैं। भगवानके श्रीचरणोंमें ही आश्रय या शरण लेना होगा। इसीलिये कहा गया है कि भगवच्चरण, भगवत्पाद, विष्णुपाद या नारायणपाद ही सबोंके एकमात्र आश्रय हैं। श्री-श्रीगुरुपादपद्म ही आश्रय विग्रह-जीवको आश्रय देनेके लिये श्रीकृष्ण ही गुरुरूपसे अवतीर्ण होते हैं। इसी आश्रयविग्रहके श्रीचरणमें आश्रय लेने-की कथाको शास्त्रोंने तारस्वरसे कीर्त्तन किया है। यह श्रीगुरुपादपद्म-श्रीश्रीआचार्यपादपद्म ही जीव की एकमात्र गति हैं। वे ही विश्वमें एकमात्र अनु-ग्रह और निग्रह करनेके अधिकारी हैं। ऐसा न हो कि हमलोग किसी दिन इस आश्रयविग्रहकी कथा भूलकर अन्यका आश्रय करनेकी दुरभिलाषा हृदयमें पोषण करें। ऐसा होनेपर हमलोगोंका मङ्गलद्वार निरुद्ध रहेगा। श्रीगुरुपादपद्ममें सर्वात्म-समर्पण करना होगा, उनका एकनिष्ठ सेवक होना होगा एवं उन्हींके लिये ही जीवनधारण या कोई भी कार्य करना होगा। दूसरोंके साथ स्वतन्त्रभावसे हमलोगोंका कोई सम्बन्ध नहीं। यदि है तो वह उनके सिवा और कुछ नहीं। मङ्गलाकाङ्क्षी जीव श्रीगुरुपादपद्मके सङ्गके सिवा उनके निकट सर्वदा कृपाभिक्षाके सिवा और कुछ नहीं करते। वे सभीको श्रीगुरुके सम्बन्धसे दर्शन करते और किसीके निकटसे अपने लिये कुछ ग्रहण नहीं करते। गुरुदास वैष्णव अपनेको, सभी वस्तु और व्यक्तिको श्रीगुरुदेव-श्रीआचार्यके चरणोंमें समर्पण करते हैं। श्रीआचार्यपादपद्मके गुणकीर्त्तनके सिवा, सभीको आचार्यके चरणोंमें आकृष्ट करनेके सिवा, आचार्य-सेवक-गुरुसेवक-नित्यानन्दसेवकका अन्य कोई अभिलाषा या कृत्य नहीं है। वे शत शत मुख गुरु-कीर्त्तनमें अनन्तमुख हैं। यही उनका एकमात्र साधनभजन है। गुरुदास वैष्णव कभी भी गुरुको धोखा देकर दूसरेको अपनी सेवामें नियुक्त करने या निजानुगत करनेकी दुर्बुद्धि पोषण नहीं करते। यही गुरुदासका वैशिष्ट्य और स्वरूप है। वे स्वयं मङ्गलालय श्रीगुरुपादपद्मके सम्पूर्ण अनुगत हैं

एवं दूसरे जिसमें आचार्यानुगत या आचार्याश्रित होकर परम मङ्गललाभ कर सकें इसके लिये सर्वदा सम्पूर्ण चेष्टाविशिष्ट रहते हैं ।

श्रीगुरुपादपद्मका ही सर्वतोभावेन सर्वान्तःकरणसे आश्रय करना होगा । भगवानकी कृपासे एसे गुरुदेवका सन्धान प्राप्त होगा । फिर गुरुदेवकी कृपासे निष्कपटजीव गुरुदास वैष्णव और भगवानका सन्धान प्राप्त करेगा । उस समय वैष्णवानुगत्यमें गुरुगौराङ्गकी सेवाका सौभाग्य पाकर, जीव कृतार्थ होगा । श्रीगुरुपादपद्म ही विश्वके एकमात्र रक्षक और पालक है । "और रक्षा कर्त्ता नाहि ए भव संसारे" । जिसने प्रकृत आश्रय प्राप्त किया है, वह असहाय नहीं है । "कृष्ण कृपा करिवेन दृढ़ करि जाने"--- यही उसका हृद्गत भाव है । पहले श्री गुरुदेवके साथ सम्बन्ध हो, तब दूसरेके साथ सम्बन्ध होगा । श्रीगुरु या आचार्यको छोड़ जहां वैष्णव प्रीति की छलना है वह अभक्ति, अन्याभिलाप या कपटता-जननीके सिवा और कुछ भी नहीं । पिता एकमात्र श्रीआचार्यदेव हैं । हमलोग सभी उन्हींके पाल्यपुत्र-शिष्य-सेवाभिखारी हैं । इस गुरुपिताके प्रति प्रीति हमारी अपेक्षा जिसकी अधिक है,आचार्य चरणमें जिसकी श्रद्धा अचला है, जिसका सङ्ग करने से गुरुपादपद्ममें विश्वास, निष्ठा, प्रीति बढ़े, उसके अनुसार अपनेसे श्रेष्ठ सज्जनोंका सङ्ग करना होगा । किन्तु जहां गुरुपादपद्मकी कोई कथा नहीं जहां माथाको छोड़कर माथाके व्यथाकी कथा है, वहां मङ्गल नहीं होगा । मङ्गलमयकी कथा न सुननेसे,- मङ्गलप्रदाताका सन्धान न पानेसे-किसी उपायसे जीवनयापन ही सार होगा । किसी उपायसे जीवन यापन करना बुद्धिमत्ताका परिचय नहीं । प्रति मुहूर्तमें सेवामय जीवनयापन ही जीवनका साफल्य (सार्थकता) है । ये गुरु या आचार्य या आश्रयवस्तु श्रीनित्यानन्द हैं, दूसरे नहीं । वर्तमान गौड़ीय-मठाचार्य ही वह वस्तु हैं । इसीलिये कह रहा हूँ "दृढ़ करी धर निताइर पाय" श्रीगुरुदेव परम करुणामय हैं उनकी कृपाकी सीमा नहीं । वे हमारे मङ्गल न चाहने पर भी हमलोगों का मङ्गल करने के लिये सर्वदा उद्विग्न रहते हैं । श्रीगुरुदेव की महिमा - कीर्त्तनमें हमलोगोंकी रुचि न रहनेपर भी आदरके साथ उनके गुण- महिमाका श्रवण करते ही उनके चरणमें हमलोगोंकी श्रद्धा या प्रीति होगी । हमलोगोंके निष्कपट होनेसे गुरुसेवकगण निश्चय ही हमलोगोंको गुरुसेवाका सन्धान देंगे, कितने स्नेह कीर्त्तन और आदरके साथ हमलोगोंको गुरुपादपद्मकी सेवामें नियुक्तकर श्रीगुरुकी प्रीतिका विधान करेंगे । भूलसे यदि कोई गुरुदास वैष्णवको एकमात्र आश्रय समझकर श्रीगुरुपादपद्मकी कथासे अलग रहना चाहें तो गुरुसेवक उसको यत्नके साथ श्रीगुरुपादपद्ममें आकृष्ट करते हैं । गुरुसेवक कभी भी किसीको अपना सेवक नहीं समझते उनकी सर्वत्र ही गुरुबुद्धि है । मैं सेवक हूं-श्रीगुरुका नित्य अयोग्य भृत्य । श्रीगुरु ही एकमात्र हमारे सेव्य एवं गुरुकेसेवक सूत्रसे गुरुसेवकगण हमारे पूज्य या सेव्य हैं यही गुरुदासका भाव है । इसी गुरुदास्यमें उनके नित्य प्रतिष्ठित रहनेके कारण गुरुदासानुदासाभिमान ही उनका सम्बल (सर्वस्व) है । यह वैष्णवी प्रतिष्ठा सभी की काम्य है । इसके अतिरिक्त इतर-कामना गुरुदासकी नहीं रहती । गुरुदास सर्वदा गुरुका ही सङ्ग करते हैं, गुरुके ही साथ रहते हैं । वे गुरुका सङ्ग छोड़कर एक मुहूर्त्त भी नहीं रह सकते । गुरुके लिये ही उनका सब कुछ है । गुरुकी सेवा ही उनकी सत्ता है । श्रीगुरुदेव समस्त (सभी)वस्तु और

व्यक्तिको भगवानकी सेवामें नियुक्त करते हैं और गुरुदास वैष्णव सभीको गुरु सेवामें नियुक्त कर देते हैं। वे सर्वत्र गुरुका अवस्थान उपलब्ध करते हैं। गुरुके असाक्षात् या अज्ञातरूपमें कुछ भी कार्य नहीं करते। वे जानते हैं कि अन्तर्यामी श्रीगुरुदेव सर्वत्र अवस्थानकर उनके प्रत्येक कार्यकलापको दर्शन कर रहे हैं, नवीन सेवाकी प्रेरणा कर रहे हैं और इङ्गित कर रहे हैं।

उसका प्रत्येक कार्य श्रीगुरुको सन्तोष दे रहा है कि नहीं, यह वे सर्वदा सतर्कताके साथ लक्ष्य करते हैं। उनकी विरामता नहीं। इसीलिये वे गुरुपादपद्म ... में निमग्न रहकर सेवोन्मुखोचित हो सब ... सेव ... विभोर हैं। ये श्रीगुरुदास श्रीगु रुपादपद्ममें जैसा प्रीतिविशिष्ट हैं, श्रीभगवान्में भी उनकी प्रीति वैसी ही है। गुरुमें प्रीति है किन्तु भगवान्में प्रीतिका अभाव-यह गुरुकी प्रीतिके नाम से कुछ दूसरा है। इसका कारण यह है कि गुरु और कृष्ण परस्पर अविच्छेद-सम्बन्ध विशिष्ट या अङ्गाङ्गिभावयुक्त हैं। सुतरां एकको छोड़कर एककी सेवा नहीं होती। श्रीगुरुपादपद्ममें पूर्ण शरणागति का जो भाव है वही श्रीगुरुदास सम्बन्धमें भी चाहिये। तात्पर्य यह है कि गुरु, वैष्णव और भगवान् ये तीनोंके प्रति प्रीति होना स्वाभाविक है। यही श्रद्धाभक्ति है। सब मूल (जड़) श्रीगुरुपादपद्म हैं। उसकी कृपासे ही सब कुछ होता है; नहीं तो सारी चेष्टा व्यर्थ है।

परीक्षित (१)

महाराज युधिष्ठिरका कुरुक्षेत्रके युद्धमें विजय होने पर कृष्ण भगवान् युधिष्ठिरको राजगद्दीपर बिठाकर अपने धामकी ओर गमन करनेके लिये तैयार हुए। उस समय एक घटना हुई। महाराज परीक्षितकी माता उत्तरादेवी बहुत घबराई हुई भगवानके चरणोंमें आ गिरीं। कारण पूछने पर बतलाया कि एक ज्वलन्त अस्त्र उनकी ओर आ रहा है। भगवानने समझा कि अश्वत्थामाने पाण्डवों के कुल का नाश करनेके लिये एक ब्रह्मास्त्र छोड़ा है। भगवानने तुरत उत्तराके गर्भमें प्रवेश कर सुदर्शन-अस्त्रसे ब्रह्मास्त्रको रोका। उस समय परीक्षितको भगवानके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। परम पुरुषका वह सुन्दर रूप देखते हुए परीक्षितने सोचा--ये सुन्दर-मूर्त्ति वाले पुरुष कौन हैं? देखते देखते ही भगवान् अन्तर्द्धान हो गये। उसकेबाद शुभ कालमें अनुकूल ग्रहोंके सम्मिलित होने पर महाराज परीक्षित भूमिष्ठ हुए। धर्मराज युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंके द्वारा बालकका जातकर्म करवाया और उनलोगोंको बहुमूल्य सामग्रियां भेंटकीं। ब्राह्मणलोगोंने सहर्ष कहा हे महाराज! आपके इस वंशधरके दैवात नाश होनेपर भी आपके प्रति अनुग्रह प्रकाश कर नारायणने इसको फिर लौटा दिया। इस बालकके भगवानसे रक्षित होनेकी वजहसे इसका नाम हुआ विष्णुरात। यह महात्मा, वैष्णवोचित और अन्य बहुतेरे गुणों से युक्त पुरुष होगा। यह मनुपुत्र इक्ष्वाकुके समान प्रजारञ्जक, श्री रामचन्द्रके बराबर प्रजा हितकारी और सत्यप्रतिज्ञ होगा। यह शिविराजाके तुल्य वदान्य और शरणागत पालक, महावीर धनंजय और कार्त्तवीर्यके समान धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ तथा दुर्जेय होगा।

यह बालक सिंहके समान शक्तिशाली, हिमालयके साधुओंकी अनन्यगति, पृथ्वीके समान क्षमाशील धीरतामें बलिराजाके तुल्य और लक्ष्मीपति नारायण के समान बराबर सकल प्राणियों का अवलम्ब होगा। यह जन्मेजय राजर्षिका जन्मदाता, असत्मार्ग में गमन शील व्यक्तियोंका शासनकर्ता और कलिका दण्डदाता होगा। पश्चात शमीकके पुत्र शृंगके भेजे हुए तक्षक नागसे अपना विनाश जानकर विषयसे विरक्त हो श्रीहरिके श्री चरणोंमें एकान्त भजनशील होगा और व्यासपुत्र शुकदेवके-मुखारविन्दसे परमार्थ तत्व सुनकर भगवचरणकमलको प्राप्त करेगा।

यह बालक, जन्मग्रहण करनेके उपरान्त, मातृगर्भमें दर्शन किये हुए परम पुरुष भगवानका ध्यान करते-करते, संसारमें जिस जिस प्राणीको देखता था उन सबकी ही परीक्षा करता था कि "यह वही सुन्दर पुरुष है? इसलिये उसका नाम हुआ परीक्षित। वह बालकपनसे ही महाभक्त और सब जन-हितकारी हुआ।

महाराज युधिष्ठिर कलिकाल का समागम समझकर और परीक्षितको राज्य सौंपकर भगवच्चरणकमल का ध्यान करते हुए उत्तर दिशा की ओर चल पड़े। उनके भ्रातृगण भी उन्हींका अनुगमन किया।

महाराज परीक्षितने उत्तरकी कन्या इरावतीसे विवाह किया और ब्राह्मणोंके उपदेशसे राज्यका संचालन आरम्भ किया। उन्होंने तीन अश्वमेध-यज्ञ का अनुष्ठान किया जिसमें देवताओंने प्रत्यक्ष रूपसे दर्शन दिया था और भद्राश्व, केतुमाल, भारत, उत्तर कुरु तथा किम्पुरुष वर्षों के राजाओं को जीतकर कर ग्रहण किया। उन सब स्थानोंमें भगवान् कृष्णचन्द्रके माहात्म्यके साथ अपने पूर्व पुरुष पाण्डवोंकी महिमा सुनकर बहुत ही हर्षित हुआ। जिन भगवान कृष्णचन्द्रको पृथ्वीके समस्त जीव प्रणाम करते हैं, उन्होंने ही पाण्डवों का सारथी, पार्षद, सभापति, सखा, द्वारपाल इत्यादि बन कर उनकी विचित्र सेवा की। यह सब बातें सुनकर भगवच्चरणकमलमें परीक्षित् महाराजकी अत्यन्त भक्तिका उदय हुआ।

इसी समय एक घटना परीक्षितके कर्णगोचर हुई। बैलरूपी धर्मने एक चरणमें टहलते टहलते गो-रूपिणी पृथ्वीको रोती हुई देखकर पूछा—हे पृथ्वी! क्या तुम्हारे शरीरका कुशल है। तुममें किसी बीमारीका लक्षण नहीं देख पड़ता परन्तु मलिन मुखकान्ति देख कर यह समझ पड़ता है कि तुम्हारे हृदयमें कुछ कष्ट है। क्या तुम्हें किसी दूरस्थित मित्रके लिये शोक है अथवा मेरा तीन चरण शून्यभाव देखकर ही यह कष्ट है; — कलिमें शूद्र राजा तुम्हारे ऊपर आधिपत्यका विस्तार करेंगे यह जान दुःख होता है। आजकल पतिलोग स्त्रियों को और पितृगण संतानोंकी रक्षा नहीं करते हैं बल्कि राक्षसोंके समान व्यवहार करते हैं। सरस्वती देवी सदाचारहीन ब्राह्मणोंकी सेवा करती हैं तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग विग्रहरूपी क्षत्रियोंके सेवक बन गये —क्या यही तुम्हारी तकलीफकी वजह है? कलि द्वारा आक्रान्त अधम क्षत्रियगण भविष्यमें राज्यका नाश करेंगे अथवा प्रजागण शास्त्रकी आज्ञा न सुनकर अपनी अपनी इच्छाके अनुसार पान, भोजन, अवस्थान, स्त्रीसंगादी करते हैं, यही एक दुःख का कारण है? हे धरित्रि! जिन भगवान् श्रीहरिने तुम्हारे प्रबल भार हटानेके लिये अवतीर्ण हो अनेक आनन्दप्रद लीलायें की थीं वे ही भगवान् अन्तर्द्धान कर चुके

क्या तुम इसीलिये सोचरही हो ? पहिले तुम्हारा जो सौभाग्य था, क्या कालने उसको हरण कर लिया ?

धरणीने कहा , हे धर्म ! सत्य, शौच, दया, त्याग, सरलता, शम , दम, तपस्या ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य इत्यादि महत गुणोंके नित्य आश्रय भगवान श्रीहरि ने इस मृत्युलोकको त्यागा, इसी कारण मैं शोचकर रही हूँ। आपको, मेरी, तथा देवतागण पितृगणसाधुगण ब्राह्मणादि वर्ण और ब्रह्मचर्यादि आश्रमोंकी बुरी दशा देखकर मैं दुःखित हूँ । ब्रह्मादि देवोंने जिन कमलाकी किंचित् कृपाके लिये बहुत दिन तपस्याकी थी वही लक्ष्मीजी अपना निवास-स्थान कमलवन छोड़कर जिस कृष्ण भगवानके श्रीचरण कमलकी सेवा अनुराग -सहित करती हैं, उन भगवानके श्रीचरणारविन्द के विचित्र चिन्हसे मैं शोभायुक्त थी, शायद उससे मेरा गर्व हुआ था । उसीगर्वके नाश करनेके लिये ही श्रीकृष्णने मुझे छोड़कर अपने धामकी ओर पधारा है । मेरे शोकका कारण यही है । मेरे हजारों असुरराजासे पीड़ित होनेसे जिन भगवानने असुरोंका विनाशकर मेरा बोझ हटाया, यदुकुल में जन्म लेकर आपकी भी रक्षा की जिनकी प्रेमपूर्ण दृष्टिसे सत्यभामा आदि कामिनियां अपनी अपनी धीरता और अभिमान खो बैठी थीं, जिनके चरण स्पर्शसे मुझेभी अत्यन्त आनन्द का अनुभव होता था, उनकी विरह कौन सहन कर सकता है ? उन दोनोंमें ऐसा वार्त्तालाप होता था इसी मौके पर परीक्षित् महाराज कुरुक्षेत्रके समीप सरस्वती के किनारे आ पहुंचे ।

महाराजने वहां देखा कि एक शूद्र राजा एक गाय और एक बैलको दण्डसे ताड़ना कर रहा है । बैल डरके मारे एक पैरके ऊपर खड़ा हो बीच बीचमें पेशाब करता है और गाय अत्यन्त कातर हो घास खानेकी इच्छा करती है । महाराजने ऐसी दशा देखकर बहुत ही क्रोधसे धनुषवाण लेकर गम्भीर स्वरसे पूछा---अरे तू कौन है ? तेरी इतनी शक्ति है कि तू मेरे शरणागत दुर्बल प्राणी की हिंसा करता है, तेरा वेष राजाका है किन्तु तेरा कार्य तुझे शूद्र बतलाता है । भगवान कृष्णचन्द्रके गाण्डीवधारी अर्जुनके साथ पृथ्वी त्यागनेके कारण ही क्या तेरी ऐसी हिम्मत हुई है ? इसलिये तुझको दण्ड देना मुनासिब समझता हूँ ।

तत्पश्चात बैलसे कहा--तुम कौन हो ? तुम्हारा वर्ण मृणालके समानशुभ्र है । क्या तुम कोई देवता हो ? वृषरूप धारण करके मुझे ठगते हो । कौरव श्रेष्ठ वीरोंके द्वारा इस राज्यमें तुम्हारे सिवा और किसीको रोते नहीं देखा । तुम्हें घबरानेकी आवश्यकता नहीं है ।

इसके बाद गायसे कहा - हे माता । तुम्हारे रोदन की भी जरूरत नहीं है । मैं दुष्टों का शासन कर्त्ता वर्तमान हूँ । मेरे रहते तुम्हरा मंगल अवश्य ही होगा । जिनके राज्यमें प्रजालोग असत व्यक्ति के द्वारा पीड़ित होते हैंइस दुराचारी राजाकी आयु , परलोकादि सभी नष्ट हो जाते हैं ।

पीड़ितोंका कष्ट हटाना ही राजाका परम धर्म है । अतएव मैं इस असाधु श्रेष्ठ शूद्रका विनाश करूंगा। हे सुरभीनन्दन ! तुम चतुष्पद हो । तुम्हारे और तीन पांव किसने काट डाले । श्री कृष्णके अनुयायी पाण्डवोंके राज्य में तुम्हारे समान कष्ट और किसी ने नहीं उठाया । हे वृष ! मुझे बताओ किस व्यक्तिने पाण्डवोंकी कीर्त्ति कलुषित की है जो-निरपराध व्यक्तिको तकलीफ देता है। मुझसे उसका भय अवश्य ही है । दुष्टोंके दमनसे ही साधु

ओं का मंगल होता है। जिस दुर्वृत्तने निर्दोष जीवोंकी हिंसा की है उसे देखना होने पर भी मैं सजा दूंगा। जो लोग शास्त्रके अनुसार धर्मका पालन करते हैं उनलोगोंका पालन करना और जो शास्त्रकी आज्ञा लंघन करते हुए स्वतन्त्र भावसे कार्य करता है उसका शासन करना ही राजा का परम धर्म है।

धर्मनेकहा–हे महाराज! जिस वंशके गुणों से आकर्षित हो कृष्ण भगवान्ने अपनी इच्छासे दूतोंका कार्य करना स्वीकार कर लिया था, उन पाण्डवोंके वंशधर आपकी ये बातें मुनासिब हैं पर किससे प्राणियों का क्लेश होता है वह वाक्य भेदसे समझा नहीं जा सकता। किसी किसी का कथन है कि भेदके अवस्थानके कारण क्लेश होता है, भेद ही सत्य-वस्तुको आच्छादित कर । है। योगी कहते हैं कि आत्मा ही आत्मा का प्रभु है। वह भगवान से स्वतंत्र होने की वजह सुख या दुःख प्राप्त करता है। अद्वैतवादियोंके विचारसे द्वैत वस्तु मिथ्या होनेके कारण, सुख दुःखकी बिलकुल उत्पत्ति नहीं मानी जाती। वेदके आश्रयसे ही इन सब मतोंकी सृष्टि हुइ है। अवैदिक मत से भी मालूम होता है कि ग्रह नक्षत्रादि ही सुख दुःखके कारण हैं। पूर्व मीमांसाकार जैमिनीके अनुसार जीवके द्वारा अनुष्ठित धर्म को ही कारण समझा जाता है। नास्तिक चार्वाक आदि स्वभावका ही कारण निर्णय करते हैं। सांख्यवादियों की विचारधारा दूसरी ही है। कोई कहता है कि वचन और मनके अतीत भी अनिर्दिष्ट कारण है जिससे इन की उत्पत्ति होती है। अतएव हे वैष्णवराज आपही कृपाकर अपनी बुद्धिसे इसका विचार कीजिये। धर्मकी बातें सुनकर सम्राट परीक्षित् ने विशेष ध्यानसे सोच कर कहा - हे धर्मज्ञ! धर्मशास्त्रमें कहते हैं कि अधार्मिक तथा पापिष्टकी जो लोक में गति होती है अधर्मको बताने वालोंको भी उसी स्थानमें जाना पड़ता है। इसी लिये अपने अनिष्ट कारीको जान बूझकर भी नहीं बता रहे हैं। सुतरां आप स्वयं ही धर्म हैं और वृष का रूप धारण किया है। किम्वा देवी मायाकी गति जीवोंको इन्द्रियातीत है सत्य युगमें सत्य, तपस्या, शौच और धर्म इन चार वस्तुओं से आपके चार चरण पूर्ण थे अब कलिके प्रभावसे तीन पांव नष्ट हो गये अर्थात् तपस्या, शौच और धर्म ये तीन वस्तुएं नष्ट हो गईं। जो चरण बाकी है, वह है सत्य। अधर्मरूपी कलि उसको भी नाश करना चाहता है। ये गौरूपिणी पृथ्वी हैं, ब्राह्मणोंके अनहितकारी शूद्र लोग उनका सम्भोग करेंगे इसी कारण यह पृथ्वी सोच रही है। ऐसा कहते हुए धर्म और पृथ्वी को आश्वासन देकर महाराजने कलिको काटनेके लिये अस्त्रधारण किया। कलि परीक्षित् को मुस्तैद देखकर राजवेष छोड़कर महाराजके चरणों में गिर पड़ा। दीनवत्सल शरणागतपालक महाराज परीक्षित् कलिको पैरोंमें पतित देखकर उसके विनाशसे निवृत्त हो उससे बोले हे कलि! गुडाकेश अर्जुनके वंशधरोंके निकट अंजलिबद्ध होनेसे किसीका और भय नहीं रहता। पर तुम मेरे राज्यमें कहीं भी ठहर नहीं सकोगे। तुम अधर्म के प्रधान सहचर हो। तुम्हारे राज शरीरमें वर्तमान रहने से तुम्हारे पश्चात् लोभ, मिथ्या, चोरी, दुष्टता, स्वधर्मत्याग, अलक्ष्मी कपटता, झगड़ा, दम्भ प्रभृति अधर्म सकल आ उपस्थित होते हैं। सुतरां हे अधर्मबन्धु, जहां धर्म और सत्यको रहना चाहिए, जहां याज्ञिक ब्राह्मण सदा यज्ञ द्वारा यज्ञेश्वर विष्णुकी पूजा करते हैं, और जहां सचल तथा अचलोंके आत्मा याज्ञिक

धर्मके मंगलका विधान करते हैं, उस अधार्मिक प्रदेशमें तुम ठहरनेके योग्य नहीं हो। महाराजकी ऐसी आज्ञा होने पर कलिने कांपते हुए कहा,— हे सार्वभौम! आप पृथ्वीके एकमात्र सम्राट हैं। सुतराम् मैं जहां निवास करनेकी इच्छा करूंगा वहीं आपके शासनदण्डको मेरे लिये तैयार देखूंगा। अब आप ही कृपाकर मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं कहां ठहरूं। कलिकी यह प्रार्थना सुनकर परीक्षितने उसे चार स्थानका निर्देश कर दिया। [१] द्यूतक्रीड़ा, [२] पान, [३] स्त्रीसंग और [४] प्राणिहिंसा। द्यूतक्रीड़ा कहनेसे ताश, पाशा, जुआ घुड़दौड़, इत्यादि प्रकार खेलोंको समझना चाहिये। ये सब खेल विभिन्न स्थानोंमें विभिन्न प्रकारके हैं। 'पान' कहनेसे नशीली चीज समझी जाती है। पान, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, चा, अफीम, गांजा, भांग, शराब, इत्यादि 'पान' में गिने जाते हैं। इनसे चित्त चंचल होता है। जो धार्मिक होना चाहते हैं उनको इन चीजोंसे पृथक् रहना चाहिये। स्त्रीसंग दो किस्म का है, अपनी स्त्रीमें अत्यन्त आसक्ति और अपरनी स्त्रीका संग करना। जिन जिन सम्प्रदायोंमें ये सब व्यापार चलते हैं, वहां कलि विराजता है, सुतराम् उन स्थानोंमें धर्मका लेश भी नहीं है। प्राणिहिंसाको 'सूना' भी कहते हैं। जो व्यक्ति भगवत् भजन करते हैं वही इससे स्वतन्त्र रहते हैं। कारण कि उनकी हरेक चेष्टा भगवत्सेवाके लिये ही है। हरिसेवाविमुख जीव क्षण क्षणमें जीवहिंसा करते हैं। कर्मकाण्डके प्रायश्चित्तमें पंचसूनाके निवारणके लिये पंच यज्ञकी व्यवस्था है। उससे पापबीजका नाश नहीं होता। प्राणिहिंसा बहुत किस्मकी है। अपने शरीरको पुष्ट करनेके लिये दूसरे-प्राणीकी हत्या करनेसे हिंसा होती है। इस जन्म में जिसको वध किया जाता है वह दूसरे जन्म में उसका बदला लेता है अर्थात् वधकारीको वध करता है। केवल अपने हाथसे वध करने से ही हिंसा समझी जाती है, ऐसा नहीं। बल्कि मनुसंहितामें यह भी कहा है कि

> अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
> संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकाश्चेति घातकाः॥

जो आज्ञा देता है जो मांसका विभाग करता है, जो स्वयं हत्या करता है, जो खरीदता है, जो परोसता है और जो भोजन करता है—इन सब व्यक्तियोंको घातक या हत्याकारी समझना चाहिये। कर्मकाण्डमें जो यज्ञादि कार्यमें पशुहिंसा की व्यवस्था है, वह केवल प्रवृत्ति मार्गके व्यक्तिको निवृत्तिमार्ग में ले जानेके लिये ही है।

उपर्युक्त चार स्थान प्राप्त करने पर भी कलिने फिर एक स्थान मांगा जहां इन चारों वस्तुओंका निवास हो सके। उसकी प्रार्थनाके अनुसार पुनश्च महाराजने अर्थको भी दे दिया। उसीमें मिथ्या अहंकार, काम, हिंसा, क्रोध आदिका निवास है। सुतराम् जो व्यक्ति अपनी उन्नति चाहता है, वह इन सब स्थानोंमें कभी नहीं रहेगा। विशेषतः धार्मिक व्यक्ति, राजा, मुखिया, गुरु प्रभृतिको इससे सर्वदा हुशियार रहना चाहिये। इसके उपरान्त महाराज परीक्षितने वृष के चारों चरणको संयुक्त कर दिया और पृथ्वीको मधुर वचन से आश्वासन दिया। जिस दिन कृष्ण भगवान्ने इस पृथ्वीको त्यागा उसी दिनसे कलिने पृथ्वी पर अपना आसन जमा लिया। सम्राट परीक्षित्ने कलिको बिलकुल नष्ट नहीं किया। कारण, वे सारग्राही थे। उन्होंने देखा कि कलियुगमें केवल नाम संकीर्त्तनसे मनुष्य समस्त पापों का नाश करके परमपुरुषको प्राप्त कर सकता है। बालकोंके पास ही जिसकी वीरता है, और साधुओंको देखनेसे ही जो डरता है, उसके अवस्थानसे कुछ भय नहीं है।

शरणागति

साधक-जीवनकी प्रथम एवं प्रधान आवश्यकता शरणागति है। भजन-राज्यमें प्रवेशके साथ ही प्राथमिक शिक्षाके सदृश इस बातकी शिक्षा दी जाती है एवं सिद्ध अथवा प्रयोजन (भगवद् प्रेम) प्राप्त होने तक तथा उसके उपरान्त भी शरणागति ही एकमात्र वरणीय वस्तु है। यह शिक्षा जो जितना ग्रहण कर सकते हैं अर्थात जितना शरणागत हो सकते हैं भजन-पथमें क्रमशः वे उतनीही उन्नति कर सकते हैं। शरणागत नहीं होनेसे भजन-राज्यमें प्रवेशाधिकार नहीं होता। दाम्भिकताके अवलम्बन करनेसे भजनराज्यमें प्रवेश तो दूरकी बात रही, भजन राज्यका अनुसन्धान भी नहीं मिलता। एकान्त शरणागत जन ही साधकजीवनका परम प्रयोजन कृष्ण चरणारविन्द प्राप्त कर सकते हैं, दूसरों के लिये यह सम्भव नहीं है। यहां पर प्रश्न हो सकता है कि किसका शरणापन्न होना चाहिये?

इसका उत्तर यह है कि कृष्णके जो पूर्ण शरणागत हैं, सौ हिस्सेमें सौ हिस्सा कृष्णकी प्रसन्नताके कार्यमें तत्पर हैं, अपने किसी सुख सुविधा या लाभ की आशासे नहीं, कृष्णके सुखके लिये या सेवाके उद्देश्यसे ही सेवा करना सेवकका एकमात्र कृत्य है, यह जानकर जो सेवा करते हैं, वे ही सच्चे शरणागत साधु हैं। जो पूर्ण शरणागत हैं, एकमात्र वे ही शरणागतिके शिक्षक हो सकते हैं। उसी शरणागत साधुका अनुगत [आश्रित] होना पड़ेगा। कारण, हमलोगोंका साधन कृष्णप्रीतिविधान करनेकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये है। जो इस कार्यमें तत्पर हैं- वेही उसकी योग्यता दे सकते हैं, यह और किसीके लिये साध्य नहीं है। इसप्रकारके शरणागत साधु ही श्रीगुरुदेव या श्रीआचार्यदेव हैं। श्रीआचार्यदेव जगद्गुरु हैं, और उन्होंने शरणागतिके शिक्षारूपसे जो आदर्श जगतमें स्थापित किया है उस आदर्शको शरीर मन तथा वचन द्वारा अनुसरण करनेसे ही पतित जीवोंके समस्त अमंगल दूर हो जायेंगे। सर्वस्व समर्पण करके जो कृष्णके हो गये हैं कृष्ण को छोड़कर जिनको और किसी विषयकी चिन्ता नहीं है, उन कृष्णभक्तको शरणागत होनेके लिये सम्पूर्णरूपसे उनकी वाणीका अनुसरण करना होगा (अर्थात उनके उपदेशानुसार चलना होगा)। वाणीको छोड़ देनेसे उनका वास्तवरूपसे अनुसरण नहीं हो सकेगा। वास्तव रूपसे अनुसरण नहीं करने से अनुगत होना सम्भव नहीं होगा। सुतरां श्रीआचार्यदेवके सहित समचित्तवृत्ति विशिष्टता (एक ही प्रकारकी चित्त वृत्तिका होना) उनके आचार प्रचारका वास्तविक अनुगमन, उनके अनुग्रह निग्रहको (ताड़ना) समभावसे ग्रहण करना, अपनी निष्कपट आर्त्ति, दैन्योक्ति, अपनी अयोग्यताको जानकर सेवा प्रार्थना, और उनकी कृपा बिना अपने अथवा दूसरोंकी चेष्टा द्वारा कुछ लाभ नहीं होता—इस प्रकारकी पूर्ण निर्भरता ये अनुसरणकारीका लक्षण हैं। जो इस प्रकार की अवस्था में प्रतिष्ठित हुए हैं, उन्होंने सच्चे रूपसे आनुगत्य स्वीकार किया है। पूर्ण शरणागत नहीं होनेसे भजन आरम्भ ही नहीं होगा, हरि नामके बदले नामापराध होगा।

अनुगत होनाही वैष्णव धर्मका मूल उपदेश है। सुतरां श्री गुरु वैष्णवकी सेवाप्राप्ति की थोड़ी सी आकांक्षा यदि हृदयमें उदित हो

तो अपनेको सम्पूर्णरूपसे उनके चरणारविन्दमें नहीं समर्पण करनेसे कभी भी सेवालाभ नहीं होता। वर्तमान समयमें हमलोग जैसे अनुगत हैं उससे नित्यमङ्गलकी आशा अत्यन्त दूर है। मायाका दासत्व करके सम्पूर्णरूपसे मायाका ही आनुगत्य हमलोगोंने स्वीकार किया है। यद्यपि हमलोगोंमेंसे कुछलोग मुखसे अपनेको अनुगत कहकर परिचय देते हैं तथापि निष्कपट होकर विचार करनेसे ही मालूम हो जाता है कि हम किस प्रमाणमें शरणापन्न हो सके हैं। स्वतन्त्र जीवन यापन अर्थात् आनुगत्य स्वीकार नहीं करनेकी ऐसी तीव्र आकाङ्क्षा क्यों देखनेमें आती है? मुखसे अनुगतका अभिनय करके हृदयकी गुफामें स्वतन्त्र जीवन-यापन करनेकी आकाङ्क्षाका मूल कारण हमलोगोंकी दुर्दमनीय भोग प्रवृत्ति है। यह विरूपका (कुत्सित, कुरूपका) धर्म है—इस धर्म में स्वभावका विकृत (मलीन) प्रतिफलन (प्रतिबिम्बन) होता है। जिस प्रकार दर्पणमें प्रतिबिम्ब देखने से स्वाभाविक अवस्थाके विपरीतका दर्शन होता है, उसी प्रकार हमलोगोंके सच्चे स्वभावका विपर्यय होनेसे हमलोगोंकी प्रत्येक धारणा कार्य, चेष्टा तथा चिन्ता स्त्रोत, विपरीत भावकी देखी जाती है। भोक्ताके अभिमानसे (अर्थात् मैं भोग करूंगा इस विचार से) प्रभुत्वकी कामना प्रति अणुपरमाणुमें घुसा हुआ है। संसारको दिखलानेके लिये अनुगतका अभिनय, इसी कारण अधिक दिन तक नहीं ठहरता है, कुछ दिन तक गुप्त रहकर सुविधा पानेसे ही प्रभुत्व करनेकी इच्छा फिर पूर्णरूपसे हृदयमें जागृत हो जाती है। विकृत स्वभावसे उत्पन्न ऐसी रुचिको अपने सच्चे स्वभावमें फिराकर लाने के लिये आनुगत्य स्वीकार करने अर्थात् श्रेष्ठ साधुका दास हो जानेके सिवा और कोई उपाय नहीं है। (क्रमशः)

विविध-संवाद

गत ५ तथा ६ मार्चको श्रीगौड़ीय मठ, बम्बईके प्रेमियोंने महाप्रभु श्री कृष्णचैतन्यके आविर्भावकी तिथिका उत्सव कल्याण दास बिल्डिङ्गस, गोवालिया, टैंक स्थित श्रीगौड़ीय मठमें बहुत ही समारोहके साथ मनाया। उस रोज पूजा अर्चा सेवा कथा व्याख्यान नाम संकीर्त्तन, महाप्रसादका वितरण इत्यादि हुआ।

५ मार्चको श्रीमनमहाप्रभुके आविर्भावकी तिथिके दिन, मठके ब्रह्मचारियोंने आरती इत्यादिके बाद विधिपूर्वक नाम संकीर्त्तन किया। उसके बाद एक ब्रह्मचारीने अंगेरेजीमें उस तिथीकी महत्ता पर भाषण दिया जिसके अन्तमें महामन्त्रका कीर्त्तन हुआ। तदनन्तर श्री चैतन्यभागवतका पाठ हुआ। सन्ध्या ६॥ बजे नामसंकीर्त्तनके बाद सन्ध्यारतीकी गई। सन्ध्यारतीके बाद श्रीपाद राघवचैतन्य ब्रह्मचारी तथा अन्य ब्रह्मचारियोंने अंगरेजी, गुजराती तथा हिन्दीमें श्री चैतन्य महाप्रभुकी जीवनीका वर्णन किया। ततपश्चात महामन्त्रका कीर्त्तन हुआ। उसके बाद महाप्रसादका वितरण किया गया।

६ मार्चको ९ बजेसे ३ बजे तक करीब ४०० भक्त लोगोंको अनेक प्रकारके प्रसाद वितरण किये गये। पंचमुखी मन्दिर, भुवनेश्वरके महन्त श्री नरसिंहदासजी महाराजने प्रसाद वितरणका खर्च दिया। महन्त जी ने इस सुकार्जमें बहुत उत्साह दिखलाया तथा भविष्यमें भी यथा शक्ति श्रीगौड़ीय मठकी सहायता करना स्वीकार किया। ये उत्सव बहुत ही समारोहके साथ सम्पन्न हुये।

SREE KRISHNA CHAITANYA

BY PROF. N. K. SANYAL, M. A.

Late Senior Professor of History, Ravenshaw College, Cuttack.

A rational, scientific and comprehensive study based on the SHRAUTA PATH, with a highly appreciative foreward by His Divine Grace Paramahansa Srimad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami with an Introduction containing full information for following the narrative of events, as well as with an Index and a Glossary Royal 8 vo 800 pages, handsome calico jacket—Price Indian Rs. 15/-, Foreign 21 s nett.

To be had at **SREE GAUDIYA MATH,** Baghbazar, Calcutta.

SREE BRAHMA SAMHITA (Fifth Chapter)

With commentary by Sri Jeeva Goswami and translation and purport in English by His Divine Grace Sreemad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami

First class calico binding—Rs. 2-8-0.

RELATIVE WORLDS

A lecture delivered on the 28th August 1932 at the Saraswati Assembly Hall of Sree Gaudiya Math, Calcutta by His Divine Grace Ans. 0-6-0

A few words on Vedanta by His Divine Grace—Ans. 0-8-0

The Vedanta its Morphology and ontology by His Divine Grace—Ans. 0-8-0

THE BHAGBAT

Its Philosphy, Its Ethics and its Theology New enlarged edition with an appendix by Srila Prabhupad Full calico bound—Rupee One Thick paper bound—Twelve Ans.

(बंगला में)

श्रीमद्भागवतम्

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास—प्रणीत, मूल, श्रीमन मध्वाचार्यकृता तात्पर्य निर्णयटीका, श्रीमद् विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर-कृत सारार्थदर्शिनी टीका, बंगानुवाद, संस्कृत अन्वय व प्रतिशब्द, तथ्य व विवृत्यादियुक्त। प्रति स्कन्धके आरम्भमें उस स्कन्धका प्रतिपाद्य कथासार, प्रत्येक अध्यायके प्रथममें उस अध्याय सारके साथ सुविस्तृत तात्पर्यादि विवृत है। श्लोकसूची, विषयसूची अध्याय-विवरण, पत्र व स्थान-सूचीके साथ उत्तम कागजपर उत्तम अक्षरमें मुद्रित। प्रथमसे १२वां स्कन्धतक छपा सम्पूर्णरूप-से शेष हो गया है। भिक्षा प्रथमसे १२वां स्कन्धतक ४०), १०म स्कन्ध सम्पूर्ण बिना बंधा हुआ ८) और कपड़ेकी बंधाई ९) मात्र।

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

श्रील कविराज गोस्वामीकृत। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर रचित 'अमृतप्रवाहभाष्य' व श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-लिखित 'अनुभाष्य' श्रुति-स्मृत्यादि अनेक शास्त्र प्रमाणके साथ प्रकाशित हुए हैं। श्लोककी सान्वय व्याख्या, बंगानुवाद व प्रत्येक पयारके पूर्व संक्षिप्त अभिधेय संयोजित है। प्रत्येक अध्याय के आरम्भमें उसी अध्यायका कथासार लिखा हुआ है। श्लोक, पयार, शब्द, स्थान, पात्रका सुवृहत सूची व ग्रन्थकारकी विस्तृत जीवनी–समन्वित इस तरहका अभूतपूर्व संस्करण इसके पहले कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ है। उत्तम कागजपर सजावटके साथ मोटे अक्षरमें मूलांश मुद्रित हुआ है ग्रन्थ प्राय १५०० पृष्ठमें सम्पूर्ण है। भिक्षा बिना बंधा हुआ ६) कपड़ेकी बंधाई ७) मात्र।

श्रीचैतन्यभागवत

श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचित गौड़ीय भाष्यके साथ ग्रन्थका आयतन—क्राउन ४ पेजी मूल १०१६ पृष्ठ, सूचीपत्र २४४ पृष्ठ—कुल १३४० पृष्ठ भिक्षा—६) मात्र (बिना बंधा हुआ)।

Printed by:— Brajeshwari Prasad, at The 'Indian Nation Press' and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

भागवत

एकमात्र

पारमार्थिक

मासिक पत्र

५ मधुसूदन	वैशाख कृष्ण ५
गौराब्द	संवत
४४३	१९८६ वि०

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिससे इन्द्रियज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि-लक्षणा फलाभिसन्धान रहिता एकान्तिकी स्वाभाविकी निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है - ऐसी भक्तिके बलसे अनर्थ शमन होने पर आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है।

प्रति संख्या -)॥ | सम्पादक-पं० श्रीपाद रूपविलास ब्रह्मचारी भक्तिशास्त्री | वार्षिक
डा० म०

Editor:— Pundit Sripad Rupbilas-Brahmachari, Bhaktishastri B.A.

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

भागवत

श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना)

वर्ष ५ | व० कृष्ण ४५३ म० १९९६ वि०, अप्रैल सन् १९३९ ई० | संख्या २

श्रीश्रील आचार्यदेव और राय बहादुर मदनगोपाल साहाना

गत १६ वीं अक्टूबर (१९३८) श्रीहरिवासर के दिन लखनऊके बाबागार्सी-बाग पल्लीस्थ 'श्रीकृष्णभवन' में युक्त प्रदेशके सिंचाई विभागके सुपरिण्टेन्डिङ्ग इञ्जिनियर (Superintending Engineer Irrigation Department,) राय बहादुर मदनगोपाल साहाना महाशयने श्रीगौड़ीय मिशनके सभापति परमहंस ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील अनन्त वासुदेव परविद्याभूषण गोस्वामी प्रभुका दर्शन करनेके लिये आगमन किया था। १९३२ सालके नवम्बर मासमें जिस समय प्रभुपाद श्रीगुरुदेव व्रजवन-परिक्रमाके उपलक्षमें मथुरामें ठहरे हुए थे उस समय राय बहादुर साहाना महोदयने श्रील प्रभुपादके श्रीचरणोंका दर्शन कर उनकी कृपा प्राप्त की थी।

राय बहादुर साहाना परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीपाद भक्तिसर्वस्व गिरि महाराजकी कृपासे श्रीश्रील आचार्यदेवका दर्शन प्राप्तकर परमानन्दित हुए और उन्होंने श्रीश्रील आचार्यदेवको यथोचित अभिवन्दनादिके द्वारा श्रद्धा प्रदर्शित की।

परदुःखदुःखी श्रीश्रील आचार्यदेव अहैतुकी कृपाके वश होकर साहाना साहबको कहने लगे — दिन द्रुतवेगसे बीतता चला जा रहा है। अतएव

आपसे हम लोगोंकी [illegible] प्रार्थना यही है कि हम [illegible] प्रभुपादकी कृपा अर्थात् [illegible] और आपका हरिकथा-श्रवण-कीर्तन [illegible] उत्तरोत्तर उत्साहान्वित देख सकें।

[illegible] मनमें यह प्रश्न उठता है कि [illegible] अनुसार हरि-नामकीर्तन [illegible] भजन है; किन्तु केवल [illegible] क्या चित्त स्थिर हो जायगा?

[illegible] प्रधान भजन [illegible] मात्र भजन—एकमात्र भजन [illegible] नामापर [illegible] किया [illegible] अपराध-युक्त कीर्तन [illegible]।

[illegible] नामापराध कौन कौन है?

[illegible] प्रथम नामापराध है। [illegible] साधु समझना [illegible]। यद्यपि कुछ लोग साधु-शब्दको [illegible] (साधारण शब्द) समझते हैं तो भी [illegible] ही प्रकृत साधुशब्द वाच्य है। पुरुषोत्तम [illegible] सेवकका नाम ही वैष्णव, सेवक या भक्त है। "साधु" means eternally [illegible] eternally [illegible], eternally Blissful (नित्य सत्, चित् और आनन्दमय)। संसारके धार्मिक-सम्प्रदायोंमें दो प्रकारके मत [illegible] श्रुति-स्वतन्त्र आध्यात्मिक युक्ति-[illegible] निर्णय किया हुआ) आरोहपथ और [illegible] (इन्द्रियातीत भगवान्) के पूर्ण शरणागतिका पथ या अवरोहपथ। आध्यात्मिक मतसे युक्ति या ज्ञानका पोषण करते करते भगवद्वस्तुको अनाम, अरूप, अगुण, अपरिकर, निर्लील वा निर्विशेषरूपसे कल्पना करते हैं और शरणागतिके पथसे स्वप्रकाश वस्तु नित्य नाम, रूप, गुण, परिकर और लीलामय निरङ्कुश स्वराटप्रभु पुरुषोत्तमरूपसे आविर्भूत होते हैं।

संसारके तथाकथित धार्मिक और अधार्मिक सम्प्रदायोंके अधिकांश लोग ही प्रथम श्रेणीके अन्त-र्गत हैं। जो दूसरे पथके पथिक हैं, वे साधु ही वैष्णव वा भगवद्भक्त हैं। वे भगवद्भक्ति, भगवान् और भक्तको नित्यवस्तुरूपसे उपलब्धि करते हैं—"ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः"—यही उन लोगोंका मन्त्र है। जो पुरुषोत्तम ऐतिहासिक, रूपक, आध्यात्मिक वा आधिभौतिक चिन्तास्रोतके परिमित वस्तु नहीं हैं, उन्हीं पुरुषोत्तमके सेवकको तथा कथित निर्विशेषवादीके समान समझना प्रथम नामापराध है। प्राकृत (मिथ्या) साधु कनक, कामिनी, प्रतिष्ठा यहाँतक कि मुक्तिकी भी कामना नहीं करते। वे एकमात्र श्री विलास प्रभुकी नित्य सेवामें प्रतिष्ठित रहते हैं। सेवाके लिये ही सेवा करते—अन्य उद्देश्यसे नहीं करते हैं।

महोदय! सा—इस प्रकारके साधुको तो कोई काम ही नहीं रहता, वे निष्क्रिय अवस्था लाभ करते हैं।

आचार्यदेव पुरुषोत्तमके सेवक साधु सबसे अधिक Active या सेवतत्पर होते हैं यह मैं पीछे कहूँगा। वे सब इन्द्रियोंसे सर्वदा अपने प्रभुकी सेवाके लिये निरन्तर चेष्टा करते रहते हैं। कृष्णसे आम्नाय परम्परा द्वारा शब्द ब्रह्मरूपमें जो वास्तव सत्य संसारमें अवतीर्ण हुए हैं, अहैतुक

कृपा-परवश होकर उसी सत्यवाणीको सर्वत्र वितरण (Broadcast) करनेमें उनलोगोंको एक मिनट भी विराम नहीं; वे सर्वदा सर्वेन्द्रिय-द्वारा Active वा सक्रिय रहते हैं।

साहीना सा:—प्रथम नामापराध समझमें आ गया। द्वितीय क्या है?

आचार्यदेव—शिवादि देवताओंको सर्वेश्वरेश्वर विष्णुका प्रतिद्वन्द्वी समझकर उनको विष्णुसे स्वतन्त्र या विष्णुके समान समझना द्वितीय नामापराध है। Krishna is the Transcendental Autocrat or Despot. He is the God of all gods or Absolute Prime cause of all entities. All other gods are mere limbs of His Shakti with delegated powers higher than men, अर्थात् कृष्ण विग्रह ही स्वयं पुरुषोत्तम, सभी ईश्वरोंके ईश्वर, सभी कारणोंके कारण हैं। अन्यान्य अधिकारी देवता उन्हीं शक्तिके कार्यमात्र हैं तब मर्त्य मानवसे श्रेष्ठ हैं। देवताओंका जन्म और ध्वंस है किन्तु विष्णु अज, नित्य, सनातन, विभु, चैतन्यानन्दमय वस्तु हैं; अतएव विष्णु और अन्यान्य देवताओंको समान समझना अपराध है।

साहीना सा:—तृतीय नामापराध क्या है?

आचार्यदेव—नामतत्त्ववित् गुरुदेवको मर्त्य बुद्धिके साथ असूया करना। भगवद्विमुखतारूपी पिता और कृष्ण-विस्मृतिरूपी मातासे दम्भके सहोदर असूया या मत्सरताकी सृष्टि होती है। नामापराधमें प्राकृत बुद्धि, मनुष्य बुद्धि प्रभृति असूयाकी सन्तान-(सन्तति) हैं। श्रीगुरुदेवका पूर्णरूपमें, स्नेहमय नियामक और शासकरूपमें वरण तथा उनके पूर्ण आनुगत्यमें विश्रम्भसेवा स्वीकार करके श्रीहरिनामका अनुशीलन करना होगा। श्रीगुरुदेवका शासन और आनुगत्य परित्याग कर, उनकी सेवासे दूर रहकर या स्वकपोलकल्पित उनका सेवक हो अभिनय कर लक्ष लक्षबार नामाक्षर उच्चारण करनेसे भी वह गुरु अवज्ञाका अपराध होगा। श्रीगुरुपादपद्म बद्धजीवका बन्धन छुड़ाकर अर्थात् चतुर्विध अनर्थ दूर कर पूर्ण सच्चिदानन्द पादपद्मके साथ मिलन करा देते हैं—विमुख जीवको उन्मुखता उदय करा देते हैं; सम्बन्धज्ञान, अभिधेय और प्रयोजनरूप तत्त्व वस्तु प्रदान करते हैं। उनकी ऐसी परदुःखकातरता ही उनका नित्य स्वभाव है। वे एक ही साथ जीवपर दया, नाममें रुचि और वैष्णव-सेवाकी शिक्षाके आदर्शके स्वरूपमें अपना आचार्यत्व प्रकाश करते हैं। He is a Transcendental mediator between the Absolute Krishna and His Servitors. Transparent not opaque ऐसी गुरुदेवमें मर्त्यबुद्धि करनेसे कभी भी मुखसे शुद्ध हरिनाम नहीं उच्चरित होंगे।

साहीना सा:—गुरुदेव क्या मनुष्य नहीं हैं? उनका क्या भ्रम, मृत्यु, और तृष्णा नहीं होती? यदि ये सब धर्म उनमें भी हैं तो किस प्रकार उनको अतिमर्त्य कहा जाय?

आचार्यदेव—हमलोगोंके भोग्य दर्शनमें अर्थात् "मैं द्रष्टा हूँ" इस बुद्धिसे देखनेसे ही भ्रान्त दर्शन है। जिसको मैं भोग्य-दर्शन कर सकता हूँ वह वस्तु निश्चय ही मुझसे लघु है; वे मेरे गुरु नहीं हो सकते, उनको लौकिक भावसे 'गुरु' कहना विडम्बना मात्र है। गुरुका हम भोग दर्शन नहीं कर सकते, गुरुकी कृपासे गुरुपादपद्मका दर्शन होता है. हिरण्यकशिपु स्तम्भको जड़वस्तु-मात्ररूपमें दर्शन करता है, किन्तु अपने तईं

विष्णुको हृदयरूपमें उपलब्धि करनेवाले प्रह्लादका गुरु या विष्णु दर्शन ही होता है। श्रीगुरुपाद पद्मके ज्ञानाञ्जन शलाका द्वारा जीवके जन्म-जन्मान्तरका अन्ध चक्षु उन्मीलित होनेसे उसके निकट यह दृष्ट दृश्य-विज्ञान प्रकाशित होता है। श्रीगुरुदेव जन्म मृत्यु या चक्षु भानुरूपसे अतीत वस्तु हैं वे मेरे सदृश पतित जीवका उद्धार करनेके लिये नरोत्तमरूपसे अवतीर्ण होकर जो लीला करते हैं उससे उनका ही स्वरूप प्रकाशित होता है कृपा और वञ्चना। निष्कपट सेवोन्मुख व्यक्ति उनकी कृपासे अभिषिक्त होते हैं और व्यलिक भोगोन्मुख लोग उनकी वञ्चनासे पतित होते हैं।

साहोना सा: चतुर्थ नामापराध क्या है ?

आचार्यदेव श्रुत और श्रौत शास्त्रोंकी निन्दा। जो भगवान्के श्रीमुखसे निकलकर गुरु-शिष्य परम्परा या आम्नाय धाराके मध्य होकर अवतीर्ण होते हैं वही श्रुति हैं। गुरुदेव नित्य (सर्वदा) कीर्त्तन करते हैं। शिष्य नित्यकाल श्रवण करते हैं। यह कीर्त्तन और श्रवणकी नित्यताके कारण श्रुति नित्य और सनातन हैं।

श्रुति कोई व्यक्ति विशेषकी रचना नहीं, वे साक्षात् श्रीभगवान्के मुखसे निकली हुई वाणी है और श्रीभगवानके अभिन्न-विग्रह श्रीव्यासक द्वारा संसारके कल्याणके लिये विभक्त और व्याख्यात हैं। वेद एवं वेदानुग सात्वतस्मृति पुराण-पञ्चरात्रादि शास्त्र—सभी एक तात्पर्यमय हैं। इन शास्त्रोंमें भेददृष्टि या इनमें से किसी एककी अवमानना करने से उस व्यक्तिके मुखसे कभी भी शब्द-ब्रह्म-नामका कीर्त्तन नहीं हो सकता।

साहोना सा:—पञ्चम नामापराध क्या है ?

आचार्यदेव—हरिनामके माहात्म्यको mere hyperbolic exaggeration of dogmatic and emotional men अर्थात् कितने साम्प्रदायिक कट्टर अन्धविश्वासयुक्त और जड़ीय भावुकगणों की धर्म-मादकता से अभिव्यक्त अतिस्तुति (अर्थवाद) समझनेसे कभी भी उसके मुखसे शुद्धनाम उच्चरित नहीं होंगे।

साहोना सा: (छठा) षष्ठ नामापराध क्या है

आचार्यदेव—भगवानके नामसमूहका अर्थान्तर कल्पना (अर्थ लगाना) या नामसमूहको अनित्य काल्पनिक रूप मान समझना। जिस प्रकार 'हरि' शब्दका अर्थ सिंह, साँप, वानर, मेढ़क, हंस, कोकिल, मयूर, अग्नि, सूर्य, यम इत्यादि। इन सबोंका अवलम्बन कर ये सब प्राकृत अर्थवाचक नाम ग्रहण करनेसे 'हरिनाम' ग्रहण करना नहीं हुआ या हरि स्वरूपतः निर्विशेष वस्तु है, उनके नाम, रूप, गुण, परिकर लीला चरम अवस्थामें कुछ भी नहीं रहेंगे, सामयिक भावसे साधककी सुविधाके लिये 'हरि', 'कृष्ण' इत्यादि उनके एक नाम और रूप कल्पना किये गये हैं ऐसा विचार कर हरिनाम-ग्रहण करनेकी छलना करनेसे कभी भी उसके जिह्वापर शुद्धनाम उदय या उसका फल स्वरूप प्रेमोदय नहीं हो सकता।

साहोना सा:—सप्तम अपराध क्या है ?

आचार्यदेव—नामके बलसे पापबुद्धि ही सप्तम अपराध है। हरिनामको पापनाशक मन्त्र समझ हरिनामका जप या उच्चारणकर पापस्रोत प्रवाहित रखनेकी चेष्टा। नामापराध ही से पापका नाश हो सकता है। अधर्म और धर्म, पाप और पुण्य ये सभी तुच्छ नामापराधके फल हैं। नामाभास से अविद्या विनाशरूपी मुक्ति और शुद्धनामसे ही

कृष्णप्रेम प्राप्त होता है।

सार्दाना सा: —धर्म या पुण्य नामापराधका फल कैसे हो सकता है?

आचार्यदेव—धर्म, अर्थ, काम या अधर्म, अनर्थ, कामकी अतृप्ति अर्थात् पुण्य या पाप नाशवान कर्मफल-विशेष है। ये सब नामके अर्थात् पूर्ण चेतनमय विग्रहकी सेवाके प्रतिबन्धक स्वरूप हैं। पूर्ण-सच्चिदानन्द-विग्रह श्रीनामके चरणोंमें अपराध होनेसे उनकी सेवाके प्रतिबन्धक-स्वरूप पुण्य और पापादि कर्मफलकी प्राप्ति होती है।

सार्दाना सा:—अष्टम अपराध क्या है?

आचार्यदेव—अन्य शुभकर्मोंके साथ अप्राकृत नाम ग्रहणको समान समझना अष्टम नामापराध है। हरिद्वार या प्रयागमें पूर्णकुम्भस्नान, तीर्थभ्रमण, यज्ञादि क्रिया, गो ब्राह्मण भोजनादि कर्मको हरिनाम कीर्त्तनके साथ एक समान समझनेसे पूर्ण, विभु, आनन्दघन, चेतनका अनुशीलन नहीं हो सकता। हरिनाम कीर्त्तन is the direct service of Absolute Supreme Lord—परात्पर सच्चिदानन्दविग्रहकी साक्षात् सेवा है। अपनी स्वार्थसिद्धि अर्थात् धर्म, अर्थ, काम या मोक्षके लिये जो सब साधन हैं, उन सबोंके साथ निरंकुश स्वेच्छामय चैतन्यरसविग्रह नामकी सेवा कभी समान नहीं हो सकती।

कोटी अश्वमेध एक कृष्णनाम सम।
येइ कहे, से पाषण्डी, दण्डे तारे यम॥

सार्दाना सा:—यदि कोई अपने लिये यह सब न करके दूसरेके लिये या निष्कामभावसे करें?

आचार्यदेव—All altruistic acts are done for transitory purposes and not for the Absolute Person's sake परोपकारी लोग सारा कार्य सामाजिक और नश्वर उपकार या वस्तुके अस्थायी उपकारके लिये ही करते हैं उनलोगोंका सारा कार्य ही कालान्तरगत होता है, सृष्ट होता है और फिर नाशको प्राप्त होता है। मनुष्यके परोपकार मनुष्यके लिये ही किये जाते हैं, अपर प्राणीगण कितने ही मौके पर उस उपकारसे वञ्चित होते हैं, यहां तक कि कभी कभी वे सब साहाजियोंके खाद्य और भोग्य पदार्थरूपसे भी व्यवहृत होते हैं। उन लोगोंका चेतन सङ्कुचित और सुप्त है। उसी सङ्कुचित और सुप्तावस्थामें जागृत न करके उनलोगोंको भोग्यवस्तुरूपसे परिगणित करना ही उनलोगोंकी हिंसा करना है। मानवजातिके प्रति परोपकारी समाज जो नश्वर तात्कालिक उपकार करते हैं, वह भी एक प्रकारकी हिंसा ही है क्योंकि, उसके द्वारा मानवके चेतनकी सङ्कुचितावस्था विकसित और जागृत करनेके बदले उनलोगोंकी देह और मनका सामयिक भोग ही आयोजित किया जाता है, उसके द्वारा सुप्त चेतन या आत्मा लेशमात्र भी जागृत नहीं होता।

सार्दाना सा: यदि हमलोग पशु पक्षी इतर प्राणीको किसी अच्छे काममें नियुक्तकर उनलोगोंके द्वारा बहुतसे लाभदायक कार्य करा सकें, तबतो उनलोगोंका यथार्थ सद्व्यवहार ही किया गया। दुष्टलोगोंको सहायता देकर उनलोगोंके द्वारा संसारके बहुतसे कार्य किये जा सकते हैं।

आचार्यदेव—This is a mere bartering system—mere business, not doing real and absolute good to them यह वणिक् वृत्ति या व्यवसाय है। इसके द्वारा उनलोगोंका आत्यन्तिक (प्रचुर) कल्याणकी चेष्टा नहीं हुई—हम लोगोंका तथा उनलोगोंका अर्थात् दोनों पक्षका इन्द्रिय-

तर्पण मात्र हुआ। All sentient or conscious or animate beings are meant for the service of one common Lord Krishna समस्त चेतन जगत एक अद्वितीय प्रभु कृष्णकी सेवाके लिये ही निर्दिष्ट है।

माहोना मा. इतर प्राणीगण किस प्रकार परमेश्वरकी सेवा कर सकते हैं?

आचार्यदेव—जो सब साधु या वैष्णव अपने प्रति दिये गये किसी सेवाको भी भोग या इन्द्रिय तर्पणके उद्देश्यसे आत्मसात नहीं करते, उन साधुओंके हरिभजनके अनुकूल सेवाकर इतर प्राणीगण भी परमेश्वरकी सेवा कर सकते हैं।—("यद्यद्भुत-क्रम-परायण-शील-शिक्षा-स्तिर्य्यग् जना अपि किमु श्रुतधारणा ये" —श्रीमद्भागवत) प्रकृत साधुगण इतर प्राणियोंको भी इसी प्रकार भगवद्भजनके अनुकूल कार्यमें नियुक्तकर इतर प्राणियोंका भी प्रकृत नित्य उपकार अर्थात् उन लोगोंके सुप्त और सङ्कुचित चेतनको धीरे धीरे (क्रम क्रमसे) मुक्तनियुक्त और उद्बुद्ध करनेकी चेष्टा करते हैं। यही इतर प्राणियोंके प्रति यथार्थ उपकार साधनकी चेष्टा है। जैन लोगोंके सदृश खटमलको मनुष्यका रक्त पान करा कर (खटमल खिलाकर) अथवा जराग्रस्त वा रोगी, वृद्ध वा दुर्बल पशुओंको पिञ्जड़ेमें रखकर तथाकथित अहिंसा-साधनके प्रस्तावके द्वारा उनलोगोंकी सुप्त चेतनको जन्म जन्मान्तरके लिये आवृत रखने वाली हिंसाकी प्रवृत्ति प्रकृत वैष्णवोंकी कभी नहीं रहती। श्रीमन्महाप्रभु झारिखण्डमें भ्रमण करते समय रास्तेमें हरिनाम—कीर्तन श्रवण कराकर हिंस्र, सिंह, व्याघ्र और भालू आदिके सुप्त चेतनका विकाश करनेका लीलाप्रदर्शन किया था। शिवानन्द सेनका कुत्ता श्रीमन्महाप्रभुका उच्छिष्ट ग्रहण और कीर्तन श्रवण कर नित्य वैकुण्ठ लोकका अधिकारी हुआ था। श्रील हरिदास ठाकुर उच्चस्वरसे हरिकीर्त्तन कर वनके पशु पक्षियोंकी चेतनता का उद्बोधन किया था।

माहोना मा:—ये सब प्राणी क्या केवल हरिकीर्त्तन श्रवण करकेही मङ्गल लाभ करते हैं, या साधुओंकी कुछ सेवा भी कर सकते हैं?

आचार्यदेव - साधु लोग जिस समय हरि-कीर्तन प्रचारमें गमनागमन करते हैं, उस समय घोड़ा, बैल प्रभृति पशु उनलोगोंको वहन कर साधु लोगोंके भगवद्भजनके अनुकूल सेवा कर सकता है। गाय दूध दानकर हरिकीर्त्तन-कारी वैष्णवोंकी सेवा कर सकती है। कुत्ता चोर भगाकर या पहरेदारका कार्य कर हरिभजनकारी वैष्णवोंकी सेवा कर सकता है। काकादि पक्षी भी नानाप्रकारके मैल परिष्कार कर वैष्णवोंकी सेवा कर सकते हैं। एकमात्र वैष्णव लोग ही इतरप्राणियोंको भगवद्भजनके अनुकूल कार्यमें नियुक्त कर सकते हैं और उनके सिवा सभी उन-लोगोंके प्रति हिंसा करते हैं; यहां तक कि बौद्ध लोग भी अहिंसाके नामसे हिंसा ही करते हैं; क्योंकि वे इन सब प्राणियोंको पुरुषोत्तम भगवान्‌की सेवाके अनुकूल किसी कार्यमें नियुक्त नहीं कर सकते। भगवत्सेवक वैष्णव चौंवरी गायके पूंछके द्वारा विष्णुसेवाके लिये चौंवर प्रस्तुतकर उसके द्वारा भगवानकी सेवा करते हैं, मोरका पूंछ संग्रह करके कृष्णकी चूड़ामें लगा या व्यजन-यन्त्र (पंखा) निर्म्माण करके भगवत्सेवा किया करते हैं; अग्निके द्वारा यज्ञेश्वर विष्णुकी सेवा करते हैं; पशुओंके चर्मद्वारा वैष्णवोंके पादुका, मृदङ्गके नानाप्रकारके उपकरण प्रस्तुत करते हैं। पशुओंके रोम, ऊन या

रेशमके कीड़ेसे उत्पन्न रेशमके द्वारा कम्बल और वस्त्रादि तैयार कर हरिकीर्त्तनकारी वैष्णवोंके भजनका आनुकूल्य विधान कर देते हैं। जो सब वस्तुओंसे हरिसेवाके अनुकूल विषय संग्रह कर सकते हैं, वे वैष्णव लोग उद्भिदादि, यहां तक कि पत्थरादि आच्छादित चेतनको भी हरिकीर्त्तनकारी साधु और वैष्णवोंकी सेवामें नियुक्त कर देते हैं। उद्भिदादि जीवोंके द्वारा जिस समय हरिकीर्त्तनकारी जीवोंकी सेवा होती है, उस समय उद्भिदादिको छेदन करनेमें भी उनलोगोंके प्रति हिंसा नहीं होती, क्योंकि उनलोगोंका जीवन विष्णु-वैष्णवकी सेवामें उत्सर्गीकृत होता है, किन्तु उन लोगोंको वैष्णवोंकी सेवामें नियुक्त न कर लोगोंके इन्द्रिय-तृप्तिकर उद्यान सजानेके लिये संरक्षण-पूर्वक उनलोगोंकी पुष्टि और श्रीवृद्धिके लिये यथेष्ट यत्न और परिश्रम करनेपर भी उनलोगोंका जीवन हरि-सेवामें नियुक्त न होनेके कारण उनलोगोंके प्रति हिंसा ही की जाती है।

साधोना सा:—ऐसा होनेसे जो लोग बकरे आदि पशु देवोंके उद्देशसे प्रदान करते हैं, वे भी तो कह सकते हैं कि हमलोगोंके भगवान्के उद्देशसे पशुके उत्सर्ग करनेसे वह हिंसामें परिगणित नहीं हो सकता।

आचार्यदेव—यज्ञादिमें यज्ञेश्वरके उद्देशसे जो वैध सात्वत-शास्त्र-विहित पशु-बलिका विधान है, उसके द्वारा भी साक्षात् चेतनके अनुशीलनका आनुकूल्य विधान नहीं होता, मांस खानेके उद्देशका अभिनय कर पशु बलि देनेकी तो कथा ही नहीं है। तामसिक शास्त्रोद्दिष्ट देवी पूजामें पशु बलि देनेका विधानादि—मनुष्योंके अत्यन्त तामसिक प्रवृत्तिको कुछ नियमित (दमन) करनेके लिये ही है, वह उच्छृङ्खल और अत्यन्त हिंसाको कुछ विधिके अन्तर्गत लानेका कौशल विशेष है। वह प्रकृत अहिंसा या भगवत् सेवा नहीं। यज्ञमें पशुहननादिकी जो शास्त्र-विधि है, वह भी इन सब कार्योंसे निवृत्त करनेका कर्म-कौशल मात्र है। ये सब कार्य किसी न किसी अप-स्वार्थ लाभके उद्देशसे ही अनुष्ठित होता है; उसके द्वारा चेतनका कोई अनुशीलन नहीं होता। श्रुतिने कहा है—

प्लवा ह्येते अदृढ़ा यज्ञरूपा
अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म्म।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढ़ा
जरामृत्युं ते पुनरेवापि यान्ति॥

(मुण्डक १।२।७)

यज्ञरूप प्लव (नौका) भवसमुद्र-उत्तरण करनेके लिये दृढ़ नहीं; क्योंकि इन सब यज्ञोंमें अष्टादश पुरुषोक्त कर्म्ममें भगवत् उद्देशसे अनुष्ठान नहीं होता अतएव वह तुच्छ है। जो सब अविवेकी-व्यक्ति उसको ही परम कल्याण प्राप्त करनेका उपाय समझ कर उसमें ही आग्रह प्रकाश करते हैं वे पुनः जन्म-मृत्युको प्राप्त होते हैं।

साधोना सा:—समझ गया। अब नवम अपराध कृपा कर कहिये।

आचार्यदेव—कहनेमें भूल गया हूँ—अन्य शुभ कर्मोंके सहित श्रीनामोच्चारणको समान समझना भी अनवधान या प्रमाद है। हरिनाम ग्रहणके समय कृष्णेतर विषयमें भोग त्याग बुद्धिसे विक्षिप्त होना या अन्याभिलाषमें प्रमत्त रहकर हरिनाम-कीर्त्तनका अभिनय भी अनवधान या प्रमाद है। यह भी पूर्वोक्त अष्टम अपराध है। अब आपके जिज्ञास्य नवम अपराधकी कथा कहता हूँ। श्रद्धाहीन और नाम-श्रवणमें विमुख व्यक्तिके

निकट हरिनाम कीर्त्तन या उसको लाभ-पूजादि की प्राप्तिकी आशासे नाम-ग्रहणमें उद्योगी करना नवम अपराध है। मत्सरिके निकट नामकीर्तन करना एवं इसके लिये अन्य धर्माचरणोंके साथ नामको उपस्थित करना नवम अपराधके अन्तर्गत है। कुतर्क, गुरु-व्यवसाय व नरकगमनके लिये मायामें एकान्त श्रद्धाहीन व्यक्तिका नामोच्चारण पद्धतिका अविनय कहा जाता है।

साहोना सा: — इस युगके प्राय अधिकांश लोग ही नामहीन मतके विमुख हैं। तो क्या उनलोगोंको हरिनाम श्रवण कराना न होगा?

आचार्यदेव — हरिनामसे विमुख व्यक्तिको हरिनामका यथार्थ तात्पर्य और माहात्म्य श्रवण कराकर श्रीनामके प्रति उन्मुख करना अपराध नहीं है। एकमात्र यही करना होगा। किन्तु जो परम कृपामय हरिनामके प्रति विद्वेषी एवं नाम विलासमें उदासीन नामकीर्तनकारियोंके प्रति विद्वेषी हैं उनलोगोंको बलपूर्वक हरिनामोच्चार सुनानेकी चेष्टा करनेसे उनलोगोंका लेशमात्र भी मङ्गल नहीं होगा; बल्कि जो इस प्रकार प्रीति करायेंगे उनका असुविधा होगी।

साहोना सा: — दशम अपराध क्या है?

आचार्यदेव — दशम अपराध सर्वशेष अपराध होनेपर भी इसको सबसे कठिन अपराध कहा जा सकता है, जो शीघ्र परित्याग नहीं किया जा सकता है। नामका अद्भुत माहात्म्य श्रवण कर भी 'मैं और मेरी' इस प्रकार देहात्मबुद्धिविशिष्ट होकर श्रीनामके ग्रहण और श्रवणमें प्रीति राहित्य। यहां देहात्मबुद्धिके बीज श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपाके सिवाय किसी प्रकार विनष्ट नहीं होता। इसी देहात्म-बोधसे साधु-निन्दारूप सर्वप्रधान और सर्वप्रथम अपराधका उदय होता है-

> नाश्चर्य्यमेतद्यदसत्सु सर्वदा
> महद्विनिन्दा कुणपात्मवादिषु।
> सेर्ष्यं महापुरुष पादपांशुभि
> निरस्ततेजःसु तदेव शोभनम्॥
>
> (भा: ४।४।१३)

जो इस जड़ देहको 'आत्मा' समझते हैं, तादृश असत् पुरुष निरन्तर महाजनगणोंकी निन्दा करेंगे, इसमें आश्चर्यकी बात क्या? यद्यपि महापुरुषगण अपनी निन्दा सहन कर लेते हैं तथापि उनलोगोंके पदरेणु समूह बड़ोंकी निन्दा सहन नहीं कर सकते, वे निन्दकोंके तेज नाश कर देते हैं। अतएव असत् लोगोंका महद्-विद्वेषही शोभनीय है, कारण इसका फल है कि उसके द्वारा उनलोगोंको समुचित सजा ही प्राप्त होती है।

साहोना सा: — तो क्या हरिनाम ग्रहण करनेके समय निर्जनता प्रयोजनीय नहीं है?

आचार्यदेव — निर्जनता नहीं बल्कि प्रकृत नामाश्रित साधु लोगोंका सङ्ग ही आवश्यक है। तथाकथित निर्जनताके द्वारा विक्षेप वा अनवधान दूर नहीं होता, मनका दुःसङ्ग होता है। दुष्ट मनमें अनेक प्रकारकी दुष्प्रवृत्तियां वर्तमान हैं। साधु लोगोंके सङ्गके बिना उन सब दुःसङ्गोंसे निस्तार लाभ करनेका और कोई उपाय नहीं। सर्वात्मनिवेदित प्रपन्न, शरणागतकी सेवोन्मुखी जिह्वापर ही श्रीनामप्रभु कृपापूर्वक आत्मप्रकाश कर सभी प्रतिकूल विघ्न-समूहों को दूर कर देते हैं।

साहोना सा: — हरिनाम-ग्रहण करनेकी योग्यता क्या है?

आचार्यदेव—अकपट श्रद्धा और शरणागतिके परिमाणानुसार जिह्वापर हरिनाम आभास या शुद्ध-

रूपसे उच्चारित होते हैं ।

साहनी सा:- जो हरिनाम करेंगे, वे क्या कोई एक निर्जन स्थानमें बैठ कर हरिनाम नहीं करेंगे ?

आचार्यदेव- हरिनाम ग्रहणकारी केवल हरिनामाश्रित साधु लोगोंका ही सङ्ग करेंगे । साधु लोगोंके सङ्गमें शरणागतिके साथ हरिनाम कीर्त्तन करनेके सिवा उनका किसी प्रकारका उद्देश्य जब न रहेगा, तभी हरिनाम होगा ।

साहनी सा:-- मेरे प्रश्नका उद्देश्य यह है कि हरिनाम करनेके लिये एकाग्रताका प्रयोजन है कि नहीं एवं निर्जनताके बिना यह एकाग्रता हो सकती है कि नहीं

आचार्यदेव- [illegible] नामाश्रयके बिना मनकी चेष्टा [illegible] कोई एकाग्रता नहीं [illegible] सकता, कोई कृत्रिम चेष्टा या आसनादिके द्वारा एकाग्रता प्राप्त नहीं होती । हरिनाम सर्वशक्तिमान है । आम्नायाचार्य गुरुदेवके एकान्त आनुगत्यमें सर्वशक्तिके आधार श्रीहरिनाम प्रभुके चरणोंमें जिस परिमाणमें पूर्णरूपसे आत्म समर्पण होगा उसी परिमाणमें आनुषाङ्गिकरूपसे एकाग्रता उपस्थित होगी । एकाग्रताके लिये पृथकरूपसे चेष्टा करनेका प्रयोजन नहीं । हरिनामकी कृपासे ही सब होगा । हमलोग उसी कृपाके प्रार्थी होंगे ।

साहनी सा.— एकाग्रता नहीं होनेसे हरिनाम किस प्रकार होगा, यह नहीं समझ रहा हूँ ।

आचार्यदेव— [illegible] एकाग्रता मनका एक धर्म विशेष है । अनर्थयुक्त मनका कोई कार्य या धर्मके द्वारा कभी भी हरिनामकी सेवाकी सहायता नहीं हो सकती । हरिनामकी कृपासे ही हरिनाम होता है । अनर्थयुक्त मन हरिका नाम, हरिका रूप, हरिका गुण, हरिका परिकर, या हरिकी लीला चिन्ता नहीं कर सकता । इसके सिवा प्रकृति वा प्राकृत विषयसे मनको हटाकर उसी मनको सङ्कल्पित विषयमें नियुक्त करनेके लिये मनके सिवा एक इससे श्रेष्ठ और बलवान वस्तुसे यह कार्य करना पड़ता है, वे ही प्रपन्न उद्बुद्ध आत्माएँ हैं ।

साहनी सा:- क्या हरिनाम-ग्रहणकारी ईश्वरके किसी रूपकी चिन्ता नहीं करेंगे ?

आचार्यदेव- [illegible] एकमात्र आम्नायके निकट पूर्ण प्रपत्ति (शरणागति) के बिना 'सर्वात्मना' आश्रयके बिना हरिनाम ग्रहणकारीकी अपनी कोई कृत्रिम चेष्टा नहीं रहेगी । मन प्रकृतिका अतिक्रम नहीं कर सकता प्राकृत मन जो कुछ स्मरण करेगा, धारणा करेगा, ध्यान करेगा, वह सभी प्रकृतिके द्वारा सृष्ट और अनन्त विश्वकी ही वस्तु है । इस विश्वके भीतर ही [illegible] कर सकता है उसका अतिक्रम करके जानेकी शक्ति उसमें नहीं है ।

साहनी सा:—मनुष्य जिस समय हरिनाम करेगा, उसी समय साथ ही साथ एकाग्र होनेकी चेष्टा करेगा । आज एक मिनट, कल दो मिनट, परसों तीन मिनट- इसी प्रकार अभ्यास करते करते यदि वह व्यक्ति क्रमशः एकाग्रताकी मात्रा बढ़ा सकता है, तभी तो धीरे धीरे सम्पूर्णतः एकाग्र होकर नाम कर सकेगा ।

आचार्यदेव —ऐसा कृत्रिम उपाय व्यर्थ और निष्फल है । विश्वामित्र, सौभरी, वशिष्ठ, भरद्वाज प्रभृति श्रेष्ठ योगीगणने अन्तमें इस पथकी निरर्थकताकी उपलब्धि की है । दो चार पाच मिनट नहीं, शत-शत वर्ष समाधिस्थ रहनेके बाद भी विश्वामित्र

संसारी प्रवृत्तिका चित्त-चाञ्चल्य हुआ है संसार-वासना जागी है ।

युञ्जानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः ।
अक्षीणवासनं राजन् दृश्यते पुनरुत्थितम् ॥

(भा. १०-८७-३६)

अभक्त लोग प्राणायामादिके द्वारा चित्तको निरोध करते हैं; किन्तु हे राजन ! उनके द्वारा उनलोगोंका चित्त विषय-मलशून्य नहीं होता, बल्कि फिर विषयाभिमुखी हो जाता है ।

अन्तरायान् वदन्त्येता युञ्जतो योगमुत्तमम् ।
मया सम्पद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः ॥

(भा: ११ १५-३३)

इसीलिये जिनने उत्तम योग अर्थात् सर्वश्रेष्ठ भक्तियोगमें चित्त सन्निविष्ट किया है वे इन सब चेष्टाओंको भक्तिपथका विघ्नस्वरूप कहते हैं । मेरे भक्तगण मेरे द्वारा ही सभी साधनोंका फल प्राप्त करते हैं सुतरां उन लोगोंके लिये ये सब साधन चेष्टा समय नष्ट करनेका हेतु मात्र है । मेरी सेवा छोड़ कर वे लोग वृथा कालक्षेप नहीं करते ।

परीक्षित् (१)

एक दिन महाराज परीक्षित् धनुर्बाण लेकर शिकारके लिये वन वनमें भटकते हुए थकावटके मारे एक मुनिके आश्रममें प्रवेश किया । उनपर क्षुधा तृष्णाने बहुत जोरसे आक्रमण किया था । मुनि अपनी इन्द्रियों, मन, प्राण और बुद्धिको प्रत्याहार कर उपशान्त हो बैठे थे । उनकी जटायें शरीरमें विक्षिप्त थीं और पहननेमें मृगचर्म था । महाराजने अन्यत्र पानीका कुछ बन्दोबस्त नहीं कर सकनेपर मुनिके समीप आकर कुछ जलकी प्रार्थना की । किन्तु मुनि महाराजको बैठनेके लिये न तो स्थान ही दिया न मधुर वचनसे कुछ आलाप किया । इससे वे बहुत ही अपमानित समझ क्रोधके मारे धनुषसे एक मृत सर्पको मुनिके गलेमें स्थापित कर अपने राज्यमें लौट गये । उन्होंने सोचा क्या इस मुनिने सचमुच ही इन्द्रियोंको प्रत्याहृत किया है या समाधिके बहानेसे मेरा निरादर कर रहे हैं ? ब्राह्मणोंके प्रति परीक्षितका ऐसा क्रोध और कभी नहीं देखा गया था ।

उस मुनिका नाम था शमीक । उनके पुत्र अन्यान्य बालकोंके साथ खेलते थे । उसने घर लौटकर पिताकी इस बुरी दशा देखकर बहुत ही दुःखित चित्तसे कहा,— आश्चर्यकी बात है कि राजागण भोगसे पुष्ट होकर प्रभुके प्रति पापाचरणमें प्रवृत्त हो जाते हैं । ब्राह्मणगण क्षत्रियोंको गृहरक्षक कुत्तोंके समान देखते हैं । घरके दरवाजा ही जिसका स्थान निर्दिष्ट है, वह आज कैसे अन्दरमें प्रवेशकर पात्रसे अन्नादिको भोजन किया ? कुमार्गगामी व्यक्तियोंके शासन-कर्ता कृष्ण भगवान् अपने धामको पधारनेसे जो अपनी मर्यादाका लंघन किया है उसके योग्य दण्ड मैं ही विधान करूंगा । जिसने मेरे पिताको अव-मानित किया आजसे सातवें दिन तक्षक आकर उसे डसेगा मैं यही शाप देता हूं । इसके बाद पिताके समीप आकर चिल्लाते हुए रोने लगा । बालकके रोदनसे पिता शमीककी समाधि भंग हुई । उन्होंने देखा कि एक मृत सांप उनके गलेमें झूलता है । सांपको फेंककर मुनिने पुत्रसे पूछा—वत्स ! तुम्हारे रोनेका कारण क्या है । क्या किसीने तुम्हारी कुछ बुराई की ? बालकने सभी बातें पिताको सुनाईं ।

शमीकने अपने पुत्रके इस कार्यकी तारीफ नहीं की। पर उन्होंने कहा — बड़े अफसोसकी बात है कि तुमने अज्ञानी होकर बहुत ही खराबी की। लघु-अपराधमें गुरु दण्डकी व्यवस्था की। हे मन्द बुद्धि बालक राजा विष्णुके समान कहे जाते हैं जिनके प्रभावसे प्रजायें सुरक्षित हो निडर भावसे सुख-भोगती हैं। उनको साधारण मनुष्य समझना मुनासिब नहीं है। राजा नहीं रहनेसे पृथ्वीमें चोर-डाकुओंके प्रभावकी वृद्धि होगी और मनुष्यगण रक्षकके अभावसे जान खो बैठेंगे। तब वर्णाश्रम धर्मका पालन करना बहुत ही कठिन हो जायगा, सुतराम् मनुष्यगण केवल कुत्ता और बन्दरोंके बराबर कामासक्त हो अर्थ और कामकी सेवामें ही तत्पर हो जायंगे और वर्णसङ्करकी उत्पत्ति होगी। धर्मरक्षक परम भागवत महाराज परीक्षित भूख-प्याससे पीड़ित हो मेरे आश्रममें पधारे थे, उनको शाप देना मुनासिब नहीं हुआ। इसके बाद भगवानसे प्रार्थना की — हे भगवन्! आप सभीके अन्तर्यामी हैं। इस अज्ञानी बालकने आपके भक्तोंके चरणमें जो कसूर किया कृपया उसे क्षमा कीजिये। भक्त किसीसे तिरस्कृत, अपमानित, प्रतारित, ताड़ित या अभिशापग्रस्त होनेपर भी उसका बदला नहीं लेते। शमीक राजाके प्रति अपने पुत्रके अपराधके लिये ही सोचने लगे, पर उन्होंने राजा द्वारा उनका जो अपमान हुआ था उसके लिये तनिक भी चिन्ता नहीं की। साधुओंकी विशेषता यही है कि वे लोग द्वन्द्वोंमें सुख वा दुःख प्राप्त करनेपर भी उनसे विचलित नहीं होते; क्योंकि वे अनासक्त हैं।

महाराज परीक्षित शमीक मुनिके आश्रम-से लौटकर सोच रहे थे मेरा यह कार्य अत्यन्त बुरा हुआ है! मैंने ब्राह्मणका गूढ़ तेज न समझकर नीच अनार्य व्यक्तिका सा कार्य किया। उस कारण फौरन मुझपर कोई भयङ्कर आफत आवेगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं है वह आफत शीघ्र ही आनेसे अच्छा है क्योंकि उसीसे मेरे पापका योग्य प्रायश्चित्त होगा। फिर ऐसा नीच कर्म करनेमें चित्त नहीं जायगा।

महाराज ऐसा सोच ही रहे थे, कि इसी समय शमीक मुनिके एक शिष्यने आकर समाचार सुनाया कि मुनिपुत्रके अभिसम्पातसे महाराजको एक हफ्तेके भीतर पृथ्वी त्यागनी होगी। उस शापको वैराग्यका कारण समझकर महाराज परीक्षितने उसे अच्छा ही समझा। उन्होंने पहिलेसे ही सोचा था कि यह मृत्युलोक तथा स्वर्गलोक अनित्य और हेय है। अब श्रीकृष्ण चरणको ही पुरुषार्थसार समझकर गंगा तटपर प्रायोपवेशन (अनशनव्रत) करनेकी इच्छा की। जो गंगादेवी कृष्णभगवानके चरण-रेणु-मिश्रित तुलसी दलको वहन करती हुई तीन लोकको पवित्र कर रही है, उनकी सेवा कौन व्यक्ति, जो अपना मंगलप्रार्थी है, नहीं करता है? ऐसा सोचकर महाराज समस्त आसक्तियां छोड़कर शान्त भावसे भगवत् चरणके ध्यानमें तल्लीन हो गये।

उस समय जगत्पवित्रकारी साधु अपने अपने शिष्योंके साथ वहां पधारे। अत्रि, वशिष्ठ, च्यवन, शरद्वान, अरिष्टनेमि, भृगु, अंगिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमद, मेधातिथी, सुबाहु, देवल, आर्ष्टिसेन, भरद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्व, कवष, अगस्त्य, व्यासदेव, नारद, प्रभृति मुनि स्वयं ही तीर्थके स्वरूप है, पर तीर्थगमनके बहानेसे तीर्थोंको पवित्र करते हैं। वे लोग कृपा-

कर वहां पधारनेसे महाराजने उनलोगोंकी यथाविधि पूजा की और उन्हें प्रणाम किया। मुनिलोगोंके आराम से बैठनेके पश्चात् महाराजने अपने कर्त्तव्यके सम्बन्धमें पूछा - प्रभु! मेरा अहोभाग्य है कि ऐसे ब्राह्मण जो अपने चरणोंके जलसे [illegible] पवित्र करते हैं, वही राजकुलमें नहीं दिखाई पड़ते, वे आज मुझपर कृपा करनेके लिये यहां पधारे हैं। सब प्रकारसे, ब्राह्मणोंके नियन्ता भगवानने भी मुझपर कृपा की है। क्योंकि मैं सर्वदा गृहमें आसक्त था, फिर भी ब्राह्मणका अपमान किया है। शायद भगवानने सोचा कि मेरा [illegible] विषयासक्ति [illegible] वैराग्यका मूल है। बिना वैराग्यके सिवा भगवत्-प्राप्तिका उपाय नहीं है। इसलिये उन्होंने ब्राह्मणके शापका रूप धारण किया। हे ब्राह्मणगण! आप लोग भगवानका शरणागत समझकर मुझको भगवत्कथा श्रवण कराइये। तक्षकके आकर मुझको डसने से कुछ डर नहीं है। मेरा फिर जन्म होनेसे जिसमें भगवान् श्रीकृष्णमें रति, उनके भक्तोंका संग और सब जीवोंके साथ मित्रता हो, यही मेरी याचना है। ब्राह्मणोंके चरणोंमें मैं फिर प्रणाम करता हूं। ऐसा कहते हुए महाराज पुत्रको राज्य सौंपकर भागीरथी-के दक्षिण तटपर कुशासन बिछाकर अनशन-व्रतके लिये बैठे। महाराजका यह कार्य देखकर देवता ओंने स्वर्गसे पुष्प वर्षण किया और पुनः पुनः दुन्दुभि-की ध्वनि हुई। महर्षियोंने भी इस कामकी तारीफ करते हुए कहा - हे राजर्षिवर! जिन लोगोंने भगवत् पार्षद होनेकी अभिलाषासे सार्वभौमके सिंहासनको भी त्यागनेमें कष्ट अनुभव नहीं किया था उन्हीं पाण्डवोंके वंशधर आपके लिये यह काम कुछ कठिन या आश्चर्य पूर्ण नहीं है। इसके बाद उनलोगोंने आपस-में सोचा कि यह भक्तवर परीक्षित जबतक शरीरको नहीं त्यागते हैं तबतक हम लोग यहां ही ठहरें।

महाराजने फिर मुनियोंसे कहा— साक्षात् वेदकी मूर्तिके समान आपलोग चारों ओरसे यहां पधारे हैं। दूसरोंपर कृपा करना ही आप लोगोंका स्वभाव है। इसके अतिरिक्त आप लोगोंका और कुछ काम नहीं है। इसलिये मैं ईमानके साथ पूछ रहा हूं कि मुमूर्षु (जो मरनेके समीप हो) के लिये हरेक अवस्थामें पापसे सम्बन्धरहित कर्त्तव्य क्या है, विशेष विचारके साथ बताइये।

मुनि लोग आपसमें विचार कर रहे थे इसी समय वहां व्यासदेवके पुत्र भक्तराज श्री शुकदेवगोस्वामीजी अचानक पधारे। वे बाह्य विषयमें अत्यन्त विरक्त थे। उनका कोई आश्रमका भेष भी नहीं था परन्तु व्यासआश्रम तथा अवधूत थे; इसलिये बालक पागल समझ उनके पीछे जाते थे। उनकी उम्र १६ वर्षकी थी। उनके चरण, हाथ, उरु, बाहु और बदन सुन्दर थे नेत्र कान तक विस्तृत और भौंहें सुन्दर थीं। भुजायें आजानुलम्बित थीं शरीर श्यामवर्ण और नवयौवनके लिये उनकी कान्ति भी सुन्दर थी। सब मुनियोंने उनको महापुरुष समझ खड़े होकर अभ्यर्थना की। महाराज परीक्षितने ऐसे अतिथिका दर्शनकर उनकी पूजा की। यह देख कर बालक भाग गये। परीक्षितने ऐसे अतिथिको दर्शनकर उनकी पूजा की। शुकदेवजीने उस सभामें राजर्षि तथा ब्रह्मर्षि तथा देवर्षिगणोंके बीचमें नक्षत्रवेष्टित चन्द्रमाके समान शोभा प्राप्त की।

मुनिको यथासुख बैठते हुए देखकर महाराज परीक्षितने उनके समीप जाकर विनतीके साथ पूछा - हे ब्राह्मण! आप कृपया मेरा मेहमान हो यहां पधारे हैं इसलिये मै क्षत्रियाधम होनेपर भी साधुओं के लिये आदरणीय बन गया। जिनके स्मरणसे ही

गृहस्थका घर फौरन पवित्र हो जाता है, फिर भी उन लोगोंके दर्शन, स्पर्श, चरणसेवा आदिसे जो पवित्रता होती है उसमें कुछ कहना ही नहीं है। हे महायोगी! जैसे भगवत्समीप उपस्थित होनेसे ही असुरोंका नाश हो जाता है, वैसे ही आपके दर्शनमात्रसे ही पातकोंका फौरन नाश हो जाता है। पाण्डवोंके सखा भगवानकी कृपासे, भक्त पाण्डवों परकी प्रीतिके कारण ही आपने मुझपर सिखाना प्रारम्भ की है नहीं तो मेरे अन्तकालमें एकाएक आपका दर्शन मिलना सम्भव नहीं होता। अतएव मैं पूछता हूं कि जिसकी मृत्यु आ गयी है (अन्तमें बिलकुल देर नहीं है) उसके लिये क्या कर्तव्य है। मनुष्य मरनेके समय क्या सुनेंगे, अथवा स्मरण करेंगे या न करेंगे आप मुझे कृपया बताइये। आपका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है; आप गो दुहनेके समयतक भी गृहस्थके घरमें ठहरते हैं सुतराम कृपाकर मेरे इस प्रश्नका जवाब दीजिये।

महाराज परीक्षितके ऐसा पूछनेके बाद योगेश्वर भगवान शुकदेव मधुर वचनसे बोलने लगे। हे महाराज! आपका प्रश्न सुन्दर है क्योंकि वह जगत्‌के हितार्थ है और आत्मवित पुरुषसे भी अनुमोदित है। जिन लोगोंने आत्मतत्त्वका दर्शन नहीं किया है उनके लिये सुननेकी बहुत ही बातें हैं। उन लोगोंके नाम 'गृहमेधी' है (जो घरके भीतर और घूमते रहते हैं अर्थात गृहासक्त)। उन लोगोंके दिन अर्थकी चेष्टामें और रात इन्द्रियके तोषणमें ही बीत जाती हैं। वे लोग अपने शरीर, स्त्री, पुत्र, रिश्तेदार या संसारी वस्तुमें ही आसक्त रहते हैं। पर इन सभी वस्तुओंकी अनित्यताके बारेमें बिलकुल अन्ध हैं। वे लोग, ये सब अनित्य वस्तुका विनाश देखकर भी उदासीन रहते हैं। अतएव जो अभय होनेकी प्रार्थना करते हैं उनके लिये भगवानकी बातें सुनना, कीर्तन करना तथा स्मरण करना ही एकमात्र कर्तव्य है। शास्त्रोंमें भी यही कहा है कि अन्तकालमें नारायणकी स्मृति रहना ही सबसे अधिक फायदेमन्द है। संसारमें एक हजार करोड़ों वर्षमें भी कुछ भरोसा नहीं है पर एक मुहूर्तके लिये भी भगवत्स्मरण होनेसे वही समय मूल्यवान है। राजर्षि खट्वांग अपनी आयु मुहूर्त मात्र बाकी है, ऐसा जानकर उसी समय भगवत्चरणकमलमें तल्लीन हो गये थे। सुतराम, हे महाराज आपके लिये एक हफ्ताका समय यथेष्ट है। यह समय परमात्माकी चिन्तामें ही व्यतीत कीजिये।

शरणागति

(गतांकसे आगे)

स्वरूपकी (आत्माकी) नित्य सत्ता है, सुतरां गुणातीतमें प्रतिष्ठित होनेसे पूर्ण रूपसे शरणापन्न हो जाता है, उस समय अपने सुखकी वासना हृदयमें स्थान नहीं पाती है। अपने सुखकी वासना अर्थात् सम्भोगकी पिपासा अल्पमात्र भी हृदयमें रहनेसे परिपूर्ण रूपसे शरणागत होना असम्भव है। यदि कोई उसप्रकारकी चेष्टा द्वारा आनुगत्य करने जाय अर्थात् हृदयमें भोग बुद्धिको प्रबल रखकर मुखसे कपट आनुगत्यका अभिनय करे तो ऐसी हालतमें वह अपनेको ही ठगता रहेगा। अपने तथा दूसरेको ठगनेकी इच्छा रखनेवाले बद्धजीव अपने तथा दूसरेको ठग सकते

है किन्तु शरणागत भक्तवैष्णवका ऐसा सम्भव नहीं है।

कोई कोई लोग कहते हैं कि हरिभजन करने तथा भगवानको पुकारनेसे गुरुकी शरणागतिकी क्या आवश्यकता है? स्वयं ही भगवानको पुकार सकते हैं, शास्त्रमें तो पुकारनेकी प्रथा लिखी हुई है। सद्गुरुके चरणाश्रयके अतिरिक्त क्या भजन (हरिभजन) नहीं होता है? शास्त्रमें भगवानको पुकारनेकी प्रणाली लिखी हुई है एवं महाजनोंके ग्रन्थोंमें भी पाया जा सकता है, किन्तु सत्य शास्त्रवाक्य समझेगा कौन? अतिमूर्ख, पतित हमलोग जीवकीट हैं हमलोगोंकी दाम्भिकताकी सीमा नहीं है, इसी लिये हमलोग हृदयके भीतर ही भीतर एकबार भी नहीं देखते और न देखना चाहते कि वहांपर सत्य शास्त्रवाक्यको समझनेकी योग्यता है या नहीं। किन्तु केवल हमलोगोंके स्वीकार-अस्वीकार करनेसे ही सत्यकी पहचान नहीं होती. दाम्भिकताका नाम आनुगत्यकी स्वीकृति नहीं है। मुखसे जिस-तिस प्रकारका भाव दिखलानेसे ही कोई निष्कपट नहीं हो सकता। मूर्खताके कारण हमलोग यह बात नहीं समझते कि सर्वोत्तम साधुगुरुवैष्णवका एकान्तरूपसे शासन स्वीकार करनेसे ही पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त होती है (जीव माया मुक्त हो जाता है) तथा स्वतन्त्रताका ठीक-ठीक सद्व्यवहार होता है (अर्थात जीवात्मा मायामुक्त होकर भगवान्की सेवामें नियुक्त हो जाता है) नहीं तो पराधीनताकी (अर्थात मायाकी) असंख्य शृंखलाओंमें (अर्थात "मैं" और "मेरा" के बन्धनमें) बंधा रहता है। असंख्य दोषयुक्त, रिपुगणोंके वशीभूत, मायाके दासत्वकारी जीव जीवकीट हमलोग सद्गुरुके चरणाश्रयके सिवा अन्य किसीप्रकारसे मंगलकी आशा नहीं कर सकते। सभीप्रकारकी असुविधाओंके हाथसे उद्धार दिलानेमें एकमात्र श्रीगुरुदेव ही समर्थ हैं। लघु ही गुरुके समीप जाता है, गुरु होकर गुरुके समीप नहीं जाया जाता। जिस प्रकार मूर्खको पण्डित बनानेके लिये ही पण्डितके समीप भेजा जाता है, पण्डित होकर कोई पण्डितके समीप पढ़नेके लिये नहीं जाता उसी प्रकार निष्कपट होकर (अर्थात अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्षकी इच्छा छोड़कर) सद्गुरुके चरणारविन्दमें शरणापन्न होनेके अतिरिक्त नित्यकल्याणका और कोई पथ नहीं है।

यत्किञ्चित

वैष्णव गुरुकी आज्ञा पालन करना ही सब श्रेष्ठ सेवा है। यदि उस आज्ञा-पालनमें हमें "दाम्भिक" होना पड़े, पशु होना पड़े, अनन्तकालतक नरकमें जाना पड़े—तौभी हमें ठीका (Contract) करके वैसे नरकमें अनन्तकाल तक जाना चाहिये। संसारके अन्यान्य समस्त लोगोंके चिन्ताशील गुरुपादपद्मकी कृपा द्वारा मुण्डाघात करके खण्डन करेंगे हम इतने बड़े दाम्भिक हैं।

• जिस मुहूर्त्तमें हमलोगोंके रक्षक नहीं रहेंगे उसी मुहूर्त्तमें हमलोगोंके निकटवर्त्ती वस्तु समूह हमलोगोंके शत्रु होकर आक्रमण करेंगे। प्रकृत साधुलोगोंकी हरिकथा ही हमलोगोंकी एकमात्र रक्षाकर्त्री है

असत्संगसे सर्वदा सर्वभावेन अलग रहकर निरपराध होकर संख्यापूर्वक श्रीहरिनाम ग्रहण करना चाहिये। सम्बन्धज्ञानके साथ हरिनाम करने से कोई भी विरोधी आपका लेशमात्र भी अनिष्ट नहीं कर सकता। भगवान् के नाम-भजनके सिवा और अन्य किसी उपायसे जीवोंका मङ्गल नहीं होता है। श्रीनाम ही साक्षात भगवान् हैं. प्राकृत चक्षुके कारण ही भगवानके नाम और भगवानमें भेद दीखता है। मुक्त पुरुषगण श्रीनाम को ही भगवान जानते हैं। श्रीनाममें रुचि कम होनेसे विधिपूर्वक आदरसहित नाम ग्रहण करते करते श्रीनाम और श्रीनामी एकही तत्व है यह जाना जा सकता है।

भगवानके यहाँसे डाक तार प्रभृति द्वारा पत्र प्राप्त नहीं किया जा सकता। कृष्ण-प्रेरित जनोंके द्वारा ही उनका सम्वाद हमलोगोंको मिलता है और हमलोगोंका सम्वाद उनके पास पहुँचता है।

जीवोंका क्लेश देखकर वैष्णवलोगोंका हृदय दयासे आर्द्र हो जाता है, किन्तु जीवोंका वैष्णव या भगवद्भक्ति विद्वेष देखने ही वे कठोर होकर उनकी उपेक्षा करते हैं। संसार जबतक भजनानुकूल रहता है तबतक वे अपनी स्त्री, पुत्र, परिवार आदिके प्रति अत्यन्त कृपालु रहते हैं। संसार जब भजनके प्रतिकूल हो जाता है, उस समय वे कठोर होकर स्त्री-पुत्रोंके क्रन्दन करते रहनेपर भी उनलोगोंसे सदाके लिये विदा होते हैं। उनलोगोंका हृदय सद्धर्म देखनेसे फूलसे भी कोमल और सद्धर्म विरोध देखनेसे वज्रसे भी कठोर हो जाता है। यह सामञ्जस्य स्वभाव जिन पुरुषोंमें दिखलाई पड़ता है, वे ही महानुभव वैष्णव हैं। जीवोंको कृष्णोन्मुख करना ही वैष्णव लोगों का प्रधान कार्य है। उनका प्रधान उद्देश्य है स्थूल-शरीरकी रोग निवृत्ति या क्षुधा निवृत्ति वही वैष्णवता नहीं है। क्योंकि उससे केवल क्षणिक उपकार होता है, नित्य (स्थायी) उपकार नहीं होता है। हाँ,यह अवश्य है कि यदि इन सब कार्योंमें कृष्णोन्मुखता प्रमुख हो तो वैष्णव लोग सहर्ष उसको स्वीकार करते हैं। प्राकृत पाण्डित्यसे ही भजनमें सहायता मिल सकती है किन्तु प्राकृत पाण्डित्य न रहनेसे हरिभजन ही नहीं होगा ऐसी कोई बात नहीं है।

सच्चित शक्तिकी कृपा प्रकाश ही सिद्धान्तज्ञान है। यह ज्ञान कोई अपरा विद्याकी अपेक्षा नहीं करता है। एकमात्र गुरुपादपद्म की कृपासे ही वह प्राप्त किया जाता है।

हमसे लेशमात्र भी वैष्णवसेवा नहीं हुई ऐसा समझकर वैष्णवसेवकमात्रको ही दीन होना चाहिये। जिस वैष्णवमें जितना ही निष्कपट दैन्य अधिक है वह कृष्णका उतना ही अधिक प्रिय है कृष्ण उससे उतना ही अधिक आकृष्ट होते हैं। भक्ति सिद्धान्तमें वैष्णव सेवाका विचार है एवं तादृशी भक्ति-ही श्रीकृष्ण कर्षिणी होती है। सभीको यह दृढ़ और निश्चितरूपसे जानना चाहिये कि हरिगुरुवैष्णवकी विरहस्मृति ही कृष्णके साथ साक्षात्कार की योग्यता प्रदान करती है।

विविध-संवाद

श्रीगौड़ीयवेदान्ताचार्य परमहंस श्रीश्रील [illegible] वासुदेव [illegible] महाराज वर्तमान श्रीचैतन्यमठमें [illegible] — निरन्तर हरिकथा कीर्तन कर रहे हैं। [illegible] श्रील आचार्यदेवके हरिकथा कीर्तनका विराम नहीं है। जब कोई उनका [illegible] होकर उनके निकट आते हैं, उनके निकट वे [illegible] पूर्वक परम मङ्गलकी कथा कीर्तन करते हैं।

पटनाका

श्रीश्रीविश्ववैष्णवराजसभाके [illegible] पटना श्रीगौड़ीयमठमें [illegible] वारको गौड़ीयमठके [illegible] पण्डित श्रीपाद [illegible] विद्यार्णव और पं० महोदय शहरके विभिन्न स्थानोंमें हरिकथा कीर्तन कर रहे हैं। शहरके विभिन्न स्थानोंमें बहु शिक्षित सम्भ्रान्त सज्जनोंने आकर हरिकथा श्रवण कर रहे हैं।

बिहार उड़ीसाके [illegible] दत्त सिंह महोदय मठमें आगमनकर [illegible] चारीजीसे हरिकथा श्रवणकर परमानन्दित हुए एवं शुद्ध भक्तिकी कथा धारावाहिकरूपसे श्रवण करनेके लिये आग्रह प्रकाश किया है। वे अपने मकानपर ब्रह्मचारीजीको घर बुलाकर हरिकथा श्रवण कर रहे हैं। उन्होंने ब्रह्मचारीजीके निकट प्रश्न किया था कि किस प्रकार चित्तकी शान्ति प्राप्त हो सकती है। इसके उत्तरमें ब्रह्मचारीजीने शास्त्र युक्ति द्वारा यह भलीभाँति समझा दिया कि एकमात्र शुद्धभक्ति मार्गका आश्रय करनेसे ही नित्य शान्ति मिल सकती है, यह ज्ञान, तप, योग, दान द्वारा नहीं मिल सकता। [illegible] नित्य [illegible] भागवतमें श्रवण करनेकी इच्छा प्रकाश किया है।

दिल्लीका

[illegible] पूज्यपाद [illegible] श्रीगौड़ीय [illegible] पण्डित [illegible] जनवरीको [illegible] गये थे। [illegible] और महा- [illegible] किया था। पण्डित- [illegible] श्रीगौड़ीय [illegible] हृदय- [illegible]।

[illegible] और [illegible] विशेष ध्यान [illegible] साथ [illegible] जी० ब्रह्मचारीजीने श्री मन्दिरके लिये [illegible] राधा गोविन्दजीकी एक सुन्दर मूर्त्ति दान [illegible] है।

निवेदन

भागवत-पत्रका पञ्चम वर्ष आरम्भ हो गया है। इसलिये भागवत पत्र के ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि वे लोग कृपया पञ्चम वर्षकी भिक्षा (चन्दा) [illegible] एम० कृपया भागवत ऑफिसमें भेजनेकी कृपा करें।

By Prof. N. K. SANYAL, M. A.

Late Senior Professor of History, Ravenshaw College, Cuttack.

A rational, scientific and comprehensive study, based on the SHRAUTA PATH, with a highly appreciative foreword by His Divine Grace Paramahansa Srimad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami with an Introduction containing full information for following the narrative of events, as well as with an Index and a Glossary. Royal 8vo. [illegible] pages, handsome calico jacket—Price Indian Rs. 15/- Foreign 21/- net.

To be had at **SREE GAUDIYA MATH,** Baghbazar, Calcutta

SREE BRAHMA SAMHITA (Fifth Chapter)

With commentary by Sri Jeeva Goswami and translation and purport in English by His Divine Grace Sreemad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami.

[illegible] calico binding—Rs. 2-8-0

RELATIVE WORLDS

A lecture delivered on the 28th August 19[illegible] at the [illegible] Assembly Hall of Sree Gaudiya Math, Calcutta by His Divine Grace — As. 0-6-0

A few words on Vedanta by His Divine Grace — As. 0-8-0

The Vedanta [illegible] by His Divine Grace — As. 0-8-0

THE BHAGBAT

Its Philosophy, Its Ethics and its Theology. New enlarged edition with an appendix by Srila Prabhupad [illegible] Rupee One [illegible] and—Twelve As.

(बंगला में)

श्रीमद्भागवतम्

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास - प्रणीत, मूल, श्रीधर स्वामिकृत [illegible] तात्पर्य निर्णयटीका, श्रीमद् विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर-कृत सारार्थदर्शिनी टीका, बंगानुवाद, संस्कृत अन्वय व प्रतिशब्द, तथ्य व विवृत्यादियुक्त। प्रति स्कन्धके आरम्भमें उस स्कन्धका प्रतिपाद्य कथासार, प्रत्येक अध्यायके प्रथममें उस अध्याय सारके साथ सुविस्तृत तात्पर्यादि दिया है। श्लोकसूची, विषयसूची, अध्याय-विवरण, पात्र व स्थान-सूचीके साथ उत्तम कागजपर उत्तम अक्षरमें मुद्रित। प्रथमसे १०वां स्कन्धतक छपा सम्पूर्णरूप से शेष हो गया है। भिक्षा प्रथमसे ११वां स्कन्धतक २०) १२स स्कन्ध सम्पूर्ण बिना बंधा हुआ ८) और कपड़ेकी बंधाई ९) मात्र।

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

श्रील कविराज गोस्वामीकृत। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर रचित 'अमृतप्रवाहभाष्य' व श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-लिखित 'अनुभाष्य' श्रुति-स्मृत्यादि अनेक शास्त्र प्रमाणके साथ प्रकाशित हुए हैं, श्लोककी सान्वय व्याख्या, बंगानुवाद व प्रत्येक पयारके पूर्व संक्षिप्त अभिप्राय संयोजित है। प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें उसी अध्यायका कथासार लिखा हुआ है। श्लोक, पयार, शब्द, स्थान, पात्रका सुवृहत सूची व ग्रन्थकारकी विस्तृत जीवनी समन्वित इस तरहका अभूतपूर्व संस्करण इसके पहले कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ है। उत्तम कागजपर सजावटके साथ मोटे अक्षरमें मूलांश मुद्रित हुआ है ग्रन्थ प्राय १५०० पृष्ठमें सम्पन्न है। भिक्षा बिना बंधा हुआ ६) कपड़ेकी बंधाई ७) मात्र।

चैतन्यभागवत

श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचित गौड़ीय भाष्यके साथ ग्रन्थका आयतन — डाउन ४ पेजी मूल १०१६ पृष्ठ, सूचीपत्र २४४ पृष्ठ—कुल १२४० पृष्ठ भिक्षा—६)मात्र (बिना बंधा हुआ)।

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है। प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है। हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रावलीको पाठ करनेको अनुरोध करते हैं।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व सामाजिक अवस्था, धर्मजगत्‌की अवस्था, समसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीप-का परिचय व तथ्य और प्रमाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भावसे साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है। ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं। सुन्दर जिल्द भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा। भिक्षा १)। प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकत्ता व श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वारी, ढाका।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य [illegible] विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवन-के मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है। [illegible] पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक [illegible] कर सकेंगे। वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें [illegible] कागजपर [illegible] पृष्ठोंमें। विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं। भिक्षा [illegible]।

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणों-की गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुसज्जित होकर प्रकाशित हुई है। श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा ॥) आना।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित। भिक्षा ।॥) मात्र। प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ।

अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ। बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण। पहले प्रति अध्यायके प्रतिपादका श्रीमन्मध्वाचार्य-विरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपादका सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्त्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है। इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्र भी संयोजित हुआ है। भिक्षा २) मात्र।

Printed by:—Brajeshwari Prasad, at the 'Indian Nation' Press and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

Regd No. P. 468.

वर्ष ५] श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः संख्या ४]

भागवत

एकमात्र
पारमार्थिक
मासिक पत्र

५ त्रिविक्रम
गौराब्द
४५३

ज्येष्ठ कृष्ण ५
संवत
१९९६ वि०

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि-लक्षणा फलाभिसन्धान-रहिता ऐकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है— उसी भक्तिके बलसे अनर्थ शमन होनेपर आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है ।

प्रति संख्या -)॥ } सम्पादक—पं० श्रीपाद रूपविलास ब्रह्मचारी भक्ति शास्त्री बी० ए० { वार्षिक १)

Editor :—Pundit Sripad Rupbilas Brahmachari, Bhaktishastri B A.

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

विषय सूची

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

भागवत

श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना)

वर्ष ५ | संख्या ४

ज्येष्ठ कृष्ण ५, ४५३ सं० १९९६ वि०, ८ मई सन १९३९ ई०

श्रील जगन्नाथदास बाबाजी महाराजकी उपदेशावली ।

१ कभी भी मर्कट लोगोंके (अधिक विरक्त योषित्सङ्गी कपटी व्यक्तियोंके) साथ नहीं मिलना ।

२ कभी भी विषयीका अन्न ग्रहण नहीं करना, ग्रहण करनेसे विषयी हो जाओगे ।

३ गौरधामके कृपा करनेमें व्रजवास होता है ।

४ सांसारिक अमङ्गलको भगवानकी दया समझना ।

५ हृदयमें कृष्णसेवाके लिये अनुराग नहीं आनेसे बाहरसे वेष ग्रहण करनेपर भी किसीको 'सन्यासी' नहीं कहा जाता ।

६ भजनाकाङ्क्षी व्यक्तियोंके शरीरमें कष्टकर व्याधि उपस्थित होकर भी उत्कृष्ट खाद्यद्रव्य न पाकर आपमें आप भाग जाती है । बाबू और विलासी लोगोंके शरीरमें वह आदर पाकर अधिक दिन अवस्थान करती है ।

७ 'सेवाकी है' कहकर हृदयमें भी ढोल पीटनेका यत्न नहीं करना । उस समय फिर उसको सेवा नहीं कहा जायगा ।

८ निर्जन-भजनकी छलनाकर आलसी नहीं होना ।

९ अनवधानताके साथ लक्ष लक्ष माला फेरनेकी अपेक्षा वैष्णव सेवाके लिये बागीचा

खनना और पेड़ोंको पटाना अधिक मङ्गलजनक है। वैष्णव-सेवासे नाममें निष्कपट रुचि होगी।

१० वैष्णवोंका अनुकरण मत करना, नहीं तो जलकर मर जाओगे; उनकी अकपट सेवाके लिए प्रार्थना करो।

११ हरि-सेवाका अर्थका भोग करनेसे सबसे अधिक पाषण्ड होना पड़ता है।

१२ साधारण चोरका शायद कभी मङ्गल होता है, किन्तु गुरु-वैष्णवका अर्थके भोग करनेवालेका कभी भी मङ्गल नहीं होता।

१३ सभी भगवत्तत्वोंके मध्यमें कृष्ण जैसे सबसे अधिक वञ्चक है, उसी प्रकार सभी वैष्णवोंसे रूपानुग-वैष्णव सबसे श्रेष्ठ वञ्चक हैं।

१४ अन्याभिलाषके साथ गुरु-वैष्णवकी सेवा करनेसे वे सेवकाभिमानीको लाभ पूजा-प्रतिष्ठा देकर अलग हो जाते हैं।

१५ जिसने मेरी सेवा की है, उसको पेटके लिये कोई कष्ट पाना नहीं होगा, या चिन्ता करना नहीं होगा। जो मेरे निकट उदर-पूर्त्तिका रसद अदाकर ही सन्तुष्ट हुआ, वह कृष्ण-सेवा नहीं पायेगा।

१६ प्रत्येक गृहस्थको गुरुपादपद्मका आश्रय कर गिरिधारीका अर्चन करना कर्त्तव्य है।

१७ अपराधशून्य होकर श्रीनाम-कीर्तन करना ही महाप्रभुकी शिक्षाका सार है।

१८ गुरु वैष्णवका अनुगत होकर गौरनाम प्रचार करना।

१९ आनुगत्यही श्रेष्ठ सदाचार है। स्वतन्त्रता ही भ्रष्टाचार है।

२० हरिसेवामें कर्त्तव्यबुद्धि और सन्तोष रहनेसे प्रकृत सेवावृत्ति प्रकाशित नहीं होती।

२१ सर्वदा सभी प्रकारसे सेवा करके भी अतृप्तिबोध (असन्तोष) मालूम होनेसे सेवावृत्तिका उन्मेष होता है।

२२ रातको जागकर साधुसङ्गमें एकादशी पालन करना।

२३ प्रति एकादशीको आत्मपरीक्षा करना कि तुम्हारा निष्कपट हरिभजनमें आग्रह बढ़ रहा है या अन्याभिलाष बढ़ रहा है, इसको विशेषरूपसे अनुसन्धान कर गुरु वैष्णवोंके चरणोंमें आत्म-निवेदन करना।

२४ हरिभजन करनेके लिये सहिष्णु, अमानी और मानद होना एवं शत बाधा और विघ्नमें भी परमोत्साही रहना।

२५ एक मुहूर्त्त भी हरिकथा-श्रवण-कीर्त्तन और वैष्णव-सेवाके बिना नहीं रहना, रहनेसे माया ग्रास करेगी।

२६ सभी वस्तु और व्यापारके द्वारा विष्णु और वैष्णवकी सेवाका अनुसन्धान करना।

२७ सिद्धान्त-विरोध और रसाभासकी गन्धभी रहनेसे वैष्णवाधिकार प्राप्त नहीं हुआ ऐसा जानना होगा।

२८ परच्छिद्रान्वेषणके बदले अपने दोषोंको दूर करनेकी चेष्टा करना।

२९ शरणागत नहीं होनेसे श्रवण और गुरुसेवाके बिना मायाजाल छिन्न नहीं होता।

३१ कृत्रिम स्मरण-पद्धति रूपानुग-पथ नहीं है।

३२ श्रीनाम-कीर्त्तन-द्वारा स्वाभाविक स्मरण ही गौड़ीय लोगोंका सिद्धान्त है।

श्री श्रील आचार्यदेव और राय बहादुर मदन गोपाल साहांना।

साहांना सा:—हरिनाम-ग्रहण करनेके समय कितने ही को प्राणायामादि करते देखा जाता है?

आचार्यदेव—वह शुद्धभक्ति पथ नहीं—श्रीनाम-कीर्त्तनका पथ नहीं, अभक्ति पथ है। ये लोग कभी भी हरिनामकी कृपा प्राप्त नहीं करेंगे।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृत युष्मदङ्घ्रयः ॥

साहांना सा.—मैं यह स्वीकार करता हूँ कि हरि-नामग्रहणका पथ सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है।

आचार्यदेव:—केवल श्रेष्ठ ही नहीं यही एकमात्र वास्तव सनातन पथ है। सब अनुकूल विषयका सङ्कल्प, प्रतिकूल विषयका वर्ज्जन करके हरिनाम ग्रहण करना होगा।

साहांना सा:—कुछ लोग सारे दिनके कार्यादिके बाद सांसारिक झंझटसे पृथक होकर किसी निर्जन स्थानमें हरिनाम करते हैं, तो क्या वह उनका कार्य अनुकूल नहीं होता?

आचार्यदेव:—यदि अनुकूल कार्य हो, तो वह साधुसङ्ग-रहित नहीं होगा।

साहांना सा: - सब समय तो साधु लोगोंके साथ बैठा नहीं जाता?

आचार्यदेव:—सब समय साधु-सङ्ग करना होगा। साधु सङ्गके लिये, और साधु लोगोंकी वाणी श्रवण करनेके लिये आकाशपाताल मथन-करना होगा, एक मुहूर्त्त भी साधु-सङ्ग छूटनेसे फिर हरिनाम नहीं होगा। दुष्ट मन या उसकी अधीश्वरी माया या प्रकृति या संसार विषय भोग या त्यागवासना उसको कवलित कर देगी।

साहांना सा:—यह तो व्यवहारिक बात नहीं है। किस प्रकारसे मनुष्य सर्वक्षण साधु-सङ्गमें हरिनाम ग्रहण कर सकता है? उसको तो अन्यान्य कार्यसमूह भी है?

आचार्यदेव: साधु लोगोंके सङ्गमें हरिनाम श्रवण-कीर्त्तन करना ही एकमात्र कार्य है, जीव लोगोंके पक्षमें और कोई काम ही नहीं। २४ घंटों-में चौबीसों घंटे साधु-सङ्ग और हरिनाम कीर्त्तन करना होगा।

साहांना सा:—I want a practical solution, मैं एक व्यवहारके योग्य मार्ग (वा निर्णय) चाहता हूँ।

आचार्यदेव:—The so-called practical aspect is direly erroneous, फलकामना-मूलक कर्म वा भोग ही क्या Practical aspect है? और हरिसेवा—जो एकमात्र नित्य वास्तव सत्य है, वह theory वा utopian etherial speculation मात्र है? (विकृत मस्तिष्कके लोगोंकी कल्पना वा अवास्तव और शून्य मतवाद विशेष है)?

साहांना सा:—मान लीजिये कि कोई ऑफिसमें कार्य करता है, उसको सात आठ घण्टे तक ऑफिसमें कार्य करना पड़ता है, कुछ देर तक विश्राम करना पड़ता है, और कुछ देर तक सोना पड़ता है। बचे हुए समयमें वह किस प्रकार हरिनाम कर सकता है?

आचार्यदेव:—वह किस लिये ऑफिसका कार्य, विश्राम, निद्रा-उपभोग वा आहारादि करता है? क्या अपनी आत्मेन्द्रिय-तृप्तिके लिये, या पुरुषोत्तम-की इन्द्रिय-तृप्तिके लिये? इसीका सबसे पहले

निर्णय होना चाहिये। यदि पुरुषोत्तमकी इन्द्रिय-तृप्तिके लिये ये सब कार्य साधित होते हैं, तो हरिनाम ग्रहणके अनुकूल कार्य हुआ; और यदि इन्द्रिय तर्पणोद्देश्यसे माया बन्धन वृद्धिके लिये हो, तब पराहत क्रियाके अनुष्ठानसे हरिनाम किस प्रकार हो सकता है ?

साहोना सा.—मैं यदि भगवानकी सेवाके लिये ही सब कुछ करता हूँ, ऐसा मनमें समझ लूं ?

आचार्यदेव—केवल मन-ही-मन मनको Hood wink कर लेनेसे वा आरोप वा कल्पना कर लेनेसे ही हरिभजन नहीं हो सकता, वास्तवमें ऐसा विज्ञान लाभ करना चाहिये।

साहोना सा:—प्राथमिकके पक्षमें वह किस प्रकार सम्भव हो सकता है ?

आचार्यदेव:—साधुके सङ्गमें रहकर श्रद्धा-पूत सेवोन्मुख कर्णके द्वारा उसकी शुश्रूषा करते करते यह सम्भव हो सकता है।

साहोना सा:—जो लोग महापुरुष हैं उनको तो आहार, निद्रा, विश्राम प्रभृतिमें समय व्यतीत करना पड़ता है तब वे किस प्रकार २४ घण्टे हरिनाम कर सकते हैं ?

आचार्यदेव—जो कृष्णके सम्पूर्ण शरणागत हैं, उनलोगोंकी समस्त चेष्टा ही हरिनाम-कीर्त्तन-पर है। वे आहार, निद्रा, विश्राम, भ्रमण, शयन सभी कार्योंमें ही हरि कीर्त्तन करते हैं, यह मायाबद्ध जीव समझ नहीं सकता है। मुक्त पुरुष ऑफिसके कार्य करते समय भी हरिकीर्त्तन कर सकते हैं। ठाकुर भक्तिविनोदने विचारकका कार्य करते समय भी सर्वेन्द्रियद्वारा सर्वदा हरिकीर्त्तन किया है, शरणागत हरिकीर्त्तन करनेवाले समझते हैं कि हरिनाम प्रभु ही एकमात्र सेव्य वस्तु हैं। उनकी सेवाके सिवाय उनका और कोई कार्य नहीं है। उनकी सेवाके अनुकूल ही वे सभी कार्य करते हैं। अकपट शरणागत हरिनाम-ग्रहण करने वालेका विचार ही ऐसा है। यह कल्पना वा आरोप नहीं है।

साहोना सा:—ऐसा विचार क्या आसानीसे आ सकता है ? धीरे धीरे होनेकी सम्भावना है।

आचार्यदेव—कृष्ण और उनके भक्त साधु लोगोंकी कृपासे बहुत आसानीसे भी आ सकता है। धीरे धीरे आवेगा ऐसा समझकर इतर कार्योंमें व्यस्त रहनेसे काम नहीं चलेगा। सर्वदा साधु लोगोंके सङ्गमें सुदृढ़ भावसे शरणागतिके पथपर चलते-चलते इस प्रकारकी चित्त वृत्तिका विकाश होगा।

साहोना सा:—But during the transition period he should have recourse to निर्जन-भजन (किन्तु अवस्थान्तर प्राप्ति कालके बीचमें तो उसको कुछ समय तक निर्जनमें रहना चाहिये) ?

आचार्यदेव—उस निर्जन स्थानमें कौन उसे पथ दिखलावेगा ? वह तो उस समय दुष्ट मनके पल्लेमें पड़ जावेगा ? उसका दुष्ट मन उसे अकेला पाकर उसके ऊपर सवार होगा—प्रभुत्व करेगा। उस समय वह किसका परामर्श लेकर चलेगा ? अपना परामर्श अर्थात् दुष्ट मनके परामर्शसे चलनेसे तो वह मारा जायगा। केवल सांसारिक कार्य अर्थात् जञ्जालसे कुछ समय तक दूर रहा, किन्तु साधु लोगोंके सङ्गमें श्रवण-कीर्त्तन न कर दुष्ट मनका ही सङ्ग किया,—इस प्रकार निर्जनतासे ही क्या उसका मन वशीभूत होगा वा उन्नति होगी ? जिस प्रकार जागतिक शिक्षाक्षेत्रमें Private tutor से regular coaching ग्रहण करना पड़ता है, दुष्ट मनको दमन करनेके लिये भी उसी प्रकार

साधु-गुरुके निकट regular coaching वा training ग्रहण करना पड़ता है। साधु-गुरुकी वाणी श्रवण करते-करते दुष्ट मन क्रमशः आनुषङ्गिक भावसे दमित होगा अर्थात अनर्थ-निवृत्ति होगी एवं क्रमशः हरिनाममें रुचि उत्पन्न होगी। इसीलिये श्रीचैतन्यदेवका उपदेश है कि—

सजातीयाशये स्निग्धे साधौ सङ्गः स्वतोवरे।
श्रीमद्भागवतार्थानामास्वादो रसिकैः सह॥
(भः रः सिः)

एकही जातीय वासनाद्वारा स्निग्ध, पर अपनेसे श्रेष्ठ साधु लोगोंका सङ्ग करोगे; उसी प्रकार साधु रसिकगणोंके साथ ही श्रीमद्भागवतका अर्थ आस्वादन करोगे।

साहोना सा:—मैं इसे अस्वीकार नहीं करता हूँ। साधु-सङ्गकी प्रयोजनीयताका यथेष्ट स्वीकार करता हूँ। कितने ही इसको करते हैं। किन्तु हरिनाम ग्रहण करनेके समय साधु सङ्गकी क्या आवश्यकता है—केवल मात्र नामाक्षर उच्चारणके द्वारा नाम-ग्रहण नहीं होता ?

असाधु-सङ्गे भाई कृष्णनाम नाहि हय।
नामाक्षर बाहिराय बटे, नाम कभु नय॥
कभु नामाभास हय, सदा नामापराध।
ये सब जानिबे भाई, कृष्णभक्तिर बाध॥
यदि करिबे कृष्णनाम, साधुसङ्ग कर।
भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि-वाञ्छा दूरे परिहर॥

'असाधु सङ्ग' भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि कामी लोगोंका सङ्ग और फल्गुवैराग्यपर निर्जनतारूप दुष्ट मनके सङ्ग को कहते हैं। साधु लोगोंके सङ्गमें कौन नामाभास, कौन नामापराध, और कौन शुद्धनाम है यह प्रति क्षण जान लेना चाहिये। दुष्ट मन प्रति मुहूर्त्त हमलोगोंको आवृत्त और विक्षिप्त करनेकेलिये प्रस्तुत रहता है। मायाकी आवरणात्मिका और विक्षेपात्मिका वृत्तिसे दुष्ट मन कभी भी अपनी रक्षा नहीं कर सकता। इसीलिये सर्वदा साधु सङ्गमें श्रवण-कीर्त्तन करना होगा।

साहोना सा:— गुरुदेवके निकटसे जिसने एकबार हरिनाम श्रवण किया है एवं उनका उपदेश श्रवण किया है, उसको सर्वदा स्मरण रखनेसे ही तो कार्य हो सकता है। प्रति मुहूर्त्त साधु-सङ्गका क्या प्रयोजन है ?

आचार्यदेव— गुरुदेवके निष्कपट अनुगत और अपनेसे श्रेष्ठ वैष्णव लोगोंका सर्वदा सङ्ग न करनेसे गुरुदेवका उपदेश स्मरण नहीं रहता। बीसों वर्ष तक अद्वितीय सद्गुरुके सहस्र-सहस्र उपदेशोंके श्रवण करनेका अभिनय करके भी बहुत लोग विपथगामी हो गये हैं—दुष्ट मनके कवलमें कवलित हो पड़े हैं। इसलिये साधु सङ्गके निरवच्छिन्न प्रवाहमें सर्वदा अवस्थान करना होगा, सर्वदा सेवोन्मुख कर्णोंके द्वारा अपनेसे श्रेष्ठ साधुकी शुश्रूषा करनी होगी, केवलमात्र mechanically हरिनामाक्षर उच्चारण करनेसे नहीं होगा। जहां हरिनाम ग्रहणके साथ ही साथ हरिनामके सम्बन्धमें clear conception, perception वा realisation और चेतनमयी भक्ति-वृत्तिका Progress नहीं, जहां श्रीनामके परिकरगणोंके प्रति अकपट अनुराग वृद्धि नहीं वह Static वा Stagnant अवस्था मात्र है। श्रीहरिनाम सेवाके द्वारा आत्माका dynamic devotional Progress होगा—आत्मा inert वा Stagnant अवस्थामें नहीं रहेगा। जीवात्माकी सेवावृत्ति (dynamic) है static नहीं।

साहोना सा:— हाँ, यह बात स्वीकार करता

है। बहुत ठीक बात है।

आचार्यदेव— सर्वदा अपनेसे श्रेष्ठ वैष्णवोंका सङ्ग करना होगा। उनका regular tutelage coaching और training ग्रहण करना होगा। उस प्रकारके साधुको eternal tutor बनाना होगा— जो साधु हमारी खुशामद नहीं करते, हमको कनक-कामिनी-प्रतिष्ठा देकर वञ्चना नहीं करते सद्गुरु भी वैसी वस्तु देकर बहुत बार हमलोगोंकी परीक्षा करते हैं, किन्तु अकपट होकर अपनेसे श्रेष्ठ और निष्कपट साधु लोगोंका सङ्ग करनेसे गुरुदेवकी उस परीक्षामें उत्तीर्ण हो सकते हैं, उनकी वञ्चनामें पतित नहीं होना पड़ता। राय बहादुर, आप श्रील प्रभुपादसे सम्बन्धयुक्त हैं आपको अति विनती भावसे मैं यही निवेदन कर रहा हूं कि हमलोगोंका दिन बहुत शीघ्रतापूर्वक बीतता जाता है, हमलोगोंको इस समय अकपट होकर अनन्य चित्त होकर हरिभजन करना होगा श्रील प्रभुपादकी अहैतुकी, असीम कृपाका भिखारी और उससे अभिषिक्त होना होगा।

साहाना सा:— आप मेरे प्रति विशेष कृपा रखते हैं। मैं आपके उपदेशानुसार यथासाध्य चेष्टा करूंगा।

आचार्यदेव— आप वास्तवमें कौन हैं, आपका स्वरूप क्या है। यह कृपापूर्वक एकबार उपलब्धि करनेकी चेष्टा कीजिये। आप स्वरूपतः श्रीकृष्ण-चरणमें उत्सर्ग करने योग्य सुनिर्मल शुभ्र पवित्र कुसुम हैं। आपकी जरामृत्यु नहीं है, आप पञ्चनद वा युक्तप्रदेशवासी नहीं हैं, आप पुरुष वा स्त्री नहीं हैं, आप वृद्ध वा बालक नहीं हैं। आपको शोक-मोह-भय नहीं है। आप श्रीगुरुपादपद्मके एक स्वच्छ नैवेद्य हैं। पृथ्वीका कोई निःस्वार्थी बन्धु वा आत्मीय-स्वजन भी आपको यह सब बात नहीं कह सकता है। जगतके सभी व्यक्ति आपको Commercial interest वा bartering system का ही (वनिग वृत्तिका) परामर्श ही देंगे। मैं नम्रतापूर्वक कर जोड़ कर आपकी प्रार्थना कर रहा हूँ कि आप अपने प्रकृत नित्य चेतनमय आनन्दमय स्वार्थका अनुसन्धान कीजिये। आप पूर्ण प्रस्फुटित पुष्परूपसे श्रीगुरुगौराङ्गके श्रीचरणमें आत्मनिवेदन कीजिये।

साहाना सा:— मैं कुछ ग्रन्थ पढ़ना चाहता हूँ, अंग्रेजी और हिन्दी ग्रन्थ होनेसे सुविधा होगी।

आचार्यदेव— ग्रन्थ पढ़नेके पहले जो भगवद्भजनमें सर्वदा प्रतिष्ठित हैं, ऐसे Living source के निकटसे भगवत्प्रसङ्ग श्रवण करना और अच्छा है।

गिरि महाराज— आज हरिवासर है, आचार्यदेव निरम्बु उपवासी हैं। आगामी कल और आलोचना हो सकेगी।

साहाना सा:— आज एकादशी ?

आचार्यदेव— हाँ, आज हरिका वासर, हरिका दिन—सारा दिन हरिकथा श्रवण-कीर्त्तनका दिन है। आज आहारादिके लिये यत्न न कर सारा दिन हरिकथामें नियुक्त रहना होगा।

साहाना सा:— आज क्या कुछ ग्रहण नहीं किया जाता ?

आचार्यदेव—एकान्त असमर्थके लिये सामान्य दुग्धफलादि अनुकल्पकी व्यवस्था है, किन्तु निरम्बु उपवास ही विधि है।

साहाना सा:—आप जबतक यहां रहेंगे, प्रति-दिन जिसमें मैं आपका सङ्ग पा सकूं इसके लिये चेष्टा करूँगा। किन्तु इन कई दिनोंके सिवाय दूसरे समय, जब आपके निकट नहीं आ सकूँगा,

उस समय किस प्रकार आपकी सेवा कर सकता हूँ ?

आचार्यदेव— श्रीगुरुपादपद्मसे सुनी हुई जो सब कथा आपके निकट निवेदन की आप वह सब अपनी भाषामें यथासाध्य लिपिबद्ध कीजिये; उसका संशोधन कर दिया जायगा, ऐसा होनेसे ही आप समझ सकेंगे कि कहां कहां defect वा deficiency है। इससे ग्रन्थ पाठसे भी आपका अधिक उपकार होगा: क्योंकि यह direct training, regular coaching है। मैं आपकी और क्या सेवा कर सकता हूं, कहिये ?

साहाना सा:— मैं कल फिर आपके समीप आकर आपकी वाणी श्रवण करूँगा।

आचार्यदेव— आपके निकट प्रार्थना है कि स्वार्थगतिकी सेवासे लाभवान होइये—प्रतिदिन जिससे भजनमें उन्नति लाभ कर सकें, इस प्रकार दृढ़ सेवोन्मुख होइये। क्योंकि समय तेजीसे बीतता जा रहा है।

साहाना सा:— मैं नहीं समझता, इसीलिये वृथा कार्यमें कितना मूल्यवान समय नष्ट कर देता हूं।

आचार्यदेव— मुझे स्मरण है आपने मुलतान-से गत १९३३ खृष्टाब्दकी १ ली जनवरीको गुरुमहाराजके (श्रीश्रील प्रभुपादके) निकट एक पत्र लिखा था। गुरु महराजने मेरे द्वारा ढाकासे उस पत्रका उत्तर लिखवाया था।

साहाना सा:— हां, मुझे स्मरण हो रहा है। मैं उस समय आठ मासकी छुट्टी लेकर मुलतानमें था। आपका उपदेश सुनकर सचमुच ही ज्ञात हुआ कि आपने श्रीगुरुमहराजकी कृपा उपलब्धि की है। मैं कल फिर आऊँगा। दण्डवत।

भजन

आमार (मेरा) जीवन, सदा पापे रत,
नाहिक (नहीं है) पुण्येर लेश।
परेरे (दूसरेको) उद्वेग, दियाछि जे कत,
दियाछि जीवेरे क्लेश ॥१॥

निज सुख लागि, पापे नाहि डरि
दयाहीन स्वार्थपर (स्वार्थी)।
पर सुखे दुःखी सदा मिथ्या-भाषी
परदुःख सुखकर ॥२॥

अशेष कामना हृदि (हृदयमें) माझे मोर
क्रोधी दम्भपरायण
मदमत्त सदा, विषय मोहित,
हिंसा गर्व विभूषण ॥३॥

निद्रालस्य-हत, सुकार्ये विरत,
अकार्ये उद्योगी आमि।
प्रतिष्ठा लागिया, शाठ्य (कपटताका) आचरण,
लोभहत (लोभी) सदा-कामी ॥४॥

ए हेन (ऐसा) दुर्जन, सज्जन-वर्जित,
अपराधी निरन्तर
शुभकार्यशून्य, सदानर्थमना,
नाना दुःखे जर जर ॥५॥

वार्द्धक्ये (बुढ़ापेमें) एखन, उपायविहीन,
ताते दीन अकिञ्चन (निष्किञ्चन)।
भकतिविनोद, प्रभुर चरणे,
करे दुःख निवेदन ॥६॥

नामाचार्य श्रील ठाकुर हरिदास (३)

भागवतके पूर्व दो सङ्ख्याओंमें नामाचार्य श्रील ठाकुर हरिदासके गुणोंका कुछ कुछ कीर्त्तन किया गया है। भक्तका गुण-गान करनेसे आत्म-मङ्गल होता है एवं हरि-भक्ति प्राप्त होती है। इसीलिये इस प्रबन्धमें भी उसी विषयकी आलोचना की गयी है।

महाभागवत ठाकुर हरिदासके निकट जाकर जब ब्राह्मणोंने कहा कि आपकी गुफामें एक महानाग रहता है जिसकी ज्वालासे यहांपर कोई ठहर नहीं सकता, और इस कारण उस भजनस्थानको छोड़ देनेके लिये उनसे अनुरोध किया तब ठाकुर हरिदासने कहा कि मैंने तो किसी प्रकारका विष या ज्वाला अनुभव नहीं की परन्तु जब आपलोग मेरे लिये व्यस्त हैं तब आपलोगोंके सन्तोषके लिये मैं अन्यत्र चला जाऊंगा। आपलोग अब चिन्तारहित हो कृष्ण गुण-गान कीजिये। महाभागवत ठाकुर हरिदासके स्थान त्याग करनेके सङ्कल्पको सुनकर महानाग सन्ध्या समय उनके भजन कुटीके गढ़ेसे निकलकर सबोंके सामने ही अन्य स्थानको चले गये। सर्पके चले जानेके उपरान्त वहांपर और ज्वाला नहीं रही जिससे विप्रगण अत्यन्त आनन्दित हुए।

अब उनकी एक और अद्भुत लीला सुनिये। एक दिन किसी एक बड़े आदमीके मन्दिरपर मन्त्रके प्रभावसे आविष्ट एक संपेरा, विषैले दांत उखड़े हुए सर्पके साथ, नाना प्रकारसे नृत्य कर रहा था और उसके चारों ओर उसके उच्चारित मन्त्रके प्रभावसे मुग्ध होकर उसके साथी लोग झाल, मृदङ्गादि बाजे बजाकर उच्च स्वरसे गीत गा रहे थे। दैवात वहांपर ठाकुर-हरिदास पहुँचे और एक ओर खड़े होकर नृत्य देखने लगे। उस समय नागराज (वासुकि, अनन्त) मन्त्रके प्रभावसे मनुष्यके शरीरमें प्रविष्ट होकर आनन्दसे नाच रहे थे और कालिय-दहमें कालिय-सर्पके ऊपर चढ़कर जगद्गुरु कृष्णने जैसा ताण्डव नृत्य किया था, वैसा ही भाव अवलम्बन कर सँपेरेके साथी लोग उच्च स्वरसे कालिय-नागके प्रति भगवानके दण्डदानके बहाने महादया सूचक गीत गा रहे थे। अपने प्रभुकी करुणा-सूचक गीतसे मुग्ध होकर उद्दीपनके कारण ठाकुर-हरिदास प्रेमानन्दसे मूर्छित हो गये और उनका श्वास-प्रश्वास बन्द हो गया। कुछ देरके बाद चेतनता प्राप्त कर ठाकुर आनन्दके मारे हुङ्कार कर नृत्य करने लगे। महाभागवत वैष्णव ठाकुर हरिदासको कृष्ण प्रेमावेशमें नृत्य करते देखकर अनन्त देवाविष्ट सँपेरा सम्भ्रमके साथ एक ओर खड़ा होकर उनकी अद्भुत लीलाको देखने लगा। श्रीकृष्ण-प्रेमके आवेशमें ठाकुर-हरिदास अप्राकृत अश्रु-कम्प-पुलकान्वित अप्राकृत शरीरसे तन्मय होकर दुष्ट सर्पकुलमें उत्पन्न महाक्रूर कालियनागके प्रति कृष्ण-की अतुलनीय महादयाकी बात श्रवण एवं स्मरण करते २ पृथ्वीपर लोटने लगे और रोने लगे और उन्हें घेरकर सब कोई गीत गाने लगे। कुछ समयके बाद जब ठाकुर-हरिदासने बाह्यज्ञान प्राप्त किया तब उस संपेरेने अपना नृत्य आरम्भ किया। हरिदास ठाकुरके कृष्ण-प्रेमको देखकर सब कोई अत्यन्त आनन्दित हुए और जहां २ उनके चरण पड़े थे वहां वहांकी धूल लेकर वे लोग प्रेमसे अपने २ शरीरमें लगाने लगे। इस व्यापारको एक विषयी और नीच विप्र देख रहा था। उसने दुर्बुद्धि-

के वश महा-भागवत वैष्णव ठाकुरके अलौकिक भाव-क्रिया-मुद्राको अपने प्राकृत बुद्धि और कृत्रिम रूपमें अनुकरण करनेकी इच्छा की। उसने मन-ही-मन विचार किया कि साधारण मूर्ख लोग अपने अन्धविश्वासके कारण किसी व्यक्तिके सामान्य धर्मानुष्ठान तथा एक प्रकारके नृत्य-गीतको देख तथा श्रवण करके ही नाना प्रकारसे भक्तिके साथ उसका बहुत सम्मान करते हैं। इसी कारण यवन-कुलमें जन्म ग्रहण करनेवाले एक सामान्य मनुष्य ठाकुर-हरिदासको जब इतनी अधिक पूजा, सम्मान तथा प्रतिष्ठा प्रदान की गयी, तो मैं यदि हिन्दू जातिके सर्व-श्रेष्ठ ब्राह्मण कुलमें जन्म लेकर कपटतापूर्वक वैष्णव ठाकुरके अलौकिक अष्ट-सात्त्विक भाव तथा क्रिया-मुद्रादिका अनुकरण करके नृत्य करूँ तो मुझे कितना लाभ और मेरी कितनी पूजा प्रतिष्ठादि होगी इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। जब एक मामूली मनुष्य ठाकुर-हरिदासके भावको देखकर ही उनके प्रति लोगोंकी इतनी श्रद्धा हुई तब मैं देव-शर्म्मा नामका शौक्र ब्राह्मण-तनय होकर उनके अप्राकृत भाव-मुद्राको नकल करके न जाने कितनी पूजा-प्रतिष्ठा सम्मानादि प्राप्त करूँगा। कृत्रिम भाव दिखलानेसे ही मेरी क्षुद्र जड़प्रतिष्ठा अप्राकृत वैष्णव-के अप्राकृत वैष्णवी प्रतिष्ठासे अत्यन्त अधिक होगी। ऐसा विचारकर वह पाखण्डी विषयासक्त विप्र अपनेको बड़ा भारी भक्त दिखलानेके लिये अचानक पृथ्वीपर गिरकर लोटने लगा तथा संज्ञाहीन भाव प्रदर्शित करने लगा। उस विप्रके कपट, क्षणभङ्गुर और कृत्रिम भावाभास दिखलाने-के साथ ही सँपेरा अपने नृत्यमें बाधा देखकर और उसकी कपटताको समझकर अत्यन्त क्रोधकर बेंतोंसे बड़े जोरोंसे उसपर प्रहार करने लगा। शरीर, कन्धा, मस्तक इत्यादि पर निर्दयताके साथ प्रहारित होकर वह विप्राधम 'बाप रे बाप, मर गये' कहते हुए वहांसे भागा और वह सँपेरा अत्यन्त आनन्दके साथ नृत्य करने लगा। तब दर्शक लोगोंने विनयपूर्वक सँपेरेसे पूछा कि आप हरिदासके नृत्यके समय सादर कर जोड़-कर एक ओर खड़े थे और इस विप्रके मूर्च्छित होनेपर आपने निर्दयताके साथ इसपर इतना प्रहार क्यों किया? इसके उत्तरमें सँपेरेके शरीर-में अवस्थित अनन्तदेव उस सँपेरेके मुखसे सबों-को कहने लगे कि तुमलोगोंने जो पूछा वह आश्चर्य-जनक तथा अनिर्वचनीय है। परन्तु रहस्यपूर्ण होनेपर भी मैं तुमलोगोंके प्रश्नका उत्तर दूँगा। हरिदास-ठाकुरके प्रेमावेशको देखकर तुमलोगोंने उनके प्रति जो श्रद्धा दिखलाई उसको देखकर यह ब्राह्मण ढोंग करके मात्सर्य बुद्धिसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। परन्तु मत्सरतावश मेरे (अनन्तदेवके) अलौकिक नृत्यको भङ्ग करनेकी शक्ति किसी विषयी, मर्त्य जीवको नहीं है। अप्राकृत हरिजन ठाकुर-हरिदासके साथ इस विषयी व्यक्तिको बराबरी करनेकी इच्छा हुई इसी कारण इसकी इतनी सजा हुई। हरिदास ठाकुर—निष्कपट अप्राकृत और सहज-प्रेमिक और यह विप्र घृणित विषयासक्त तुच्छ जीव है। निष्कपट शुद्धभक्तके साथ मिथ्या प्रतिद्वन्द्विताके कारण उनकी नकल करनेकी चेष्टा ही विषयी पाखण्डी व्यक्तिकी कुटिलता है। तत्त्व विचार अनभिज्ञ मूर्खलोगोंके निकट जड़ प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी इच्छासे ही कपटता कर महाभागवत वैष्णव ठाकुरके प्रति हिंसा करनेके कारण ही मैंने इसको पूर्णरूपसे दण्ड दिया। इस नकली ब्राह्मणके तौरपर

पार्षदरूपी भक्तगण भी संसारके लोग जिसमें उनको भक्त समझें उस दुर्वासनासे कृत्रिम भावाभासका प्रदर्शन करते हैं। ऐसे दाम्भिकोंको कृष्णभक्ति प्राप्त नहीं होती कारण कपटतारहित (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष वासना रहित) होनेसे ही कृष्ण भक्ति प्राप्त होती है। जो महाभागवत-वैष्णवोंके अलौकिक क्रिया मुद्राको कृत्रिमरूपसे नकल करके 'भक्त' कहलाकर सांसारिक प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहते हैं, भगवच्चरणमें उनकी किसी प्रकारकी सेवा प्रवृत्ति नहीं होती। अपने जड़-इन्द्रिय-सुखके लिये दम्भ-से कृष्ण भक्त होनेका अभिमान करके भी भक्तिमुद्रा प्रदर्शन करनेकी उसकी चेष्टा लोक वञ्चनाके लिये ही हुई है। जहां इस प्रकारका धर्मध्वजत्व नहीं रहता है वहा पर ही कपटतारहित कृष्णभक्ति होती है और जहां ये सब दोष विराज रहे हैं वहां दम्भ, कपटता, और कृष्णसेवा छोड़कर अन्य प्रकारकी दुर्वासना है। सेवोन्मुख वैष्णवोंका कृष्णप्रीति-वाञ्छामय नृत्य देखनेसे दर्शक लोगोंका जहां भवबन्धन विनष्ट होता है, वहां विषयासक्त जीवोंकी क्रिया-मुद्रा उनलोगोंके भवबन्धनको ही बढ़ाती है। वैष्णवोंके कृष्ण-इन्द्रिय-प्रीति-वाञ्छामय नृत्य-दर्शन करनेसे वैष्णवोचित निष्कपट भाव उत्पन्न होता है, और नकल करने वालोंकी चेष्टासे संसारमें कुफल ही उत्पन्न होता है। ठाकुर हरिदास जिस समय अप्राकृत नृत्यलीला प्रदर्शन करते हैं उस समय उनके निष्कपट प्रेमसे वशीभूत होकर उनके साथ पार्षदोंके सहित स्वयं भगवान् कृष्णचन्द्र नृत्य करते हैं। संसारके सौभाग्यवान् जीव उस अप्राकृत नृत्यको देखकर बहुत जन्मके सञ्चित पाप-पुञ्जसे मुक्त होकर भक्तोन्मुखी सुकृति प्राप्त करके शुद्ध हो जाते हैं। जिनके हृदयमें कृष्णचन्द्र निरन्तर वास करते हैं उनके ही योग्य 'हरिदास' नाम है। हरिदास-ठाकुर सभी प्राणियोंके प्रति स्नेहदृष्टिसम्पन्न एवं स्थावर तथा जङ्गम सबोंके उपकारी हैं। भगवानके प्रत्येक अवतारमें वे भी अवतरित होते हैं अर्थात् लीला-सचिव पार्षद हैं। हरिदास-ठाकुर साक्षात् भगवत्पार्षद हैं इसलिये उनका विष्णु तथा वैष्णवोंके प्रति कभी अपराध नहीं होता। साधारण विषयी पुरुषोंकी नाईं उनकी कृष्णसेवन-मयीचेष्टा कभी, यहां तककि स्वप्नावस्था-में भी, विपथमें नहीं जाती। अत्यन्त थोड़े-समयके लिये भी यदि किसी जीवको जन्म-जन्मान्तरके सञ्चित महासौभाग्यके कारण हरिदासका सङ्ग प्राप्त हो तो उस संगके प्रभावसे वह जीव अवश्यही भगवच्चरणारविन्द प्राप्त करेगा। नामाचार्य हरिदास-ठाकुर सदृश महा भागवत भक्तोंका संग प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मादि देवगण सर्वदा इच्छा करते हैं। प्राकृत सत-असत कर्मका फल भोगने-के लिये बद्धजीव ऊंच नीच योनिमें जन्म ग्रहण करता है—वह जीवके कर्मफल-भोगको ही दिखलाता है। परमार्थ-विचारसे जाति वा संसारी वंश मर्यादाका कुछ मूल्य नहीं है—इस परम सत्य-को संसारमें सबोंको बतलानेके लिये ही मंगलमय भगवानकी मंगलमयी इच्छासे ही हरिदास-ठाकुर यवन कुलमें आविर्भूत हुए थे। कर्मफल-की उत्तमता तथा अधमताका पहचान उत्तम तथा अधमवंशमें जन्म प्राप्तसे ही किया जाता है, किन्तु जीव स्वरूपतः विष्णुभक्त होनेके कारण तात्कालिक वंश-परिचयके अनुसार छोटा या बड़ा होनेपर भी भगवद्भक्तिके परिमाण-अनुसार ही उत्तम अथवा अधम कहा जाना चाहिये—यही शास्त्रों-में उच्च स्वरसे कहा गया है। निम्नकुलमें जन्म

लेनेसे ही जीवको विष्णुभक्तिका अधिकार नहीं होगा, ऐसी बात नहीं। नीच कुलमें उत्पन्न व्यक्ति वैष्णव होनेपर उच्चकुलोद्भूत अभक्तोंका पूज्य, गुरुदेव तथा ब्राह्मण है। सत् कर्मके फलसे अति उत्तम कुलमें जन्म ग्रहण करके भी भगवद्भजनसे उदासीन रहनेसे उसको अवश्य ही नरक प्राप्ति होती है। विदेहराज-निमि तथा नवयोगेन्द्रके सम्वादमें कहा है (भा: ११-५-३)

य एषं पुरुषं साक्षादात्म प्रभवमीश्वरम्।
न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः॥

इन सब वेदवाक्योंको यथार्थ रूपसे प्रदर्शन करनेके लिये ही हरिदास-ठाकुर यवनकुलमें अवतीर्ण हुए थे। जिस प्रकार विष्णुविद्वेषी दैत्यकुलमें श्रीप्रह्लाद और पशुकुलमें श्रीहनुमानजीने जन्म ग्रहण किया था, उसी प्रकार यवनकुलमें ठाकुर-हरिदास प्रभुकी इच्छानुसार प्रकट हुए थे। साधारणत: मनुष्य देवताओंको स्पर्श करके एवं गङ्गाजीमें स्नान करके पवित्र होनेकी इच्छा करते हैं किन्तु ब्रह्मादि देव, यहांतक कि विष्णुचरणसे प्रकट हुई परम पवित्र गङ्गाजी भी, महाभागवत परमहंस वैष्णवाचार्य सर्वदेवमय हरिदास-ठाकुरको स्पर्श करके धन्य होनेकी इच्छा करती हैं। हरिदास-ठाकुरको स्पर्श करना तो दूर रहे उनका दर्शन करने से ही जीवके अनादिकालकी अविद्याका बन्धन-सूत्र (शरीराभिमान, शरीरमें आत्म बुद्धि) उसी क्षण नष्ट हो जाता है। नामाचार्य-हरिदासमें जो अप्राकृत गुरुका भाव रखते हैं (अर्थात् उनको अप्राकृत गुरु समझते हैं) उन भक्तोंको देखनेसे भी (अर्थात् हृदय मन वचन द्वारा उनका आनुगत्य स्वीकार करनेसे) बद्धजीवोंका संसार बन्धन नष्ट हो जाता है। तदुपरान्त नागराज मन्त्रसिद्ध (जिसने अनन्तदेवके मन्त्रकी सिद्धि प्राप्त की थी) सँपेरेने कहा कि तुमलोग अत्यन्त भाग्यवान् हो क्योंकि तुमलोगों-के प्रश्न करनेसे ही आज मेरे मुखसे भगवद्भक्तकी थोड़ीसी गुण-महिमा कीर्त्तित तथा प्रकाशित हुई है। मैं यदि सौ वर्षों तक सौ मुखों द्वारा ठाकुर-हरिदासकी अप्राकृत गुणमहिमा गान करूँ, तौभी उनका अन्त नहीं होगा। एकबार भी यदि कोई व्यक्ति श्रद्धापूर्वक 'हरिदास' इस अप्राकृत चिन्मय वैष्णव ठाकुरका नाम उच्चारण करे तो वह निश्चय ही भगवद्धाम प्राप्त करेगा। इतना कहकर वह सँपेरा चुप हो गया और उसके मुखसे हरिदास-ठाकुरका माहात्म्य सुनकर सज्जनलोग अत्यन्त प्रसन्न हुए।

(क्रमश:)

गुरु-सेवा

श्रुति-स्मृति पुराणादि शास्त्रोंमें सर्वत्र ही आचार्य सेवा करनेका माहात्म्य गान किया गया है। सद्गुरुसेवाके सिवाय बद्धजीवकी अनर्थ निवृत्ति (अनर्थ चार प्रकारके हैं—स्वरूपभ्रम, असत्तृष्णा, हृदयदौर्बल्य और अपराध) और भगवत्सेवाप्राप्तिका और दूसरा उपाय नहीं। शास्त्रोंने आचार्यको भग-वत्प्रकाश वा आश्रयजातीय भगवद्विग्रह कहा है। गुरुदेव भगवानसे अभिन्न हैं। वे जीवोंको नित्य

सेवाशिक्षा देनेके लिये प्रपञ्चमें सेवक-विग्रहरूपसे प्रकट हैं। उनका आश्रय ग्रहण करनेसे जीव चित्स्वरूप भगवानको प्राप्त कर सकता है। सद्गुरु सेवा करते करते जब बद्धजीवके हृदयकी अविद्यारांश दूर होती है और चित्त-दर्पण निर्मल होता है, तब गुरु कृपासे जीवके उस निर्मलहृदय-में परमैश्वर्य दानकरनेवाली ब्रह्मविद्याका उदय होता है। जीवको जबतक मुक्ति कामना प्रबल रहती है, तबतक वह सद्गुरुके समीप अभिगमन नहीं कर सकता। श्रुति कहते है—

परीक्ष्य लोकान कर्मचितान ब्राह्मणो।
निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन॥
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम॥

ब्राह्मण कर्म द्वारा अर्जित स्वर्गादि लोकसमूहको कलेके छिलकेके समान असार समझकर और "नित्य भगवद्धाम अनित्य कर्मके द्वारा प्राप्त नहीं होता" ऐसा समझकर, कर्मफलमें निर्वेद (विरक्ति) लाभ करते हैं। इस प्रकार भुक्ति-कामनासे निर्वेदप्राप्त पुरुष अति विनीतभावसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेके लिये वेदतात्पर्यवित (वेदके तात्पर्यको जानने वाले) और भगवत्सेवापरायण सद्-गुरुके चरणमें सम्पूर्णरूपसे शरण ग्रहण करते हैं।

श्वेताश्वतर श्रुतिने कहा है—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

जिन अधिकारी पुरुषकी भगवानमें अहैतुकी पराभक्ति वर्तमान है और जो सद्गुरुमें भी एकान्तिकी भक्ति विशिष्ट हैं, उन्हीं महात्माके निकट आत्मतत्व-विषयक सभी उपदेश प्रकाशित होते हैं। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीपादने भी कहा है—

"ताते कृष्ण भजे, करे गुरुर सेवन।
माया जाल छूटे, पाय कृष्णेर चरण॥"

अर्थात त्रिगुणात्मिका दुष्पार मायाके हाथसे उद्धार प्राप्तकर नित्य भगवत्सेवा पानेके लिये गुरुसेवा एवं गुरुके आनुगत्यमें भगवद्भजनके सिवाय और दूसरा उपाय नहीं। सद्गुरु शिष्यके भुक्तिमुक्ति-कामनाको निराशकर एकमात्र अहैतुकी सेवा शिक्षादान करते हैं। जहां गुरु (?) शिष्यको अपना भोग्य समझते हैं एवं शिष्य भी आत्मेन्द्रिय प्रीतिवाञ्छा लेकर गुरुके निकट गमन करते हैं, वहां गुरुसेवा नहीं होती। इस प्रकार गुरु और शिष्यका सम्बन्ध नरक जानेका द्वारस्वरूप एवं सद्-गुरुसेवा वैकुण्ठ जानेका द्वारस्वरूप है। गुरु नित्य भगवत्सेवामें प्रतिष्ठित हैं अतः वे शिष्यको भी भगवानकी सेवामें नियुक्त करते हैं। सद्गुरुकी सेवाके सिवाय अन्य कोई भी दूसरा कृत्य नहीं है इसलिये एकमात्र सद्गुरुकी सेवा करनेसे ही युगपत गुरुसेवा और भगवत्सेवा सिद्ध होती है। प्रसिद्ध वैष्णवाचार्य श्रीरामानुजपादका नाम परमार्थी लोगोंने श्रवण किया होगा। उन्होंने मायारूपी अन्धकार और कर्ममार्गीय स्मार्त्तोंके चक्करसे जीवों-के उद्धार करनेके लिये संसारमें भक्त और भगवानकी सेवामाधुर्यका प्रचार किया है। एकबार उन्होंने शिष्योंके साथ श्रीशैलोद्देश्य गमन किया। उच्चस्वरसे हरिनाम कीर्तन करते करते वे अग्रसर होने लगे। दो तीन दिनोंके बाद वे एक ग्राममें आ पहुँचे। उसी ग्राममें रामानुजके दो शिष्योंका वासस्थान था। एक धनी और एक निर्धन थे। धनी शिष्यका नाम यज्ञेश एवं दूसरे शिष्यका नाम वरदाचार्य था। रामानुजने उक्त

धनाढ्य शिष्यके निकट शिष्योंके साथ अपने आगमनकी सूचना देनेके लिये अपने दो शिष्योंको भेजा। यज्ञेश श्रीगुरुदेवके आगमनकी वार्ता सुनकर आनन्दसे इतना अधीर हो गये कि अन्तःपुरमें जाकर किस प्रकार प्रभुकी अभ्यर्थना करेंगे इसके लिये व्यस्त हो पड़े। इधर दो गुरुभ्राता जो उनके घरके द्वारपर बैठे हुए थे उनके विषयमें वे उदासीन हो गये। रामानुजके दोनों शिष्योंने यज्ञेशके इस व्यवहारसे दुःखित होकर गुरुके निकट यह सब निवेदन किया। रामानुज भी धनाढ्य शिष्यके व्यवहारसे अत्यन्त दुःखित होकर दरिद्र वरदाचार्य-के घरमें आतिथ्य स्वीकार करनेके लिये शिष्य लोगोंके साथ पहुँचे। वरदाचार्य प्रतिदिन प्रातःकाल भिक्षाके लिये बाहर जाते एवं सारा दिन भिक्षाकर जो कुछ पाते, उसे गुरु और नारायणको निवेदन कर उनलोगोंका अवशेष ग्रहण करते। उनके लक्ष्मी नामकी परम साध्वी रूपलावण्यवती सहधर्मिणी थीं। वे प्रकृत स्वामीके धर्मकी सहायता करनेवाली थीं। जिस समय रामानुज वरदाचार्यके टूटे फूटे झोंपड़े-पर शिष्य लोगोंके साथ उपस्थित हुए, उस समय वरदाचार्य भिक्षाके लिये बाहर गये हुए थे। लक्ष्मी, स्नान करके एक क्षुद्र शतछिद्र फटा वस्त्र किसी प्रकार धारणकर दूसरा एक फटा मलिन वस्त्र धूपमें सुखा रहीं थीं। वे ऐसी अवस्थामें गुरुदेवके सामने आकर उनका अभिनन्दन नहीं कर सकतीं थीं, इस बातको उन्होंने करतलध्वनि द्वारा ज्ञापन किया। रामानुजने उसी समय बाहरसे अपना चादर गृहके भीतर फेंक दिया। लक्ष्मी उसके द्वारा अपना शरीर आच्छादनकरके गुरुके सम्मुख उपस्थित हुई एवं गुरुदेवको पुनः पुनः साष्टाङ्ग प्रणामकरके कहने लगीं, 'प्रभो, आपलोग कृपापूर्वक बैठिये, मेरे स्वामी भिक्षाके लिये बाहर गये हैं, मैं शीघ्र ही विष्णु नैवेद्य प्रस्तुत कर देती हूँ।" इधर गृहमें चावलकी खुद्दी भी नहीं। क्या करेंगी कुछ स्थिर न कर सकीं। किन्तु प्राण देकरके भी यदि गुरु और वैष्णवलोगोंकी सेवा हो सके तो वह अवश्य करनी चाहिये यह चिन्ता करते २ नारायण-को स्मरण करने लगीं। अन्तमें लक्ष्मीदेवीको एक उपाय सूझ पड़ा। निकट ही एक धनाढ्य वणिकका वासस्थान था। उक्त वणिक चरित्रहीन था। उसने लक्ष्मीदेवीके रूप लावण्य पर मुग्ध होकर कईबार उनको अपनी विलासिनी होनेके लिये अनुरोध किया था और कहा था कि जिस समय लक्ष्मीदेवी उसकी मनोकामना पूर्ण करेंगी उसी समयसे उनके और उनके स्वामीका दारिद्र्य दूर हो जायगा। उन्हें और किसी बातका अभाव नहीं रहेगा। किन्तु सती साध्वी लक्ष्मीदेवीने वणिकके ऐसे विचारकी ओर दृष्टिपात भी नहीं किया था। आज देखती हैं कि श्रीगुरुदेव और वैष्णववृन्द द्वारपर उपस्थित हैं। यदि सामान्य देहके लौकिक वा नैतिक धर्मको त्यागकर भी उनलोगोंकी सेवा हो सके तो उनके देह धारण करनेकी सार्थकता होगी। वे इतने दिनोंतक अपने भोगके लिये वणिकके असाधु (निकृष्ट) प्रस्तावसे सहमत नहीं हुई थीं। किन्तु आज हरि, गुरु-वैष्णवसेवाके लिये ऐसा घृणित कार्य करनेके लिये भी उतारू हो गई और इससे उन्हें नरकमें जाना पड़ेगा इसके लिये चिन्ता नहीं की क्योंकि उससे वैष्णवोंकी प्रीति होगी। आत्मेन्द्रिय-प्रीतिवांछा ही काम है। किन्तु कृष्णेन्द्रिय-प्रीतिवांछाका प्रेमनाम दिया गया है। कलिघ्न नामक एक महाभागवतने चोरी कर भगवानकी सेवा की थी।' तिरुमङ्गई आलयरने

दस्युवृत्तिके द्वारा अर्थ अपहरण करके भी अपने इष्ट रङ्गनाथके श्रीमन्दिरका निर्माण कराया था। "नरक जाने पर भी मैं गुरुसेवा और वैष्णवसेवा त्याग नहीं करूँगी"; ऐसा सङ्कल्प कर लक्ष्मीदेवी उस धनाढ्य वणिकके निकट गई और उसी दिन रात्रिमें उसकी मनोवासना पूर्ण करनेका वचन दिया। वणिक कितना अनुरोध कर, और कितना प्रलोभन दिखाकर भी जिसको ऐसे असत कार्यमें प्रेरित नहीं कर सका था वही आज प्रार्थी होकर उसके द्वारपर उपस्थित हुई है। यह देखकर वणिक आनन्दमें अधीर हो गया। लक्ष्मीदेवीने वणिकके निकट ज्योंही अपने गुरु और वैष्णव वृन्दोंके आतिथ्य सत्कार करनेके लिये द्रव्यसमूहकी आवश्यकता बतलाई त्यों ही बरदाचार्यकी कुटीमें बहंगीपर तण्डुल दुग्ध, दधि, घृत, चीनी और नाना प्रकारका फल-मूल प्रेरित होने लगा। लक्ष्मीदेवीने शीघ्रतापूर्वक नैवेद्य बनाकर विष्णुको निवेदन किया और उसे गुरु और वैष्णव लोगोंको प्रदान किया। सबोंने सन्तुष्ट होकर प्रसादका सम्मान किया एवं दरिद्रके घरमें प्रसादका ऐसा सुन्दर आयोजन देखकर आश्चर्यित हो गये। इधर लक्ष्मीदेवीके पति भिक्षा-से लौटकर अपने गुरुदेव और गुरु भ्रातृगणको अपने टूटे फूटे झोपड़ेपर देखकर अतिशय आनन्दित हुए एवं श्रीगुरुदेव और वैष्णववृन्दोंकी परिचर्या करनेके लिये उन्हें व्यग्र होते देखकर वैष्णव लोगोंने कहा कि उनलोगोंने परम सन्तोषके साथ प्रसाद सम्मान किया है। बरदाचार्य सुनकर अतिशय विस्मित हुए एवं घरके अन्दर जाकर सहधर्मिणीसे पूछा। लक्ष्मीदेवीने नम्रतापूर्वक भयभीत होकर वणिकके निकट अपनी की हुई प्रतिज्ञाका निवेदन किया। बरदाचार्य यह सुनते ही आनन्दमें विह्वल होकर नृत्य करते हुए लक्ष्मीदेवीसे कहने लगे—लक्ष्मी, यथार्थमें तुम मेरी सहधर्मिणी हो, आज मैं धन्य हुआ। मैं इतने दिनोंसे समझता था कि तुम मेरे हाड़-मांसके देहको ही पति समझती हो किन्तु आज साक्षात् देखा कि तुम्हारे ऊपर गुरु कृपाकी पूर्णरूपसे वर्षा हुई है। तुम्हारा सम्बन्ध-ज्ञानोदय हुआ है। तुमने समझ लिया है कि श्रीनारायण ही एकमात्र पति हैं और सभी जीव प्रकृति है। अतएव आज तुमने यह श्वश्रृगाल-भक्ष्य देहके द्वारा जो परमपतिकी सेवा की है यह स्मरण कर मैं पुनः पुनः आनन्दित होता हूँ। धीरे धीरे श्रीरामानुज और वैष्णवगण भी लक्ष्मीदेवीकी ऐसी सेवा-प्रवृतिको जानकर विस्मित हुए एवं श्रीरामानुजने उन दम्पतिको कहा। तुमलोग दोनों इस वणिकके घरमें जाकर उसको कुछ महाप्रसाद दे आओ। दम्पति उस वणिकके निकट महाप्रसाद ले गये। बरदाचार्य बाहर रहे। लक्ष्मीने वणिकके निकट जाकर उसको महाप्रसाद अर्पण किया। लक्ष्मीदेवीके अनुरोधसे वह वणिक रामानुजाचार्यका अवशेष ग्रहण करने लगा। किन्तु वैष्णव लोगोंके उच्छिष्टका क्या माहात्म्य है! प्रसाद ग्रहण करते करते वणिकका मन फिर गया। वणिकके चित्तमें अनुताप होने लगा—हाय, मैंने किसके प्रति ऐसा असदभिलाप किया है। "आप वैष्णव गृहिणी हैं, आपके नारायणके प्रति समर्पित देहमें मैंने भोग बुद्धि की है। हे माता मुझको नरकसे उद्धार करो। आपके श्रीगुरुदेवकी कृपासे क्या मैं वञ्चित रहूँगा? वैष्णवगण अदोषदर्शी हैं। क्या वे हम-पर कृपा करेंगे?"

सतीने स्वामीके निकट आकर सब घटना सुनाई

एवं तत्पश्चात् बनियेकी बात श्रीगुरुदेवके चरणमें भी निवेदित की। पतितपावन श्रीरामानुजाचार्यने वणिकको बहुत दुःखित देखकर दीक्षा प्रदान की। इसके बाद उस बनियेने श्रीगुरुदेवके निकट उन वैष्णव-दम्पत्तिका दारिद्र्य दूर करनेके लिये अपना धन देनेकी इच्छा प्रकट की। यह सुनकर बरदाचार्यने गुरुदेवके निकट बहुत नम्र भावसे कहा—"प्रभो, ऐसी कृपा कीजिये, जिससे यह अधम हरि-गुरुवैष्णवसेवाधिकारसे अलग न हो। प्रभो, धन, जन वा प्रतिष्ठादिके द्वारा जिससे मेरा चित्त आपके चरण कमलोंकी सेवासे स्खलित न हो।" रामानुजने भी बरदाचार्यके ऐसे भावको देखकर बनियेसे जैसा कहा था वैसाही ज्यों का त्यों हम श्रीचैतन्यभागवत-में देखते हैं—

यत देख वैष्णवेर व्यवहार-दुःख।
निश्चय जानिह सेइ परानन्द सुख॥
विषय-मदान्ध सब किछुई ना जाने।
विद्या-धन कुलमदे वैष्णव ना चिने॥

इधर रामानुजके धनाढ्य शिष्य यज्ञेश श्रीगुरु-सेवा न कर सकनेके कारण बहुत दुःखित होकर बरदाचार्यके घरपर पहुँचे एवं श्रीगुरुदेवसे हृदयका दुख प्रकट किया। रामानुजने यज्ञेशसे कहा तुमसे वैष्णवापराध हुआ है, इसीलिये हमने तुम्हारे गृहमें आतिथ्य ग्रहण नहीं किया। तू अपने दोनों गुरु-भ्राताओंकी अभ्यर्थना न कर अन्तःपुरमें चला गया था। उस समय यज्ञेश ने कहा प्रभो आपके शुभागमनकी वार्ता सुनकर मैं आनन्दमें विह्वल होकर आपकी अभ्यर्थना करनेके लिये आयोजन कर रहा था। उस समय रामानुजने कहा कि आनन्दमें विह्वल होना कुछ सेवा नहीं है।

"निज प्रेमानन्दे कृष्ण-सेवानन्द बाधे।
से आनन्देर प्रति भक्तेर हय महाक्रोधे॥"

जहां अपना आनन्द लाभ करनेकी लेशमात्र भी इच्छा है, वहां भुक्तिकामना है सेवा नहीं; सेवामें केवलमात्र इष्टदेवकी सुखकामना रहती है। वैष्णवों-को त्यागकर कभी गुरु-सेवा नहीं हो सकती। वैष्णव वा गुरुसेवक सभी श्रीगुरुदेवके अङ्ग-प्रत्यङ्ग हैं। अतएव तू जो 'अर्द्धकुक्कुटीजरती' वाली कथाका अनुसरण कर वैष्णवका सम्मान न कर केवल मेरी सेवा-चिन्तामे ही विह्वल हो उठा था उससे तुमसे वैष्णवापराध हुआ। इसलिये मैं तुम्हारे गृहमें नहीं गया। यज्ञेश उस समय अपना अपराध समझकर श्रीगुरुदेव और वैष्णवगणोंके चरणोंमें वारंवार अपना अपराध ज्ञापन कर क्रन्दन और क्षमाकी भिक्षा मांगने लगे। श्रीरामानुजाचार्यने यज्ञेशके गृहमें आतिथ्य स्वीकार किया। सद्गुरु धन, कुल, विद्या नहीं देखते, वे सेवा प्रवृत्ति देखते हैं। सद्गुरु सेवा एवं भुक्ति और मुक्तिका पार्थक्य प्रदर्शन करते हैं। सद्गुरु शिष्यको पतित रखकर पतितपावन नाम नहीं धारण करते हैं। शिष्यको सचमुच ही पवित्र करते हैं। सद्गुरु निष्किञ्चन और निरपेक्ष शिष्यके अन्याय आचरणका प्रश्रय नहीं देते।

विविध-संवाद

पटना

श्रीश्रीविश्ववैष्णवराज सभाकी शाखा पटना श्रीगौड़ीयमठमें परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवके (नियन्त्रणमें) नियमितरूपसे पाठ, कीर्त्तन और

सर्वदा हरिकथा हो रहा है। शहरके विभिन्न स्थानोंसे कई शिक्षित और सम्भ्रान्त सज्जन मठमें आकर श्रीपादपद्मपाल पङ्कजटक दासाधिकारी भक्ति प्रसून प्रभुके निकट प्रश्नादिके साथ साथ हरिकथा श्रवण कर रहे हैं।

श्रीपाद भक्ति प्रसून प्रभुने विहार और उड़िसाके Postmaster General Mr. N. N. Banerjee महोदयके निकट श्रीगौड़ीयमठके प्रचारका वैशिष्ट्य, श्रीचैतन्यमहाप्रभुका जीवके प्रति असमोर्द्ध-दानकी कथा—आत्मधर्मकी कथा—जीवके एकमात्र नित्यमङ्गल प्राप्त करनेकी कथाका प्रायः १ घण्टे तक कीर्त्तन किया था। Postmaster General महोदय श्रीपाद भक्ति प्रसून प्रभुके निकट हरिकथा श्रवणकर मठके प्रति विशेष आकृष्ट हुए हैं एव यथासाध्य मठकी सेवामें सहायतादेने और कभी कभी श्रीमठमें आनेके लिये भी कहा है। Postmaster General महोदय सहृदय व्यक्ति हैं। उनका हरिकथा-श्रवणमें आग्रह देखकर हमलोग परमानन्दित हैं।

लखनऊ

लखनऊ श्रीगौड़ीयमठके सेवकोंकी चेष्टा और लखनऊ मौलीभगञ्जनिवासी बाबू त्रिपुरारि शरण श्रीवास्तवके यत्नसे लखनऊ रेकाबगञ्ज-निवासी श्रीयुक्त बाबू वासुदेव प्रसादकी ठाकुरवाड़ीमें गत ७ वीं मई रविवार को छायाचित्र द्वारा श्रीकृष्ण-लीलाका कीर्त्तन हुआ था। श्रीपाद सुदर्शन ब्रह्मचारी भक्तिशास्त्रीजी ने कई सेवकोंके साथ ७ बजे सन्ध्याको उपस्थित होकर छायाचित्र द्वारा श्रीकृष्णलीला और श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षाका कीर्त्तन किया था। उनकी मर्मस्पर्शिनी वाणी सुनकर उपस्थित सज्जनमण्डली बहुत प्रसन्न और कीर्त्तनकी ओर आकृष्ट हुई थी। उस दिन श्रीकृष्ण-लीला सुननेके लिये उत्सुक होकर अनेक शिक्षित सज्जन और महिलायें उपस्थित हुई थीं। इनमें लखनऊके रेकाबगञ्जस्थित वासुदेव-कीर्त्तन सभाके सभापति श्रीयुक्त पण्डित दयालजी बी० ए०, रेलवेके अवसर प्राप्त कर्मचारी श्रीयुक्त बाबू मथुरा प्रसाद आदि कई मुख्य सज्जनोंके नाम उल्लेखनीय हैं।

श्रीपाद सुदर्शन प्रभुने तीन सप्ताह तक लखनऊ श्रीगौड़ीयमठमें रहकर मठके ब्रह्मचारियों और मठमें आये हुए सज्जनोंके निकट सतत हरिकथाका कीर्त्तन किया था और शहरके विभिन्न स्थानोंमें भी निमन्त्रित होनेपर हरिकथा सुनाकर भगवान की भक्तिका उपदेश किया था।

दिल्ली

भागवतके सम्पादक महोदय कई दिनोंसे दिल्ली गौड़ीयमठमें ठहरकर निरन्तर श्रीहरिकथा कीर्त्तन कर रहे हैं। उनके मुखसे हरिकथा श्रवण कर सेवकोंको बहुत आनन्द हो रहा है। उनकी हरिकथाकी विशेषता यह है कि "वे आचार्य निष्ठा ही साधकोंका एकमात्र साधन है" इसीका उपदेश कर रहे हैं। आचार्यपादपद्ममें मर्त्यबुद्धि रखकर हमलोग चाहे जितना श्रवण कीर्त्तन और प्रचारादि करें, उसका कोई मूल्य नहीं। शरणागति ही वैष्णवधर्म है। शरणागतिके तारतम्यानुसार ही वैष्णवधर्मका तारतम्य है।

जो शरणागतिका मूल्य न समझकर सांसारिक कर्म-दक्षताको प्रधान समझते हैं, वे वैष्णवधर्मकी कथा नहीं समझते हैं। इसी प्रकारके अनेक उपदेश उन्होंने किये। उनकी हरिकथासे मठ सर्वदा ही गूंजा करता है। उनकी निष्कपट श्रीहरिकथा कीर्त्तन-सेवा चेष्टा प्रशंसनीय है।

SREE KRISHNA CHAITANYA

BY PROF. N. K. SANYAL, M. A.

Late Senior Professor of History, Ravenshaw College, Cuttack.

A rational, scientific and comprehensive study, based on the **SHRAUTA PATH,** with a highly appreciative foreward by His Divine Grace Parmahansa Srimad **Bhakti** Sidhanta Saraswati Goswami with an Introduction containing full information for following the narrative of events, as well as with an Index and a Glossary. Royal 8 vo. 800 pages, handsome calico jacket—Price Indian Rs 15/- ; Foreign 21 s. nett.

To be had at SREE GAUDIYA MATH, Baghbazar, Calcutta.

SREE BRAHMA SAMHITA (Fifth Chapter)

With commentary by Sri Jeeva Goswami and translation and purport in English by His Divine Grace Sreemad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami.

First class calico binding —Rs 2-8-0.

RELATIVE WORLDS

A lecture delivered on the 28th August 1932 at the Saraswati-Assembly Hall of Sree Gaudiya Math, Calcutta by His Divine Grace. Ans. 0-6-0.

A few words on Vedanta by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

The Vedanta its Morphology and ontology by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

THE BHAGBAT

Its Philospby, its Ethics and its Theology New enlarged edition with an appendix by Srila, Prabhupad Full calico bound—Rupee One • Thick, paper bound—Twelve Ans.

(बंगलामें)

श्रीमद्भागवतम्

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास—प्रणीत मूल, श्रीमन मध्वाचार्यकृत तात्पर्य निर्णयटीका, श्रीमद् विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर-कृत सारार्थदर्शिनी टीका, बंगानुवाद, संस्कृत अन्वय व प्रतिशब्द, तथ्य व विवृत्यादियुक्त। प्रति स्कन्धके आरम्भमें उस स्कन्धका प्रतिपाद्य कथासार, प्रत्येक अध्यायके प्रथममें उस अध्याय सारके साथ सुविस्तृत तात्पर्यादि विवृत हैं। श्लोकसूची, विषयसूची अध्याय-विवरण, पत्र व स्थान-सूचीके साथ उत्तम कागजपर उत्तम अक्षरमें मुद्रित। प्रथमसे १२वां स्कन्धतक छपा सम्पूर्णरूपसे शेष हो गया है। भिक्षा प्रथमसे १२वां स्कन्धतक ४०), ५०म स्कन्ध सम्पूर्ण बिना बंधा हुआ ८) और कपड़ेकी बंधाई ८) मात्र।

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

श्रील कविराज गोस्वामीकृत। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर रचित 'अमृतप्रवाहभाष्य' व श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी-प्रभुपाद-लिखित 'अनुभाष्य' श्रुति स्मृत्यादि अनेक शास्त्र प्रमाणके साथ प्रकाशित हुए हैं। श्लोककी सान्वय व्याख्या, बंगानुवाद व प्रत्येक पयारके पूर्व संक्षिप्त अभिप्रेय संयोजित है। प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें उसी अध्यायका कथासार लिखा हुआ है। श्लोक, पयार, शब्द, स्थान, पात्रका सुवृहत सूची व ग्रन्थकारकी विस्तृत जीवनी-समन्वित इस तरहका अभूतपूर्व संस्करण इसके पहले कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ है। उत्तम कागजपर सजावटके साथ मोटे अक्षरमें मूलांश मुद्रित हुआ है ग्रन्थ प्राय १५०० पृष्ठमें सम्पन्न है। भिक्षा बिना बंधा हुआ ६) कपड़ेकी बंधाई ७) मात्र।

श्रीचैतन्यभागवत

श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचित गौडीय भाष्यके साथ ग्रन्थका आयतन—क्राउन ४ पेजी मूल १०१६ पृष्ठ, सूचीपत्र २४४ पृष्ठ— कुल १२४७ पृष्ठ भिक्षा—६)मात्र (बिना बंधा हुआ)।

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है । प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है । हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रवालीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं ।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगत्‌की अवस्था, समसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व तथ्य और प्रमाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भावमें साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है । ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं । सुन्दर जिल्द भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा । भिक्षा १) । प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकत्ता । श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वोयारी, ढाका ।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवनके मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है । निर्मत्सर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे । वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें एण्टिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें । विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं । भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणोंकी गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुसज्जित होकर प्रकाशित हुई है । श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा ।|) आना ।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित । भिक्षा ।।।) मात्र । प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ ।

अणुभाष्यम्

चार अध्यायों ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ । बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण । पहले प्रति अध्यायके प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्यविरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपादका सूत्र-समूह, अणुभाष्य मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्त्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है । इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्रभी संयोजित हुआ है । भिक्षा २) मात्र ।

Printed by :—Mukunda Madhab Das Brahmachari, at the Ramesh Printing Works and published by the same from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

Regd No. P. 468.
वर्ष ५] श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः संख्या ५]

भागवत

एकमात्र
पारमार्थिक
मासिक पत्र

५ वामन
गौराब्द
४५३

अषाढ़ कृष्ण ५
संवत
१९९६ वि०

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि-लक्षणा फलाभिसन्धान-रहिता ऐकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है— उसी भक्तिके बलसे अनर्थ शमन होनेपर आत्मा प्रसन्नता लाभ करता है ।

प्रति संख्या —)॥ } सम्पादक—पं० श्रीपाद रूपविलास ब्रह्मचारी भक्ति शास्त्री बी० ए० { वार्षिक १)

Editor :—Pundit Sripad Rupbilas Brahmachari, Bhaktishastri B A.

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

विषय सूची

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

भागवत

श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना)

वर्ष ५ संख्या ५

आषाढ़ कृष्णा ४, ४५३ सं० १९९६ वि०, ७ जून सन १९३९ ई०

भक्ति के प्रति अपराध

(ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

यह एक भयङ्कर बात है। हमलोग बहुत तरहसे भक्तिका अनुष्ठान करते हैं। सम्प्रदाययुक्त ब्राह्मण गुरुके समीप मन्त्र ग्रहण करते हैं। प्रतिदिन द्वादश तिलक लगाकर श्रीकृष्णकी पूजा करते हैं। एकादशी करते हैं। यथासाध्य नाम स्मरण करते हैं। श्रीवृन्दावनादि स्थानका दर्शन भी करते हैं। किन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि भक्तिदेवीके प्रति अपराध न हो इसके लिये यत्न नहीं करते। श्रीभक्तिदेवीके प्रति अपराधका लक्षण श्रीमन्महाप्रभुने भक्तलोगोंके लिये मुकुन्दको लक्ष्यकर इस प्रकार वर्णन किया है :—

मुकुन्द मेरा दर्शन प्राप्त नहीं कर सकता, कारण वह कभी तृणादपि सुनीच (तृणके समान तुच्छ) हो जाता है और कभी झाड़ू मारनेके लिये प्रस्तुत हो जाता है—वह जहां जाता है वहांके लोगोंके अनुकूल बातचीत करके मिल जुल जाता है। वह अद्वैताचार्यके समीप योगवाशिष्ठ पढ़ता है और भक्तोंके सङ्गमें तृणादपि सुनीच होकर नाचता गाता है। वह अभक्तोंसे जब मिलता है तब भक्तिको नहीं मानता, झाड़ू मारता है। उसने भक्तिदेवीके प्रति अपराध किया है, इसलिये वह मेरा दर्शन प्राप्त नहीं कर सकता।

श्रीमुकुन्द भी भगवत पार्षद थे। सुतरां प्रभुकी उस सम्बन्धमें जो बातें हैं, वे रहस्यमात्र हैं। किन्तु महाप्रभुका हृदय अतिशय गम्भीर था। उन्होंने जो बातें जिस समय कही थीं उनमें उपदेश था। वह उपदेश यह है, कि केवल दीक्षादि ग्रहणकर (गुरु-

मुखसे मन्त्र ग्रहणकर) भक्ति के अङ्गोंका अनुष्ठान करनेसे ही कृष्ण प्रसन्न होंगे, ऐसी बात नहीं है। अनन्यभक्तिमें जिनकी अनन्य श्रद्धा है वेही प्रभुकी प्रसन्नता प्राप्त कर सकते हैं। जिनके हृदयमें उस प्रकारकी श्रद्धा उत्पन्न हुई है वे शुद्धभक्तिके पक्षपातमें दृढ़ रहते हैं। जहांपर शुद्धभक्तिका प्रसङ्ग नहीं है वहांपर वे न जाते हैं और न बैठतेही हैं। जहां-पर शुद्धभक्तिके विषयोंकी आलोचना होती है वहां पर वे प्रसन्नतापूर्वक ठहरते हैं। सरलता, दृढ़ता तथा एकान्तप्रियता ही शुद्धभक्तका स्वभाव है। वे, लोगों की प्रसन्नताके लिये कभी भक्तिविरुद्ध बातोंमें सम्मति नहीं देते। शुद्ध भक्तलोग सर्वदा निरपेक्ष रहते हैं।

आजकल बहुतसे लोग ऐसे जो इस प्रकारके अपराधका भय नहीं करते। भक्तको देखमेसे ही अश्रुपुलकादि होता है। कभी कभी कथा-आलोचना में भी यह दशा प्राप्त होती है। और आध्यात्मिक सभामें आध्यात्मिक मतकी सहायता करते हैं। विषयमें आसक्त होकर विषय प्राप्त करनेके लिये नितान्त उन्मत्तवत व्यवहार करते हैं। हे पाठकवर्ग ! लोगों की इस प्रकारकी निष्ठा कैसी है ?

हमलोग विचार करते हैं कि प्रतिष्ठाके लिये ही वे भक्तोंके निकट भक्तिका लक्षण दिखलाते हैं। कहींपर प्रतिष्ठाके लिये एवं कहींपर अन्य जड़-विषय प्राप्तिके लिये अनेक प्रकारका व्यवहार करते हैं। दुःखकी बात यह है कि वे संसारके लोगोंको इस प्रकारके व्यवहार की शिक्षा देकर शुद्धभक्तिके प्रति अपराध ही नहीं बल्कि संसारके जीवोंका सर्वनाश करते हैं।

हे पाठको ! आइये हमलोग सावधान हो जायँ। भक्तिदेवीके प्रति हमलोगोंका जिसमें अपराध न हो, वैसा करें। पहले हमलोग निरपेक्ष होकर भक्ति याजन करें। ऐसी प्रतिज्ञा करें:—"किसी पक्ष-का समर्थन करके हमलोग भक्तिप्रतिकूल कोई बात नहीं कहेंगे और न कोई काम करेंगे। सभी कामोंमें सरल रहेंगे। हृदयमें एक, तथा व्यवहारमें दूसरा, ऐसे नहीं होंगे। भक्तिप्रतिकूल पक्षके लोगोंको कृत्रिम लक्षण दिखलाकर उनसे प्रतिष्ठा प्राप्त करने का यत्न नहीं करेंगे। शुद्धभक्तिका ही पक्षपात करेंगे। और किसी प्रकारके सिद्धान्तका पक्ष समर्थन नहीं करेंगे। हमलोगोंका हृदय तथा व्यवहार एक ही प्रकारका हो।"

श्री श्रील आचार्यदेव और रायबहादुर मदनगोपाल साहीना

साहीना साहेब—निर्जनस्थानमें बैठकर हरिनाम करना क्या वैष्णवधर्मसे अनुमोदित पथ नहीं है ?

आचार्यदेव—जिस समय दुर्भाग्यवश हमलोगों-को साधुओंका दर्शन नहीं मिलता, उस समय बहिर्मुख जनसङ्गकी अपेक्षा निर्जनमें (एकान्तस्थानमें) हरिनाम ग्रहण करनेकी विधि देखी जाती है। वस्तुतः अकपट साधुलोगोंका सङ्ग ही प्रकृत निर्जनता है।

साहीना सा:—हमलोगोंको तो प्रकृत साधुका दर्शन नहीं मिलता।

आचार्यदेव—आपको प्रकृत साधुका अनुसन्धान करना होगा। इस विषयमें आलसी वा उदासीन होनेसे नहीं चलेगा। प्रकृत साधुका सङ्ग प्राप्त करनेके लिये सभी प्रकारसे चेष्टा करनी होगी। आपकी सच्छास्त्र और भगवानके प्रति आन्तरिक श्रद्धा रहनेसे कृष्ण-कृपासे प्रकृत साधुका दर्शन अवश्यही

मिलेगा।

साहाना सा:—प्रकृत साधुको पानेपर भी हम-लोगोंके सदृश संसारी जीवको वैसा साधुसङ्ग करनेका समय कहां है ?

आचार्यदेव—हम नश्वर परिवारवर्गोंका पोषण करनेके लिये इतना समय और शक्ति नियोग कर सकते हैं, किन्तु हमारे पास अपने आत्माका और आत्मसम्बन्धी आत्मीयगणोंके नित्यमङ्गलके लिये साधुसङ्ग करनेका समय नहीं है, यह विचार लाना बड़े ही दुर्भाग्य की बात है। साधुसङ्गके लिये ही संसार वा देहयात्रानिर्वाह करनेकी आवश्यकता है; नहीं तो इन सबोंकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है। जिस उद्देश्यके लिये संसार है, उसी मूल उद्देश्यको परित्याग कर जो संसारमें प्रवृत्ति हो वह पशु-प्रवृत्ति से भी नीच है!

साहाना सा:—तो क्या जिस समय मैं हरिनाम ग्रहण करता हूँ, उस समय अकेला नहीं रहूँगा ?

आचार्यदेव—किसी प्रकारसे भी अकेला रहना नहीं होगा। अपनेसे श्रेष्ठ अकपट वैष्णवके सङ्गमें रहकर हरिनाम करना होगा; श्रीहरिनामकी कृपाके लिये प्रार्थना करनी होगी। यदि निष्कपट साधुका अभाव हो, तो हरिनामके निकट इस प्रकार प्रार्थना करनी होगी कि जिसमें शुद्ध नामाचार्यके अर्थात् हरिनाम परायण प्रकृत वैष्णवका सङ्ग प्राप्त हो। श्रीनाम प्रभुके निकट सकातर प्रार्थना जनानेसे वे प्रकृत साधु प्रदर्शन करायेंगे एवं साधुसङ्गमें रहकर नामप्रभुकी सेवा करनेकी योग्यता और बल प्रदान करेंगे।

साहाना सा:—जिस समय साधुसङ्ग पाऊँगा, उस समय क्या करूँगा ?

आचार्यदेव—उस समय साधुके निकट अकपट होकर आत्ममङ्गलका परिप्रश्न करेंगे एवं वे जो कुछ कीर्त्तन करते हैं उसे सेवोन्मुख कर्णके द्वारा श्रवण कर तदनुरूप जीवन यापन करेंगे। इसीका नाम है—'साधुसङ्ग'।

साहाना सा:—मैं यदि साधुसङ्गमें हरिकथाके इतना समय दान करूँ तो निर्दिष्ट एकलक्ष हरिनाम करनेका समय किस प्रकार पाऊँगा ?

आचार्यदेव—हरिकथा और हरिनाम एकही वस्तु हैं। जो हरिकथा श्रवण और कीर्त्तन करते हैं वे हरिनाम नहीं करते, इस प्रकार जड़ और खण्ड प्राकृत विचार नहीं करना चाहिये। तब निर्बन्धरूपसे जो हरिनाम ग्रहण किया जाता है वह यदि हरिसेवा वा हरिकार्यमें नियुक्त रहनेके समय सम्पूर्ण नहीं हो, तो अन्यान्य दैहिक कार्य—जैसे निद्रादिको कम करके हरिनाम कर सकते हैं।

साहाना सा:—उस प्रकारसे जो हरिनाम ग्रहण किया जायगा वह तो अकेला ही करना होगा; नहीं तो किस प्रकार निर्बन्धकी रक्षा होगी ?

आचार्यदेव—पहले ही तो बार बार कहा है—अपनेसे श्रेष्ठ और नामपरायण साधुका सङ्ग नहीं होनेपर विवश हो अकेले दुःसङ्ग वा नामापराध छोड़नेमें यत्नवान होकर वैधमार्ग से श्रीनाम करना होगा। साधुके मुखसे हरिकथा और हरिनाम माहात्म्य सुनते सुनते हरिनामका आदर करते करते श्रीनाम ग्रहण करना होगा।

साहाना सा:—ऐसा होनेसे उस प्रकारका हरि-नाम ग्रहण तो mechanical हो जायगा ?

आचार्यदेव—इससे हरिनाम स्फूर्त्तिके पक्षमें और भी सहायता मिलेगी। साधुकी श्रीमुखनि:सृत उपदेशवाणी हरिनाम कीर्त्तनका ही पोषक है। साधु के श्रीमुखवाणीका श्रवण और हरिनाम ग्रहणका

तात्पर्य भिन्न नहीं है । श्रीहरिनामप्रभुकी जो इन्द्रिय-तृप्ति करना है, वह हरिनामस्फूर्तिका ही पुष्टिकारक है । जिस प्रकार हरिनाम और हरि एक हैं, उसी प्रकार हरिकथा और हरिनाम अभिन्न हैं । हरिकथा ही हरि हैं,—हरिनाम ही हरि हैं । अतएव हरि-कथा ही हरिनाम हैं । जो हरिकथा कीर्तन करते हैं, वे हरिनाम ही करते हैं । हरिनाम ग्रहणके समय हरिकथा मननेसे चित्तका विक्षेप नहीं होता; क्योंकि वह एक ही तात्पर्यमय है । हरिकथा हरिनामकी अधिकतर स्फूर्ति कराती है । दोनोंके मध्यमें किसी प्रकार विजातीय भाव नहीं है । हरिकथा और हरिनाम, दोनों ही एक स्वरूप हैं ।

साहाना सा:—मेरे पितृदेव भव अर्चनाप्रिय और वेदान्ती थे । वे वैष्णव नहीं थे, वे निर्जनमें बैठकर लगातार कई घण्टे ध्यान करते थे । मैं जब बहुत छोटा (बालक) था, उसी समयसे वे मुझको निर्जनमें आंख मंदकर ध्यान करनेके लिये उपदेश देते थे । इसीलिये मैं बाल्यकालसे ही निर्जनमें ध्यानादिके द्वारा चित्त-निरोध करनेका पक्षपाती हूँ । इसके विपरीत विचार पर विश्वास कर नहीं सकता ।

आचार्यदेव—कार्य देखकर कारण निर्णीत होता है । आप बाल्यकालसे निर्जनमें ध्यानादिमें अभ्यस्त रहकर कितना आत्मोन्नति कर सके हैं ?

साहाना सा:—मैं तो इस विषयमें एकान्तिक नहीं हुआ । एकान्तिक होनेसे, समझमें आता है कि इस विषयमें उन्नति लाभ कर सकता था ।

आचार्यदेव—यह तो आपका अनुमान है । श्रीमद्भागवतने बहुत स्पष्टरूपसे दृढ़ताके साथ कहा है कि, चित्त सम्पूर्ण रूपसे शुद्धसत्त्व-भूमिमें उपस्थित न होने तक किसी आकार का ध्यान करनेसे, वह पौत्तलिकताके (पुतलीके से भावके) सिवाय और कुछ नहीं हो सकता । अधोक्षज परमेश्वरके सच्चिदानन्द आकारको तृतीयमानके किसी ध्यान वा धारणाके द्वारा मापा नहीं जा सकता । परमेश्वर वश्य जीव तत्वके कल्पनाके द्वारा नियमित नहीं होते यही उनका अधोक्षजत्व है ।

साहाना सा: तो क्या जो हरिनाम ग्रहण करेंगे, वे एक मात्र ओष्ठ स्पन्दनके करनेके सिवाय और कुछ नहीं करेंगे ? उस समय उनका मन कहां रहेगा ?

आचार्यदेव—श्रीहरिनाम ग्रहणकारी पहले ही श्रद्धायुक्त और शरणागत होंगे । पहले ही आत्म-निवेदन कर श्रवण कीर्त्तनमें रत होंगे । इस आत्म निवेदन वा शरणागतिके छः लक्षण हैं । उन्हीं छः लक्षणोंके द्वारा चित्तवृत्ति अभिषिक्त रहनेसे हरिनाम ग्रहण करनेके समय मन उसी नामका ही सेवानु-कूल्य करेगा । शरणागतका मन साधारण भोगी और त्यागी जीवके मनके समान भोग वा त्यागके सन्धानमें इधर उधर नहीं घूमता । जो शरणा-गतिके पथमें चले हैं दीक्षामन्त्रके द्वारा सर्वप्रथम ही उनलोगोंका मनोधर्म नियन्त्रित हुआ रहता है एवं हरिनाम ग्रहणके द्वारा कृष्णपादपद्ममें चित्त क्रमशः सम्पूर्णरूपसे तृष्णायुक्त हो जाता है । सुतरां हरिनाम ग्रहण करनेके समय उनलोगोंको पृथक्-रूपसे मनके अभिलषित वस्तुको देनेकी आवश्यकता नहीं होती । मन उस समय आपसे आप हरिना-मके औदार्य और माधुर्यसे आकृष्ट होता है । हरिनामके निकट कृपा प्राथना करते करते उसीसे आर्त्त और आकुल हो उठता है । वह आर्त्ति और आकुलता जितनी ही वृद्धि पाती है उतना ही चित्त हरिनाममें अधिकतर आकृष्ट होता है और जड़ मनोधर्म नहीं रहता है । श्रीनामप्रभुकी ओरसे जितनी

कृपा अवतीर्ण होती है, उतनी ही चेतनकी वृत्ति विकशित होकर सभी एकतात्पर्यपर हो जाता है। उस समय श्रवण कीर्त्तन और स्मरणमें जड़ भेद नहीं रहता। श्रीहरिनामकी सेवाके तात्पर्यमें सभी पर्यवसित (शेष) होकर उत्तरोत्तर उत्कण्ठाकी वृद्धि करते रहते हैं। इस उत्कण्ठा का विराम नहीं, यह क्रमशः वर्द्धमान रहता है।

मार्होना मा:—आपने जो शरणागतिके छः लक्षण बतलाये हैं वह क्या क्या हैं ?

आचार्यदेव—जो विषय श्रीहरिनामके नित्य तर्पणविधानमें सहायता करते हैं, उन सब अनुकूल विषयोंके ग्रहण करनेमें सुदृढ़ सङ्कल्प होना ही प्रथम लक्षण है।

मार्होना मा:—श्रीहरिनाम ग्रहण करनेके अनुकूल विषय क्या क्या हैं ?

आचार्यदेव—निष्कपट हरिनाम लेनेवाले साधुका प्रीतिपूर्वक सङ्ग ही हरिनाम ग्रहणके अनुकूल है। पहले ही आपको कहा है,—कर्णके द्वारा उसी साधुकी शुश्रूषा वा सङ्ग करना होगा। उस प्रकार नामपरायण साधुकी वाणी श्रवण करनेमें परम उत्साही होना होगा। इसीके द्वारा ही हमलोगोंका चरम मङ्गल होगा, इसका सुदृढ़ निश्चय कर लेना होगा। अनर्थकी प्रबलताके कारण हरिनामकी स्फूर्ति न होते देखकर श्रीहरिनामका पथ परित्यागकर किसी प्रकारका दूसरा आरोहमार्ग स्वीकार करतेहुए आशु फल पानेकी चेष्टामें न दौड़ कर विशेष धैर्य और सहिष्णुताके साथ गुरु वैष्णवके आनुगत्यमें हरिनाम ग्रहणकरनेमें धैर्य, साधुगणोंकी प्रदर्शित और कथित सेवाका अनुशीलन, असत्सङ्गत्याग और साधुगणोंकी सेवामयी वृत्तिका अनुसरण करना होगा। ये सब हरिनाम ग्रहणके अनुकूल हैं। यही आत्मनिवेदनका प्रथम लक्षण है।

मार्होना मा:—शरणागतिका दूसरा लक्षण क्या है ?

आचार्यदेव—जो विषय हरिनाम श्रवण कीर्त्तनमें प्रतिबन्धक रूपसे उपस्थित होते हैं वा उसका किसी रूपसे प्रातिकूल्य विधान करते हैं, उन सबोंको सर्वप्रकारसे वर्जन करनेके लिये दृढ़ सङ्कल्प होना चाहिये। 'आज प्रतिकूल विषय कुछ ग्रहण करें, कल वा भविष्यमें इसका परित्याग किया जायगा', इस प्रकारके विचारको प्रतिकूल वर्जनका सङ्कल्प नहीं कहा जाता। जिस समय प्रतिकूल विषय उपस्थित होगा वा हुआ है, उसी समय कुछ भी विलम्ब न कर दृढ़ताके साथ उसको वर्जन करना होगा।

मार्होना मा:—यदि उस प्रकारका सुदृढ़ सङ्कल्प हृदयमें नहीं आये, तब क्या करूँगा ?

आचार्यदेव—प्रकृत साधुलोगोंका सङ्ग करनेसे उस प्रकारका सुदृढ़ सङ्कल्प हृदयमें अवश्य आयेगा। श्रीनामके निकट और श्रीनामपरायण वैष्णवोंके निकट उसके लिये अकपट कृपा प्रार्थना करनी होगी, जिससे प्रतिकूल वर्जनकी दृढ़ता उपस्थित हो।

मार्होना मा:—शरणागतिका और लक्षण क्या है ?

आचार्यदेव—'कृष्ण ही हमारी रक्षा करेंगे' इस प्रकार सुदृढ़ विश्वास। जगतके कोई धन, ऐश्वर्य, लोकजन, विद्यावुद्धि वा अन्य किसी प्रकारकी वस्तु जीवकी रक्षा नहीं कर सकती। कृष्ण ही एकमात्र रक्षक हैं यह हृदयसे विश्वास—और कृष्णको ही एकमात्र पालनकर्त्ता समझकर वरण—शरणागतिकी चतुर्थ और सर्वश्रेष्ठ लक्षण है। कृष्णमें Unconditional full surrender अहैतुक पूर्ण आत्मनिक्षेप पञ्चम लक्षण—एवं 'कृष्णसेवा कर

नहीं सका'—इस प्रकार अधिकतर कृष्ण सेवाके लिये उत्कण्ठाजनित दैन्य और आर्त्ति अर्थात् अपनेको गुरु वैष्णवके पादपद्मका हेयतम (सबसे नीच) भूमीज्ञानरूप दैन्य ही—षष्ठ लक्षण है।

साहाना सा: भक्तगण जिस समय हरिकीर्त्तन करते हैं, उस समय तो जिह्वाका कार्य होता है, उस समय मन कहाँ जायगा? यदि मनमें किसी रूपादि की चिन्ता नहीं की जाय वा भगवानके रूपका ध्यान न करें तो मन क्या कभी स्थिर हो सकता है?

आचार्यदेव—आप वह एक ही बात पुनः पुनः कह रहे हैं? विषयको अच्छी तरहसे अवधारण कीजिये। श्रीनामग्रहणके आनुषङ्गिक फलस्वरूप चित्तदर्पण परिमार्जित होगा, संसाररूप महादावाग्नि निर्वापित होगी (बुझ जायगी); यह हरिनाम ग्रहणका आनुषङ्गिक फल है—This is the secondary effect of Harinam. The net result of Harinam is attainment of pure reinstatement in true unconditioned self and love of Sri Krishna.

चेतोदर्पणमार्जनं भव महादावाग्नि-निर्वापणम्
श्रेयः कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्ण संकीर्त्तनम्॥

(शिक्षाष्टक प्रथम श्लोक)।

श्रीकृष्णसङ्कीर्त्तन मलिनचित्त जीवके हृदय दर्पणको मार्जन करते हैं, संसाररूपी वनकी दावाग्निका निर्वापण करते हैं, जीवके परममङ्गलरूप कुमुदके शुभ्रत्वविकाशक कल्याण-किरण वितरण करते हैं, वे अप्राकृत विद्यावधूके जीवनस्वरूप और जीवके अप्राकृत-कृष्णसेवानन्दवर्द्धनकारी हैं। वे पद पदमें पूर्णामृतका आस्वादन कराते हैं एवं सर्वात्माके कृष्णप्रेमसलिलमें स्नान सम्पादन कराते हैं। उसी सर्वोत्कृष्ट श्रीकृष्ण कीर्त्तन की जय हो।

साहाना सा:—जिस समय हमलोग कृष्णनाम उच्चारण करें, उस समय यदि कृष्णका कोई रूप स्मरण हो, तो क्या उसको भी परित्याग करना होगा?

आचार्यदेव—आप अपने किसी कल्पनाके मार्गमें नहीं जायगे। आप केवल श्रीहरिनाम उच्चारण करेंगे, एवं अनुराग आर्त्ति और प्रपत्तिके साथ उनकी करुणा प्रार्थना करेंगे, और इसके बाद सब हरिनाम ही आपके लिये विधान करेंगे। हरिनाम—सर्वशक्तिमान हैं, वे स्वतःकर्त्तृत्वधर्मविशिष्ट और स्वराट् हैं।

साहाना सा:—हरिनामग्रहण करनेके समय क्या कृष्णके रूपकी कथा की बिलकुल ही चिन्ता नहीं करनी होगी?

आचार्यदेव—इस विषयमें हरिनामकीर्त्तनके लिये चेष्टाविशिष्ट अनर्थयुक्त व्यक्तिकी ओरसे किसी प्रकार की चेष्टा नहीं होगी। श्रीहरिनामही उसको स्फूर्त्ति करानेके साथ साथ अपना नित्यरूप प्रदर्शन करायेंगे।

साहाना सा: - हमलोगोंका क्या कोई पुरुषाकार (चेष्टा) नहीं रहेगा?

आचार्यदेव—साधन फलभोगकामी कर्मोंके पुरुषाकार जातीय नहीं है, वह कृत्रिमता वा कल्पना नहीं है। हमलोग अशुद्ध मलिनमनमें अधोक्षज पुरुषोत्तमके किसी रूप वा आकारकी कल्पना नहीं कर सकते। कल्पना एक प्रकारकी पुतली है। Harinam is not impotent—He is potent—He can show his Eternal Form अर्थात हरिनाम पुरुषत्वहीन वस्तु नहीं हैं; वे सम्पूर्ण

शक्तिशाली हैं वे अपने स्वतः कर्तृत्वधर्मके द्वारा ही अपना निज रूप स्वयं प्रदर्शन करेंगे। "शुद्धे चान्तः करणे रूपस्य स्फुरणम्"।

सार्होना सा:—हरिनाम करनेके समय चक्षु बन्द करना उचित है कि अनुचित ?

आचार्यदेव—हरिनाम-ग्रहणकारीकी ऐसी चेष्टा-का कोई प्रयोजन नहीं। सुनिये श्रीरूप गोस्वामी प्रभुने क्या कहा है :-

तुण्डे ताण्डविनी रतिं वितनुते तुण्डावलीलब्धये
कर्णक्रोडकडम्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहाम्।
चेतः प्राङ्गणसङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिं
नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णद्वयी॥

(विदग्धमा: १।१५)

'कृष्ण' यह दो वर्ण कितना अमृतके साथ उत्पन्न हुआ है, यह नहीं जानता:—देखो, जिस समय (नटीके समान) वह मुखमें नृत्य करता है, उस समय बहुत तुण्ड (मुख) पानेके लिये रति विस्तार (अर्थात आसक्ति वर्द्धन) करता है। जिस समय कर्णकुहर में प्रवेश करता है (अङ्कुरित होता है) उस समय अर्बुद (दश करोड़) कर्णके लिये स्पृहा जन्माता है, जिस समय चित्तप्राङ्गणमें (सङ्गिनीरूपसे) उदित होता है, उस समय समस्त इन्द्रियकी क्रियाको विजय करता है।

If any empiric or mechanic effort is shown or attempt made by you to conduct your senses which is not accepted by Harinam that effort may not reach its goal—no empiric (physical or mental) attempt should be mechanically made by a novitiate—अर्थात् यदि अपनी ओरसे इन्द्रियों के चलानेके लिये किसी प्रकारकी चेष्टाकी जाय, जो हरिनामके अनुमोदित नहीं है, उसके द्वारा आपका उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा। नवीन व्यक्तिकी ओरसे किसी प्रकारकी कृत्रिम आध्यात्मिक चेष्टा करना कर्त्तव्य नहीं है।

सार्होना सा:—मैं तो अन्य कोई उद्देश्यसे यह नहीं कर रहा हूँ। जिससे हरिनाममें मेरी एकाग्रता हो, उसीके लिये कर रहा हूँ।

आचार्यदेव—यह आपका अनुमान (Hypothesis) मात्र है चक्षु बन्द करनेके लिये अपने किसी प्राकृत इन्द्रियकी चेष्टा करनी नहीं होगी। सेवोन्मुख इन्द्रियमें स्वतः ही अवतीर्ण होंगे। स्मरण रखेंगे—कृष्णकी समस्त शक्ति उनके नाममें युक्त है। तो पर भी हरिनाममें रुचि नहीं हो रही है—विश्वास नहीं हो रहा है—शरणागति नहीं आ रही है—यही हमलोगोंका दुर्दैव, अनर्थ वा अपराध है। इसलिये श्रीगौरसुन्दर ने कहा है,—

नाम्नामकारि बहुधा निज सर्वशक्ति
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि
दुर्दैवमीदृश मिहाजनि नानुरागः॥

—शिक्षाष्टक २य श्लोक।

[हे भगवन, तुम्हारे नामही जीवका सर्वमङ्गल विधान करते हैं, इसलिये अपना 'कृष्ण' 'गोविन्दादि' बहुविध नाम तुमने विस्तार किया है। उस नाममें तुम्हारी सर्वशक्ति निज निहित है एवं उस नाम स्मरणमें कालादिका नियम (विधि वा विचार) नहीं किया। प्रभो, जीवके पक्षमें ऐसी अतुलनीय कृपा कर तुमने अपने नामको सुलभ किया है, तथापि मेरा नामापराधरूप दुर्दैव हमको इस प्रकार जकड़े हुए है, कि तुम्हारे ऐसे दयालु नाममें भी मेरा अनुराग नहीं हुआ।]

साद्दाना मा:—आंख बन्द करनेसे क्या हरिनाम की शक्तिको कुछ कम कहा जा रहा है या उनकी शक्तिके प्रति अविश्वास किया जा रहा है ?

आचार्यदेव—आप कोई ऐसा चेष्टा क्यों कीजियेगा जिसके विषयमें आप स्वयं निश्चित नहीं कि वह हरिनाम प्रभुके द्वारा गृहीत होगी कि नहीं। आपके पक्षसे जो प्राकृत मङ्गलकर है उस विधानके करनेकी परिपूर्ण शक्ति हरिनाममें है। आप क्यों पहले ही ऐसी कल्पना करते हैं कि, हरिनाममें वैसी शक्ति नहीं है।

साद्दाना मा:—तो क्या मैं सम्पूर्ण निश्चेष्ट (चेष्टा रहित) रहूँगा ?

आचार्यदेव—आप श्रीहरिनामप्रभुके इन्द्रिय-तर्पणके लिये निखिल चेष्टाविशिष्ट होंगे। जो हरिनामका अनुशीलन करते हैं, उन लोगोंके समान सर्वेन्द्रियद्वारा श्रीनामप्रभुकी सेवामें अखिल चेष्टा-विशिष्ट व्यक्ति और कोई नहीं है। वे जगतके प्राकृत फलभोगी वा फलत्यागी स्वसुखकामी सर्वश्रेष्ठ परि-श्रमीके भी कभी कभी विश्रामसुखवांछा शान्तिसुख लाभकी इच्छा से आलस्य प्रदर्शन वा निश्चेष्टता प्रदर्शनको धिक्कार, घृणा वा परित्यागकर सर्वदा चेतनकी वृत्तिमें प्रतिष्ठित हैं। आप हरिनाम श्रवण कीर्त्तन करते २ जिस समय हरिनाम प्रभुकी सेवा और कृपा प्रार्थना करते रहेंगे, उस समय देखेंगे आपका चित्त उनकी सेवा करनेके लिये किस प्रकार चेष्टाविशिष्ट हो उठा है! हरिनामप्रभुकी सेवाके लिये उस समय आप अत्यन्त चञ्चल हो उठेंगे। यह स्वभाव आपसे आप प्रकाशित होगा।

साद्दाना मा:—तो क्या हमलोग निर्जन स्थानका अनुसन्धान वा चक्षु बन्दकर हरिनाम करनेकी चेष्टा कुछ भी नहीं करेंगे ?

आचार्यदेव—आपके सामयिक भावसे वैसा करनेपर भी उस प्रणालीके द्वारा आपके हृदयमें शुद्ध हरिनामके प्रकाश पानेकी कोई सम्भावना नहीं। हरिनामकीर्त्तनधर्म स्वतन्त्र है। उसका प्रथम आनुषङ्गिक फलही मनका सम्पूर्ण नियमन (दमन)—चित्तदर्पण मार्जन है। यह प्रथम फल होनेपर भी मुख्य फल नहीं है।

साद्दाना मा:—किन्तु वही सबसे अधिक प्रयोजनीय है।

आचार्यदेव—आपके निकट। किन्तु आपको उसके लिये व्यग्र होना उचित नहीं है। आप केवल एकमात्र हरिनामका इन्द्रियतर्पण अनुसन्धान करेंगे। आपका मन नियन्त्रित करनेके लिये श्रीगुरुपादपद्मकी वाणी और हरिनाममें यथेष्ट शक्ति है। आपका धर्म यह है कि हरिनामका किस प्रकारसे इन्द्रिय तृप्ति विधान हो सकेगा उसके लिये सर्वदा चेष्टाविशिष्ट रहें।

साद्दाना मा:—चित्तका विक्षेप दूर नहीं होता ? किस प्रकार हरिनाम करूँगा और उनका सुखानु-सन्धान करूँगा।

आचार्यदेव—खूब उच्चस्वरसे हरिनाम करेंगे—आर्त्तनाद कर हरिनाम प्रभुको पुकारेंगे, ऐसा होनेसे चित्तविक्षेप क्रमशः सङ्कुचित होता रहेगा।

साद्दाना मा:—हां उच्चस्वरसे हरिनाम करनेसे चित्तविक्षेप नष्ट होता है। अच्छा, तुलसी माला-से—हरिनाम करनेमें सार्थकता क्या है ?

आचार्यदेव—तुलसी कृष्णके अतिशय प्रिय हैं, तुलसी—गुरुपादपद्म—Ever Benevolent Mediator—She shows and invokes mercy of Krishna for the Chanter, तुलसी परमहितकारिणी आवेदनकर्त्री हैं। वे स्वयं कृपा कर

कृष्णके निकट हरिनाम कीर्त्तनकारीके लिये आवेदन-कर कृष्णकी कृपा आकर्षण करेंगी। तुलसीके निरन्तर आनुगत्य और सङ्गमें कृष्णनाम करना होता है।

(४)

नामाचार्य श्रीयुत ठाकुर-हरिदास

भागवत की चौथी संख्या में ठाकुर हरिदास का गुण-गान करते हुए कहा गया है कि वे कालिय-नागके प्रति भगवानके दण्डदानके बहाने उनका महादया सूचक गीत सुनकर अपने प्रभु के करुणा-सूचक गीतसे मुग्ध होकर उद्दीपनके कारण प्रेमानन्दसे मूर्छित होगये तथा कुछ देरके बाद चेतनता प्राप्त कर आनंदके मारे नृत्य करने लगे। उन्हें कृष्ण प्रेमावेशमें अप्राकृत अश्रु-कम्पादि होने लगा। महाभागवत ठाकुर-हरिदासने क्यों हरिनाम संकीर्त्तन किया, उनका क्या अभिप्राय था यह कोई नहीं समझ सका। कारण, महाप्रभु श्रीगौरहरिने उस समय तक इस संसारमें कृष्णनाम-प्रेम भक्तिका प्रचार आरम्भ नहीं किया था। हरिकथा-कीर्त्तनके अभावसे लोग विष्णुभक्तिरहित हो गये थे, सुतरां वैष्णवोंके सर्वश्रेष्ठ पदवीको नहीं समझनेके कारण वैष्णवोंका उपहास करते थे। विषयी लोगोंको हरि-विस्मृति निरन्तर बनी रहती है, वे लोग किसी-न-किसी उपायसे हरिस्मरणरूपी भक्तिसे दूर रहकर अपने इन्द्रियोंकी प्रसन्नताके कामोंमें प्रमत्त रहते हैं। दुःसङ्ग छोड़कर भक्त लोगोंके एक साथ निर्जन में परस्पर कृष्णकीर्त्तन करनेसे दुष्टलोग क्रुद्ध होकर कहते कि उदरभरण तथा जीविकाके लिये ये सब उच्च स्वरसे कीर्त्तनकारी ब्राह्मणलोग हरिनाम कीर्त्तन करते हुए भावुक होगये हैं। धर्मानुष्ठानके बहाने अपने उदर पोषणके अतिरिक्त इनलोगोंका और कोई उद्देश्य नहीं है। इनलोगोंके ऐसे आचरणसे इस देशमें महा-दुर्भिक्ष होगा, सुतरां भिक्षा-वृत्तिको चलाकर ये संसारकी अत्यन्त बुराई करेंगे।

भगवद्भक्तोंके प्रति इस प्रकारका मिथ्या दोषा-रोपण करनेसे जीवों का कभी भी मङ्गल नहीं होता, बल्कि नरक जाना पड़ता है। भक्तलोग मुखसे कृष्णकीर्त्तन करते हुए भगवानकी सबसे श्रेष्ठ सेवा करते रहते हैं। वे लोग तमोगुणकेवश आलस्य करके साधारणलोगोंके उपार्जित धनको प्राप्त करनेके लिये लोभी होकर उसको ग्रहण वा भोग नहीं करते, परन्तु साधारणलोगोंके अपनी इन्द्रियों की प्रसन्नताके लिये दुर्बुद्धिसे सञ्चित किए हुए द्रव्यादिको हरि सेवाके कामोंमें लगाकर उन लोगोंके नित्य एवं परम मंगलका उपाय करते हैं।

इन सब कामोंमें आसक्त स्मार्त्त पाखण्डीलोग कहते थे कि चातुर्मास्यके समय भगवान विष्णु शयन करते हैं, अतएव श्रावण, भादों, आश्विन तथा कार्त्तिक—इन चारों महीनोंमें किसीको भी कृष्ण नाम लेना उचित नहीं है। इन महीनोंमें कृष्णकीर्त्तन करनेसे योगनिद्रामें निद्रित भगवानकी निद्रामें बाधा होनेके कारण वे अप्रसन्न हो जाते हैं। इस-लिये शास्त्रके आदेशको उलङ्घन करके यदि वैष्णव-लोग विष्णुके शयनके समय भी उच्चस्वरसे हरिनाम कीर्त्तन करेंगे, तो भगवान् अवश्य ही अत्यन्त क्रुद्ध होकर इस देशमें भारी दुर्भिक्षादि करा देंगे।

बहुतसे कर्मासक्तलोग निरपेक्षता दिखलाते हुए कहते हैं कि प्रति दिन भगवान्‌को उच्च स्वरसे बार-बार पुकारनेसे क्या फायदा। जीव जब अपने किये कर्म फलको भोगनेके लिये बाध्य है तथा ईश्वर भी

जब कर्मके अधीन हैं, तो ऐसी अवस्थामें जीव ईश्वरको पुकारकर केवल अपने पित्तको बढ़ाता है— आसक्त तथा भक्तोंके बीचमें रहनेवाले मीमांसक समाजके लोग इस तरहसे नाना प्रकारका प्रजल्प (बकवाद) तथा विचार किया करते थे। भक्तलोग इन सब बातोंको सुनकर अत्यन्त दुःखित होते थे, परन्तु हरिनाम-कीर्तनमें अचल निष्ठा रहनेके कारण वे हरिसंकीर्तन नहीं छोड़ते थे।

अन्याभिलाष (भगवद्भक्तिको छोड़कर अन्य किसी विषयकी अभिलाषा होना), कर्म, योग तथा ज्ञान प्रभृति चेष्टाके आवरणमें (परदे) आवृत्त रहकर भगवत् सेवाका अभिनय, या भगवत् प्रतिकूल आचरण भक्ति कहलाने योग्य नहीं है। किन्तु इसी प्रकारकी अभक्तिके विचारमें उस समय लोगोंकी प्रवृत्ति थी। देह तथा मनके धर्मने बद्ध जीवोंको भक्तिपथसे विमुख करके उनलोगोंसे विमलभक्तिकी महिमाको छिपा रखा था। ठाकुर हरिदास सांसारिक लोगोंको इस प्रकार अपने-अपने अमङ्गलोंके साधनमें प्रवृत्त देखकर हृदयमें अत्यन्त दुःखित होते थे और उच्चस्वरसे नाम सङ्कीर्त्तन करते रहते थे। परन्तु पापीलोग उसे सुन नहीं सकते थे। हरिनदी-ग्रामका एक दुर्जन नास्तिक ब्राह्मण ठाकुर-हरिदासको देखकर कहने लगा "अय हरिदास तुम्हारा ऐसा व्यवहार क्यों है, इतना चिल्लाकर नाम लेनेसे क्या फायदा है! मन-ही-मन जपनेसे ही तो धर्म होता है चिल्लाकर नाम लेनेको किस शास्त्रमें कहा गया है। इसके उत्तरमें ठाकुर-हरिदासने दीनतापूर्वक अपनेको मानरहित समझतेहुए और उस ब्राह्मणके प्रति आदर करते हुए कहा कि मैंने हरिनाम कीर्तनका अतुल माहात्म्य स्वयं शास्त्र पढ़कर अथवा तर्कसे नहीं प्राप्त किया। नामतत्त्ववित् शुद्धनामोच्चारणकारी लोगोंके मुखसे जो सुना है, वही तुमलोगोंको कहता हूं। मन-ही-मन श्रीनाम ग्रहण वा उच्चारण करनेसे जो फल प्राप्त होता है उच्चस्वरसे नाम कीर्त्तन करनेसे उससे सौगुणा अधिक फल होता है-यही सब शास्त्रोंका मत है। जोलोग महामन्त्र हरिनामको केवल 'जप' कहते हैं, वे शास्त्रमर्मको नहीं समझते हैं। 'हरे' 'कृष्ण' एवं 'राम'—यह सम्बोधनका तीनों पद 'जप्य' भी है और कीर्त्तनीय भी है। भगवान मन-ही-मन पुकारे जासकते हैं तथा उच्चस्वरसे भी पुकारे जासकते हैं। उच्चस्वरसे पुकारनेसे बहुतलोग भगवन्नाम श्रवण कर सकते हैं और उससे बहुतलोगोंका मङ्गल होता है। नाम-श्रवण नवधाभक्तिका एक प्रधान अंग है। साधुलोगोंके उच्चस्वरसे हरिकीर्त्तन नहीं करनेसे किसीको भी श्रवणाख्य भक्तिका अधिकार नहीं होता है। सुतरां उच्चकीर्त्तन-विरोधीलोगोंका असत् कुतर्क—कलि प्रणोदित मात्र है। ध्यान, यज्ञ तथा अर्चन द्वारा श्रीनाम कीर्त्तन अव्यक्तरूपसे होता है। इसीलिये कलिकालमें ध्यान, यज्ञ, तथा अर्चन विधिमें नानाप्रकारका विवाद उपस्थित होता है। कलिकालके सारे लोग जिस समय परमार्थी लोगोंके हरिभजनमें बाधा देनेके लिये अग्रसर होते हैं उस समय सत्ययुग त्रेता तथा द्वापरके अभिधेय क्रमशः ध्यान, यज्ञ तथा अर्चन करनेवाले सज्जनलोग उनलोगोंके साथ कुतर्कमें प्रवृत नहीं होते किन्तु कलिकालका अभिधेय हरिनाम संकीर्त्तन है इसीलिये वे हरिनामोच्चारणकारी सज्जनलोग कलिकालके वशीभूत लोगोंकी असत् प्रवृत्तिको दूर करके उनलोगोंके नित्यमङ्गलके लिये श्रीनामकी अनन्त महिमाको कीर्त्तन करते रहते हैं जिससे कुतार्किकलोगोंको कुतर्करोगग्रस्त चित्तवृत्तिका उपयुक्त औषध मिलता

है। तब उस विप्रने पूछा कि उच्चस्वरसे हरिनाम कीर्त्तन करना सौगुना अधिक लाभदायक है इसका क्या कारण है। इस प्रश्नके उत्तरमें ठाकुर-हरिदासने कहा कि वेद तथा श्रीमद्भागवतमें इस विषयमें जो कहा गया है उसे सुनिये। ऐसा कहकर ठाकुर-हरिदास जिनके मुखमें सर्वशास्त्रकी स्फूर्ति आपसे आप होती थी कृष्णानन्दमें मग्न होकर कहने लगे कि हे विप्र साधु, भक्त अथवा वैष्णवोंके मुखमें श्रीनाम श्रवण करनेसे शुश्रूषु जीवमात्रके (पशु, पक्षी कीटादिके) कर्णके छिद्रसे वह उच्चरित वैकुण्ठशब्द प्रवेश करके उस जीवको मायाबन्धनसे छुड़ा देता है। कारण, वैकुण्ठनाम जीवको भोग-बुद्धिसे विमुक्त करके उसमें वैकुण्ठ वस्तुकी सेवा-बुद्धि विकसित करते हैं। साधारण नाम उच्चारण करने के समय शब्द जड़ आकाशमें पैदा होता है अतः नाम लेने वालेकी भोग बुद्धि बनी रहती है किन्तु भक्तोंकी जिह्वामें जो शुद्ध नामका उच्चारण होता है वह वैकुण्ठ धामकी वस्तु होती है इसलिये उसमें भोग बुद्धिरूप किसी प्रकारका अज्ञान नहीं रहने पाता। वह वैकुण्ठनाम अद्वयज्ञान वाचक होता है। इन्हीं कारणोंसे इस नामके उच्चारण करने वाले जीवको कोई भोगात्मक बुद्धिका बन्धन होने नहीं पाता। सुतरां, वैकुण्ठ भगवन्नाम ग्रहण करनेसे जीव जीवनमुक्त हो जाता है।

बद्धजीवको अपने संसार-बन्धनसे मुक्त होनेके लिये मुक्तपुरुषके निकट मन्त्रदीक्षारूप अनुग्रह ग्रहण करना चाहिये। मन्त्रसिद्ध होनेसे उन्हें उच्चस्वरसे नामग्रहण करनेका अधिकार होता है। उस समय वे जगद्गुरुके रूपमें बद्धजीवोंको जो, शुद्ध कृष्ण नामसे भिन्न इस जड़ आकाशमें उत्पन्न चित्तको लुभाने वाले असत् शब्दों और प्रजल्पनाओं (बकवादों) के सुननेसे, अनर्थ दर्शन होता है उससे द्रवीभूत और दुःखी होकर उन्हें उनको इस जड़ानुभूतिसे विमुक्त करके शुद्धसत्व वैकुण्ठ राज्यमें जानेकी प्रेरणा करते हैं। साधारण मूढ़लोग समझते हैं कि केवल एक बार वैकुण्ठनाम लेने, श्रवण करने तथा कीर्त्तन करनेसे जो हमारे शास्त्रोंमें वैकुण्ठ गमन का कथन है वह केवल अर्थवाद है (अर्थात् कहने सुनने की बात है)। किन्तु वास्तवमें वैकुण्ठनामका अतीन्द्रिय प्रभाव ऐसे भ्रान्त और जड़विचारपरायण लोगोंके क्षुद्र मस्तिष्कके भीतर नहीं पहुँचता है। वैकुण्ठनामको मायिक शब्दोंके समान समझनेसे जीवोंकी भोगमयी कुप्रवृत्ति अप्राकृत तथा अधोक्षज (ज्ञानातीत) भगवानको जानने नहीं देती। पशु, पक्षी कीटादि जो बोल नहीं सकते वे वैकुण्ठ नाम सुनकर तर जाते हैं। जो वैकुण्ठनाम जप करते हैं वे केवल अपनाही मङ्गल करते हैं; और जो वैकुण्ठनाम उच्चस्वरसे सङ्कीर्त्तन करते हैं वे अपने मङ्गल के साथ २ श्रोतालोगोंका भी मंगल करते हैं। एकमात्र कृष्ण-कीर्त्तनकारी श्री सद्गुरुदेव ही जीव पर दया अथवा परोपकार करने में समर्थ हैं, और कोई नहीं। अतएव उच्चस्वरसे संकीर्त्तन करनेसे उसका सौगुण-अधिक फल होता है। यह बात युक्तिसंगत भी है कारण जपकर्त्ता केवल अपनेको ही पवित्र करते हैं, किन्तु उच्चस्वरसे हरिकीर्त्तन करने वाले व्यक्ति अपने को तथा श्रोतृवृन्दको भी पवित्र करते हैं। मूर्ख गुरुके समीप हरिनामके बदले और कोई शब्द सुनकर यदि कोई व्यक्ति भोगकी इच्छासे सकाम उपासना करता है, तो उससे उसे कभी नित्य मंगल प्राप्त नहीं होता। किन्तु महाभागवत मुक्त गुरुदेवके मुखसे सुना हुआ शुद्ध हरिनाम कीर्त्तन करने वालेको यदि हरिनामकी महिमा समझमें न आवे तो अन्य

श्रोतृ-वैष्णवगण उसे समझा देते हैं इसलिये भी जप करनेवालोंकी अपेक्षा उच्चस्वरसे नामकीर्त्तन करनेवालोंको अधिकही मंगल लाभ होता है। नामापराध नामाभास तथा शुद्ध श्रीनाम ग्रहण इन तीन प्रकारके विचारकी उपलब्धि जिसको नहीं हुई रहती है वह व्यक्ति बहुत दिनों तक दश अपराधों में से एकनिष्ठ नामाश्रित साधु वा वैष्णव की निन्दाका अपराध करता ही रहता है। वह पुनः गुरुअवज्ञारूप भीषण अपराध तथा गुरुको मर्त्यजीव समझकर उनकी निन्दा का अपराध भी किया करता है। प्राकृत-वस्तुमें देवज्ञान करके वैसेही देवताओं को सर्वेश्वर विष्णुके समान समझनेका अपराधभी उसे होता है जिससे वह एकान्तिक वैष्णवोंके प्रति श्रद्धाहीन होकर वैष्णवापराधी होजाता है। उससे श्रीनामप्रभुकी सेवामें अनवधान (मनोयोग शून्यता) होनेका एवं नाम-महिमामें अर्थवाद समझनेका अपराध होजाता है। अन्य शुभक्रियाके साथ नाम-ग्रहणको बराबर समझना है एवं नामके भरोसे पापमें प्रवृत्त होकर पापासक्त होजाता है। वह लोभवश गुरुका आसन ग्रहण करके अर्थात (अर्थात गुरु बनकर) अश्रद्धालु व्यक्तियोंको सौदा बेचने की नाई नामउपदेश करनेका छल करके संसार का अमङ्गल करता है। 'मैं' 'मेरा' भावसे प्रमत्त होकर क्रमशः वेदशास्त्र तथा वेदानुग ब्राह्मणोंका विरोधी हो जाता है। इस प्रकार दशप्रकारके अपराध जपकरनेवालेके अधःपतनका कारण होते हैं, किन्तु श्रीनाम-कीर्त्तन करने वाले व्यक्ति सतसंगतिके प्रभावसे इन सब अपराधोंकी जानकारीके कारण निर्जन-भजनकी असुविधासे छुटकारा पाते हैं।

मनुष्यको छोड़कर और और प्राणियोंको भी जिह्वा रहती है जिसके द्वारा वह नाना-प्रकारकी ध्वनि उच्चारण करते हैं, परन्तु मनुष्यके अतिरिक्त कोई दूसरा प्राणी कृष्णनाम उच्चारण नहीं कर सकता है। कुछ लोग कह सकते हैं कि पक्षी भी तो कृष्ण-नामके सदृश शब्द अनुकरण (उच्चारण) करता है तो क्या उससे वह भी मुक्ति प्राप्त कर सकता है? इसका उत्तर यह है कि 'अनुकरण' तथा 'अनुसरण' बिलकुल पृथक् बात है। अनुकरणकारीके कृष्ण-नामके सदृश जड़ाकाशमें इन्द्रियोंको प्रसन्न करने-वाले शब्दोंके उच्चारण करनेपर भी उसकी सेवोन्मुख जिह्वा पर चिदिन्द्रियग्राह्य चिदाकाशविराजित कृष्णनाम उच्चारित नहीं होता है। शुद्धसत्त्व कृष्ण नामके अतिरिक्तविषय-भोगकी इच्छासे वा सकाम-भावसे उच्चारित नाम-प्रतिम शब्द, 'वैकुण्ठ-नाम' नहीं है। वह तो तुच्छफल देनेमें समर्थ होने के कारण नामापराध कहा जाता है, परन्तु वह शुद्धनामके फल कृष्णप्रेमका उदय नहीं करा सकता। जीवमात्र वैकुण्ठनाम ग्रहण नहीं कर सकनेपर भी कर्ण द्वारसे वैकुण्ठ नाम श्रवण कर सकते हैं। वैकुण्ठनाम श्रवण करनेकी जिसको योग्यता नहीं हुई, उसका जीवन सचमुच ही वृथा है। जिस वैकुण्ठनाम-कीर्त्तनके श्रवण का अधिकार प्राप्त कर उसके प्रभावसे प्राणी जीवनमुक्त हो सकता है, वह उच्च हरिनाम कीर्त्तन कभी भी दोष वा तर्कद्वारा समालोचना का विषय नहीं हो सकता।

कोई स्वार्थवश अपने पोषण पालनमें लगा रहता है और कोई अपने पोषण पालनके साथ साथ अन्य हजारों व्यक्तियोंका भी पोषण करता है,—इन दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है यह स्वीकार करना होगा। इतना तो विचार करनेसे समझमें आ जाता है कि उच्च-कीर्त्तनकारी निःस्वार्थी तथा परोप-

कारी होते हैं। अतएव केवल नाप-जपकी अपेक्षा उच्चनामसङ्कीर्त्तन हजारों गुणा श्रेष्ठ है।

ठाकुर हरिदासके उपदेशको सुनकर वह पाखण्डी विप्राधम क्रोधवश व्यंग वचन कहने लगा,—भारत-वर्षमें छः प्रधान दर्शनशास्त्र प्रसिद्ध हैं। ये सब शास्त्र न्यूनाधिक वेदानुगत हैं। अब हरिदासका विचार षड्दर्शनके बदले 'सप्तम दर्शन' नामसे विख्यात होगा। यह कलिकाल है, सुतरां वैदिक पथ कालके प्रभावसे हरिदासके सदृश श्रौतपन्थी शुद्ध वैष्णव लोगोंके द्वारा ध्वंस होनेके लिये चला! कपिल तथा पतञ्जलि, कणाद तथा अक्षपाद, जैमिनी एवं व्यास—यही लोग अबतक षड्दर्शनके मालिक थे। इस समय हरिदास उपस्थित होकर सप्तम-दर्शनके मालिक हो गये! समय समयपर कितने प्रकारके विचार उपस्थित होते हैं।

इस प्रकार वह अभक्त और शौक्राभिमानी विप्र (जातिकुलका अभिमान करने वाला) गुरु वैष्णवके प्रति सामान्य जाति बुद्धि आरोप करके महापराध-वश नरकका भागी हुआ और हरिदाससे कहने लगा कि यदि तुम्हारी कही हुई नाम-महिमा पूर्ण-रूपसे शास्त्रोक्त न हो तो मैं सबके सामने तुम्हारा नाक कान काट लूंगा।

क्रमशः।

"आदौ श्रद्धा"

श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा और श्रीरूपगोस्वामी प्रभुकी वाणीमें "आदौ श्रद्धा" का उपदेश पाया जाता है। प्रेमभक्ति प्राप्त करनेके क्रमनिर्णयमें भक्तिसाम्राज्यके मूल महात्मा श्रीरूपने "आदौ श्रद्धा" अर्थात् सबसे पहले 'श्रद्धाकी' कथा का उल्लेख किया है। 'श्रद्धा' ही प्रेम भक्तिकी प्रथम कथा है। 'श्रद्धाके' बिना भक्तिमें अधिकार नहीं होता। 'श्रीसनातनशिक्षामें' श्रीमन्महाप्रभुने दूसरे शब्दोंमें यों कहा है, कि

"श्रद्धावान जन हय भक्ति-अधिकारी।"

—चै: च: म २२।६४

एकमात्र श्रद्धावान व्यक्ति ही भक्तिके अधिकारी हैं। जबतक श्रद्धा नहीं होती, तबतक जीवका अभक्तिमें अर्थात् अन्याभिलाप कर्म, ज्ञान, योगा-दिमें वा आध्यात्मिकतामें ही स्वाभाविक अधिकार रहता है। गीतामें भी श्रीभगवानजीने अर्जुनसे कहा है,—

"श्रद्धावान लभते ज्ञानम्"

(गीता ४।३९)

अर्थात् श्रद्धावान व्यक्ति ही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। अश्रद्धालुका विनाश अवश्यम्भावी है—

"अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।"

(गीता ४।४०)

अज्ञ, अश्रद्दधान और संशयात्मा पुरुष नाश को प्राप्त होते हैं अर्थात् वह कभी भी आत्ममङ्गल प्राप्त नहीं कर सकते।

श्रीसनातनशिक्षामें श्रील कविराज गोस्वामी प्रभु कहते हैं,—

कोन भाग्ये कोन जीवेर 'श्रद्धा' यदि हय।
तबे सेइ जीव 'साधुसङ्ग' करय॥

चै: च: म २२।४५

किसी विशेष भक्तोन्मुखी सुकृतिके फलस्वरूप जीवके हृदयमें श्रद्धादेवी का आविर्भाव होता है। श्रील कविराज गोस्वामी प्रभुने 'भाग्य' शब्दके पहले

एक 'कोन' (कोई) और 'जीवेर' शब्दके पहले पुनः 'कोन' (कोई) शब्दका प्रयोग कर भाग्य वा सुकृति एवं सुकृतिसम्पन्न जीव सुदुर्लभ हैं—यही बतलाया है। इससे कोई भाग्यवश इनेगिने (बहुत-कम) जीवके हृदयमें श्रद्धा उदय होती है एवं श्रद्धाके उदय होनेहीसे कृष्णभक्तिकी जड़ साधुसङ्गके प्रति जीवकी रुचि होती है। इससे यही सिद्ध होता है कि श्रद्धाका अभाव रहनेसे सच्चे महापुरुषोंको सामने पाकर भी या बहुत साधुके पास रहते हुए भी हमें साधुका सङ्ग नहीं मिलता।

क्या गीता, क्या भागवत, क्या उपनिषदादि-शास्त्र सर्वत्र ही कहा गया है कि अश्रद्धालु को शास्त्र उपदेश नहीं करना चाहिये। शास्त्र और साधुओंने एकस्वरसे अश्रद्धालु का 'प्रवेश निषेध' किया है। अश्रद्धानको नामोपदेश करनेसे 'नामापराध' होता है। श्रीगीतामें भगवान "सर्व्व-धर्म्मान परित्यज्य" श्लोकके बाद ही कहते हैं कि अभक्त और अश्रद्धानको कभी भी गीताशास्त्र श्रवण नहीं कराना। श्रद्धावान और विद्वेषशून्य व्यक्ति ही गीता श्रवणकर मङ्गल प्राप्त कर सकते हैं।

श्रद्धाके तारतम्यानुसार ही भक्तके बड़प्पनका तारतम्य समझा जाता है। जो शास्त्रके वचनोंमें निपुण हैं और दृढ़श्रद्धा रखते हैं, वे ही संसारके उद्धार करनेवाले उत्तम अधिकारी हैं; जो दृढ़ शास्त्र-युक्ति नहीं जानते, किन्तु श्रद्धावान हैं, वे मध्यमाधि-कारी हैं; और जिनकी श्रद्धा अत्यन्त कोमल है, वे कनिष्ठाधिकारी हैं। कोमलश्रद्ध व्यक्ति जब दृढ़श्रद्ध होता है तब उसे उत्तमाधिकार प्राप्त होता है। अतएव प्रौढ़, मध्यम और कनिष्ठ-भेदसे श्रद्धा जैसे तीन प्रकारकी है, वैसे ही भक्त भी तीन प्रकारके हैं।

श्रीचैतन्यचरितामृतमें श्रीमन्महाप्रभुका जो वाक्य मिलता है, उसमें 'श्रद्धा' शब्दका ऐसा अर्थ है—

'श्रद्धा'—शब्दे विश्वास कहे सुदृढ़ निश्चय।
कृष्णे भक्ति कैले सर्व्व कर्म्म कृत हय॥
—चै. चा. म २२।६२

कृष्ण-भक्ति करनेसे सभी कर्म सम्पादित हो जाते हैं (किसी कामका करना बाकी नहीं रहता)—ऐसा सुदृढ़ निश्चयात्मक हार्दिक विश्वास पूर्वोक्त प्रायः सैकड़े एक मनुष्यमें भी नहीं है। जिनका ऐसा विश्वास है वे ही भाग्यवान हैं। प्रतिदिन प्रसाद-सम्मान करनेके समय जो 'साधु सावधान' की ध्वनि महात्मा लोग हमलोगोंके कानोंमें प्रवेश कराते हैं, उससे भी यही बात साबित होती है—

"महाप्रसादे गोविन्दे नामब्रह्मणि वैष्णवे।
स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते॥"

जो अति अल्प-पुण्यवान हैं अर्थात् जिनलोगोंकी भक्त्युन्मुखी सुकृति नहीं है, उनलोगोंको महाप्रसादमें, श्रीविग्रहमें, नामब्रह्ममें और वैष्णवमें विश्वास नहीं होता।

यह श्लोक भक्तिविज्ञानकी कसौटीके सदृश है। आध्यक्षिक (इन्द्रियों से ज्ञान प्राप्त करनेवाला व्यक्ति) महाप्रसादको दाल-भातके सिवाय और कुछ नहीं समझ सकता। इसका कारण यह है कि वह पञ्च ज्ञानेन्द्रियों को ही ज्ञानका साधन समझता है। अर्चावतार, नामब्रह्म और वैष्णव-सम्बन्धमें भी वह यही देखता और समझता है। गुरु और वैष्णवमें मर्त्यबुद्धि और असूया करना बद्ध जीवका स्वाभाविक धर्म समझकर ही श्रीमद्भागवतमें स्वयं भगवानको कहना पड़ा है—

आचार्यं मां विजानीयात् नावमन्येत कर्हिचित्।

न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥

आम्नायसूत्रमें श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने कहा है—"अन्योपायवर्जं भक्त्युन्मुखी चित्तवृत्तिविशेषः। ज्ञान और कर्म प्रयोजन-सिद्धिका उत्तम उपाय नहीं है, भक्ति ही एकमात्र शुद्ध उपाय है; शास्त्र-विश्वासके सहित अनन्यभक्तिके प्रति जो इस प्रकारकी चित्तवृत्ति है, उसका ही नाम श्रद्धा है।"

'तत्त्ववित पण्डित श्रद्धा और शरणापत्तिको एक कहते हैं (एक ही समझते हैं)। भक्तिसन्दर्भमें,—

कर्म-परित्याग-हेतुत्वेनाभिधानाच्छ्रद्धाशरणापत्त्योरैकार्थ्यं लभ्यते। तथाप्युक्तं। श्रद्धा हि शास्त्रार्थविश्वासः। शास्त्रञ्च तदशरणस्य भयं तच्छरणस्याभयं वदति। अतो जातायां श्रद्धायामस्तत् शरणापत्तिरेव लिङ्गमिति।

'तावत् कर्म्माणि कुर्वीत' इत्यादि भगवद्वाक्यमें श्रद्धाको ही कर्म त्यागका हेतु बतलाकर निर्दिष्ट किया है इससे श्रद्धा और शरणापत्तिको एकार्थ-सूचक प्रमाणित किया गया है। शास्त्रार्थ-विश्वास का नाम श्रद्धा है। शास्त्रार्थ यह है कि श्रीकृष्णके शरणागत नहीं होनेसे जीवको भय है, शरणागत होनेसे फिर भय नहीं रहता। अतएव श्रद्धा उत्पन्न होनेके साथ ही शरणापत्ति-उत्पन्न होती है और उसीसे श्रद्धाका बोध होता है। सब शास्त्रों-पर विचार करनेपर ही यह सारा सिद्धान्त प्राप्त होता है। सब शास्त्रोंके सिद्धान्तकेरूपमें श्रीभगवद्-गीता का यह श्लोक कहा गया है,—

सर्वधर्म्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

हे अर्जुन तुम कर्म, ज्ञान, योग प्रभृति शास्त्रोक्त सभी धर्मोको त्याग कर मेरी शरणमें आओ तो मै तुम्हारा सभी प्रकारके पापोंसे उद्धार करूँगा, शोच मत करो।

'श्रीकृष्णचरणमें शरणापत्तिके बिना और किसी उपायसे मेरा मङ्गल नहीं। अतएव मैं उसी अभय पदमें शरणापन्न हुआ'—इस दृढ़ विश्वासका नाम श्रद्धा, शरणापत्ति वा प्रपत्ति है। (सज्जनतोषणी ४र्थ खण्ड, ९म संख्या 'श्रद्धा और शरणागति'।)

श्रद्धाके आविर्भावके साथ ही साथ शरणापत्ति वा प्रपत्तिका उदय होगा। जो श्रद्धालु होनेका अभिनयकरने वाले हैं किन्तु श्रद्धास्पद व्यक्तिमें शरणागत नहीं है, उनलोगोंका श्रद्धाका अभिनय केवल धोखा है।

बहुत लोग कहते हैं, कि जबरदस्ती श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती वा जबरदस्ती कोई किसीको श्रद्धालु नहीं बना सकता। बहिर्मुख व्यक्तियोंके अनर्थरोग-की प्रबलताके कारण यदि हरि-गुरु-वैष्णवमें श्रद्धाका उदय न हो तो उससे यह नहीं प्रमाणित होता कि प्रकृत हरि-गुरु-वैष्णव संसारमें नहीं हैं। पृथ्वीके अधिकांश लोगोंको ही महाप्रसाद, गोविन्द, नामब्रह्म और वैष्णवमें श्रद्धाका उदय नहीं होता यह कहकर इन वस्तुओंकी वास्तवता वा गुरुत्वसे इनकार नहीं किया जा सकता। विष्ठाभोजी कुत्तेसे यदि श्रीतुलसीदेवी बलपूर्वक श्रद्धा अदा नहीं करा सकतीं तो इसलिये तुलसी कृष्णप्रिया वैष्णवी नहीं हैं वा अप्राकृत वस्तु नहीं हैं, यह विचार सत्य नहीं है। इन्द्रियविमूढ़से अर्चावतार बलपूर्वक श्रद्धा नहीं करा सकते इसलिये श्रीविग्रह अप्राकृत वस्तु नहीं हैं, ऐसी बात नहीं—'याहारे देखिले मुखे आइसे कृष्णनाम। ताहाँके जानिओ तुमि वैष्णव प्रधान।' इस उक्तिके अनुसार यदि कोई वैष्णव-विद्वेषी पाखण्डीसे प्रकृत महाभागवत श्रद्धा नहीं करा सकते, तो क्या उस महाभागवतका वैष्णवत्व अस्वीकृत

होगा? महाप्रभुके समुद्रमें से उठानेके कारण मछुएके देहमें भी सात्त्विकविकार प्रकाशित और उसके मुखसे हरिनाम उच्चारित हुआ था, यहां तक कि विधर्म्मी यवनके मुखमें भी महाप्रभुके दर्शनमात्रसे ही कृष्णनाम उच्चारित हुआ था किन्तु रामचन्द्रपुरी वा पाखण्डी पाठकोंको वैसा नहीं हुआ इसलिये क्या केवल इसी बुनियादपर महाप्रभुका महाप्रभुत्व अस्वीकृत किया जा सकता है?

अप्राकृत वस्तुके प्रति श्रद्धाके अभावके कारण वस्तु-दर्शन ही नहीं होता। श्रद्धा नहीं रहनेसे साधुसङ्ग नहीं होता; श्रद्धा नहीं रहनेसे साधुका परममङ्गलकर उपदेशामृत भी विष मालूम पड़ता है। उनकी वाणीको नानाप्रकारकी समालोचनाके शृङ्खलमें आवद्ध करनेकी चेष्टा होती है। जिसके प्रति हमलोगोंकी श्रद्धा नहीं रहती, वह यदि संसारके परममंगल का कार्य भी करे तो वह कार्य हमें बड़ा अहितकर मालूम पड़ता है।

क्रमशः।

विविध-संवाद

पटना

भागवत सम्पादक पण्डित श्रीपाद रूपविलास ब्रह्मचारी, भक्तिशास्त्री, बी० ए० दिल्ली, इलाहाबाद, लखनऊ प्रभृति स्थानोंमें शुद्ध भक्तिका प्रचार करते हुए पटना पहुंचे। यहां पर उन्होंने मठवासी तथा श्रद्धावान भक्तोंके निकट निरन्तर हरिकीर्त्तन करके प्रत्येक व्यक्तिको हृदय-मन-वचन द्वारा हरिभजन करनेके लिये उत्साहित किया। उन्होंने यह भी बतलाया कि असत्संगमें रहकर हरिभजन नहीं होता। सद्गुरुके आनुगत्यमें रहकर ही हरिभजन करना चाहिये।

यहां पर पहली जुलाई शनिवारसे श्रीमठके सेवक लोगोंने चातुर्म्मास्य-व्रत आरम्भ किया है।

दिल्ली

श्रीविश्ववैष्णवराजसभाके श्रेष्ठ प्रचारक पण्डित श्रीपाद अप्रमेय दासाधिकारी भक्तिशास्त्री महोदयजीने श्रीगौड़ीयमठ न्यू दिल्लीमें अवस्थान करके शहरके विभिन्न स्थानोंमें श्रद्धालु सज्जनोंके समीप श्रीचैतन्यदेव तथा श्रीगौड़ीयमठके प्रचार विषयको कीर्त्तन किया। उनकी हरिकथासे आकृष्ट होकर दिल्लीके विख्यात धनी तथा बैंकर लाला श्रीयुत मङ्गतराम महोदय प्रतिदिन दो घन्टेतक अत्यन्त आग्रहकेसाथ शुद्धभक्तिकी कथा श्रवण करते थे।

सीतापुर

श्रीगौड़ीय मिशनके प्रचारक पण्डित श्रीपाद सुदर्शन ब्रह्मचारी, भक्तिशास्त्रीजीने कई ब्रह्मचारियोंके साथ यहांपर पधारकर शुद्धभक्तिकी कथा श्रद्धान्वित-लोगोंके समीप घरघर घूमकर कीर्त्तन की। शहरके स्वनामधन्य दानवीर सेठ जयनारायणजीने प्रचार मंडलीको सभी प्रकारसे सहायता करके अत्यन्त सुकीर्ति अर्जन की।

काशी

श्रीयुत श्रीनिवास राव, एम-ए, डी-लिट् महाशयने काशी श्रीसनातन गौड़ीयमठमें आकर हरिकथा श्रवण की।

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है। प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है। हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रावलीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थनैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व सामाजिक अवस्था, [illegible] अवस्था, समसामयिक पुरुषोंकी अवस्था, तत्कालीन इतिहासका परिचय व तथ्य और प्रामाणिक [illegible] किया गया है। ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं। [illegible] व विद्यार्थियों आदि सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा। भिक्षा १)। प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकत्ता। श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वारी, ढाका।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवनके मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है। निर्मत्सर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे। वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें एण्टिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें। विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं। भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणोंकी गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुमण्डित होकर प्रकाशित हुई है। श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा ।।) आना।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित। भिक्षा ।।।) मात्र। प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ।

अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ। बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण। पहले प्रति अध्यायके प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्यविरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपादका सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है। इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्रभी संयोजित हुआ है। भिक्षा २) मात्र।

Printed by :—Mukunda Madhab Das Brahmachari, at the Ramesh Printing Works and published by the same from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

वर्ष ५] श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः Regd No. P. 468. संख्या ६]

भागवत

एकमात्र

पारमार्थिक

मासिक पत्र

५ श्रीधर
गौराब्द
४५३

श्रावण कृष्ण ५
संवत
१९९६ वि०

प्रति संख्या =)॥

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

वार्षिक १)

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि-लक्षणा फलाभिसन्धान-रहिता ऐकान्तिकी
स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है—
उसी भक्तिके बलसे अनर्थ शमन होनेपर आत्मा प्रसन्नता लाभ करता है।

सम्पादक—उपदेशक पं० श्री रूपविलास ब्रह्मचारी भक्ति शास्त्री बी० ए०।

Editor :—Upadeshak Pandit Sree Rupvilas Brahmachari,
Bhaktishastri B. A.

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

विषय सूची

भक्तिके अन्यान्य पत्र

१ The Harmonist—प्रभुपाद श्रील अनन्त वासुदेव परविद्याभूषण गोस्वामी महाराज सम्पादित अंग्रेजी पाक्षिक पत्रिका। प्रति एकादशीको कलकत्ता बागबाजार श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित होती है। भिक्षा ४॥ डाक महसूल समेत।

२ गौड़ीय—महामहोपदेशक पण्डित श्रीपाद सुन्दरानन्द विद्याविनोद बी० ए० द्वारा सम्पादित बंगला साप्ताहिक और कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित। वार्षिक भिक्षा २) डाकखर्च समेत।

३ दैनिक नदीया-प्रकाश (बंगभाषामें प्रकाशित)-भारतमें सर्वत्र प्रचारित—नदीया जिलेकी एकमात्र पारमार्थिक दैनिक पत्रिका है। श्रीधाम-मायापुर श्रीचैतन्यमठसे नित्य प्रकाशित होती है। वार्षिक भिक्षा डाक व्यय समेत ६) मात्र।

४ परमार्थी—श्रीयुक्त रघुनाथ महापात्र द्वारा सम्पादित उत्कल पाक्षिक। कटक श्रीसच्चिदानन्द मठसे प्रकाशित। वार्षिक भिक्षा १॥ मात्र डाक व्यय समेत।

५ श्रीगौड़ीय—महामहोपदेशक पण्डित श्रीपाद सुन्दरानन्द विद्याविनोद बी० ए० द्वारा सम्पादित बंगला पाक्षिक। कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित। वार्षिक भिक्षा १॥-) मात्र डाक व्ययके साथ।

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

भागवत

श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना)

वर्ष ५ — श्रावण कृष्ण ४, ४५३ स० १९९६ वि०, ६ जुलाई सन १९३९ ई० — संख्या ६

प्रवृत्ति तथा निवृत्ति

(ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

जिस समयसे मनुष्य जातिकी सृष्टि हुई है, उसी समयसे प्रवृत्ति तथा निवृत्ति सम्बन्धी विचार उपस्थित हुए हैं। सभी समय तथा सभी देशोंमें इन दोनों विषयोंकी आलोचना होती रहती है। जितने प्रकारके लिखे शास्त्र इस देश तथा विदेशमें देखनेमें आते हैं, वे सभी प्रवृत्ति तथा निवृत्तिकी समालोचनासे परिपूर्ण हैं। आर्य जातिके वैदिक शास्त्र, मुसलमानोंके कुरान, खृष्टोंके बाइबिल तथा बौद्ध समाजके वेद-विरुद्ध व्याख्यान इसके प्रमाण हैं। प्रवृत्ति तथा निवृत्ति विषय मानव-जातिका एक प्रधान तत्व है, यह पहले कही गई विशाल आलोचनाके दृष्टान्तसे साबित होता है।' जब सभी समय तथा सभी देशोंमें किसी एक विषयकी आलोचना और पूर्ण विचार किया जाता है, तब वह विषय सत्य सम्बन्धी है, इसमें क्या सन्देह हो सकता है? मृत्यु होनेपर फिर कोई व्यक्ति लौटकर नहीं आता, अतएव जीवके शरीर वियोगके द्वारा अस्तित्वका अभाव नहीं होता ऐसे विश्वासका आधार क्या है? जनसाधारणमें इस विश्वासकी व्याप्ति ही इसका प्रमाण है। उत्तरी ध्रुवका रहनेवाला कोई व्यक्ति इस विषयमें दक्षिणी ध्रुवके रहनेवाले किसी व्यक्तिसे मतभेद नहीं प्रकाश करता। बल्कि आत्माका अमरत्व सभी देशोंमें तथा सभी कालोंमें स्वीकार किया गया है। यद्यपि बहुतसे अभागे कुतर्क करके असत् आलोचनाके कारण स्वतःसिद्ध आत्माकी अमरताके विश्वासको छोड़कर

स्वेच्छाचारी हो जाते हैं, तोभी इनलोगोंकी संख्या इतनी कम है कि उनके द्वारा संसारके साधारण विश्वासमें कुछ व्याघात नहीं हो सकता। आर्यदेशमें चार्वाक प्रभृति एवं दूसरे-दूसरे देशोंमें सारडने-पामसादि बहुतसे नास्तिकवादी पाखण्डी उत्पन्न हुए हैं, तोभी आत्माकी अमरताके प्रति जो स्वाभाविक विश्वास होता है उसका नाश नहीं हुआ।

परमेश्वरके अस्तित्वमें दृढ़ विश्वास एवं जीवके अनश्वर होनेमें निश्चयता प्रभृति जो सब साधारणतः स्वतःसिद्ध विषय हैं, उनमें प्रवृत्ति-निवृत्ति विषयक तत्वभी प्रधान विषय है। बहुत दिनोंसे इस विषयके विचार लिपिबद्ध होकर परम्परासे हमलोगोंको प्राप्त हुए हैं। सारा वेदभी कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड इन दो भागोंमें विभक्त हो गया है। इन विषयोंकी आलोचना नीचेको जायगी। इस समय विचारनीय विषयकी आलोचना, जो विशेषरूपसे यहां आवश्यक है, की जायगी।

हजार वर्षभी नहीं बीते कि आर्यविरोधी लोगोंने हमलोगोंकी आर्यभूमिको हस्तगत किया था। उनलोगोंकी भाषा, स्वभाव, चरित्र तथा धर्म इस देशके लिये अत्यन्त विरुद्ध होनेके कारण हमलोगोंके पूर्व-पुरुष अत्यन्त क्लेशमें पड़ गये थे। उनलोगोंके स्वभावतः तथा धर्मतः निष्ठुर होनेके कारण इस देशकी सभी संस्कृतियोंका ह्रास होने लगा। जिस देशमें आदि कवि वाल्मीकि तथा ज्ञानी श्रेष्ठ वेदव्यासने सरल संस्कृतके भिन्न २ सुन्दर छन्दोंमें अनेक श्रेष्ठ ग्रन्थोंकी रचनाकर मनुष्योंका सांसारिक तथा पारमार्थिक मंगल किया था, जिस देशमें हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर इत्यादि धार्मिक राजा प्रजाके हितके लिये अपना अपना शरीर तथा इन्द्रियबल लगा कर बूढ़े हुए, जिस देशमें सावित्री, अरुन्धती, वृन्दा प्रभृति महिलाएँ सतित्वालङ्कारसे विभूषित होकर ऐतिहासिक यशाकाशमें नक्षत्ररूपसे शोभित हुई थीं, वही भुवनविजयिनी भारतभूमि.... खड्गधारी व्यक्तियोंके हाथसे कितनी दुर्दशाको प्राप्त हुई यह वर्णन करने योग्य नहीं है। वेदशास्त्र लुप्त हो गये, ज्ञान गुप्त हो गया, और आर्य-चेतनता शीतकालके सर्पके सदृश निद्रितसी हो गयी। ब्राह्मणोंका तर्क मुर्दोंसे पुस्तकोंके भीतर स्थान बनाकर तटस्थरूपसे रहा। क्षत्रियोंके शौर्य (बल) तथा वीर्य केवल शयनागारमें ही कुछ कुछ प्रकाशित होने लगे। दूसरी दूसरी जातिके लोग अपने धर्मोंके आचरण द्वारा भरण-पोषण करनेमें असमर्थ होकर वेदविधिको छोड़ने लगे। यद्यपि ऐसे आपत्तिकालमें भी बहुतोंके लिये निवृत्ति-धर्म ही अवलम्बनीय रहा, तथापि कर्म-फलानुसार बहुतसे आर्यवंशके लोग वेद-धर्मको छोड़कर कितने प्रकारके स्वकपोलकल्पित उपधर्म सृष्टिकर उसीके अनुसार समय बिताने लगे।

विलायतवासी लोगोंके इस देशमें आनेसे हम कुछ बातोंमें सुखी जान पड़ते हैं। परन्तु कोई भी घटना अमिश्र सुख नहीं दे सकती। अंग्रजोंका भारतवर्षमें अधिकार होनेसे जहां हमें कुछ सुख प्राप्त हुआ वहां किसी किसी विषयमें हमारा अमङ्गल भी हुआ। अंग्रेजलोगोंने इस देशमें अपनी भाषा द्वारा कई तरहसे वैज्ञानिक उपदेश देकर प्रतिष्ठा प्राप्त की है। यहांके नवीन-सम्प्रदाय वालोंने उनलोगोंकी भाषा सीखकर तथा उनकी चलाई रेलगाड़ी, रेडिओ प्रभृति यन्त्रों से प्रभावित होकर उन्हें अपना गुरु समझ लिया है। इससे अनेक भयङ्कर दोष उत्पन्न हो रहे हैं। आर्यभाषा एवं उसमें लिपिबद्ध विशाल तथा निर्मल ज्ञानविज्ञान

प्रायः लुप्त हो रहा है। इसका प्रमाण सहज है। किसी शिक्षित अंगरेजी विद्याके अध्यापकसे परम-पूजनीय सभी वेदोंके सार साक्षात सामवेदरूपी श्रीमद्भागवतकी बात पूछनेपर वह हँसकर उसे पुरानी पुस्तक कहकर ताखेपर रखदेनेको कहेगा। श्री श्रीमद्भागवतके आध्यात्मिक परमरमणीय अप्राकृत वृत्तान्तोंके मूलतत्वको न समझकर उसको लम्पटता बढ़ानेवाली तुच्छ पुस्तकोंमें उसे गिनेगा। अहा! कैसी मूर्खता है। इन सब बालकोंने अब अपनी संख्या बढ़ाकर दलबलके साथ कई उपधर्म स्थापन किए हैं। जो हो इंगलैण्डका प्राकृत विज्ञान ही मनुष्य जातिका प्रकृत उद्देश्य है, ऐसी शिक्षा पाकर वे अपक व्यक्ति अप्राकृत तत्वको स्वप्नवत् समझने-लगे हैं। इसमें अंग्रेजोंका क्या दोष है।

इन सब ऐतिहासिक बातोंको कहनेका तात्पर्य यही है कि हमारे पाठक इस बातको जानें कि अंगरेजोंके संसर्गसे आर्यवासी निवृत्ति-तत्वको अग्राह्य समझने लगे हैं। प्रवृत्ति तथा निवृत्ति इन दोनोंके बीच श्रेष्ठ मार्ग प्रवृत्ति है, ऐसा ही उन-लोगोंने स्थिर किया है; और निवृत्ति मार्गको पूर्वकालका भ्रम समझकर परित्याग किया है। जैसा सङ्ग होता है वैसे ही जीवके विचार, सिद्धान्त तथा स्वभाव हो जाते हैं। यह बहुतसे शास्त्रोंमें कहा गया है। इस समय अंगरेजोंने इन्द्रिय तथा मनोबलकी प्रचुरता द्वारा प्रवृत्ति-मार्गको भगवद्धामका एकमात्र पथ स्वीकार किया है। "इस समय" शब्दोंके व्यवहार करनेका तात्पर्य यह है कि उनलोगोंके अवतार पुरुष वा धर्मगुरु ख्रीष्टने अपने प्रकाशित धर्ममें दोनों-अर्थात् प्रवृत्ति एवं निवृत्ति-मार्गको स्वीकार करते हुए निवृत्तिकी उत्कृष्टताका स्थापन किया है।

किसी व्यक्तिने ईसासे पूछा कि हे गुरो! बहुत दिनोंकी आयु पानेके लिये मुझे क्या करना चाहिये? ईसाने कहा, "यदि सांसारिक धर्मोंका प्रतिपालन करके भी ऐसा प्रश्न करते हो, तो सुनो, तुम्हारे पास जो धन है उसे बेचकर दरिद्रोंको दान करदो एवं मेरा अनुगामी हो जाओ।" उस व्यक्तिके इस परामर्शके अनुसार नहीं चल सकनेपर उन्होंने अपने शिष्योंसे कहा, देखो विषयीलोगोंके लिये वैकुण्ठ प्राप्ति अत्यन्त कठिन है। उन्होंने फिर कहा कि जिस मनुष्यने मेरा पथानुगामी होनेके लिये घर, भाई, भगिनी, पिता, माता, स्त्री तथा पुत्रादिका परित्याग किया है उसीको अधिक लाभ होगा और वही अनन्त आयुका अधिकारी होगा।

ईसाके ऐसे बहुत उपदेश हैं। वे एक वैरागी पुरुष थे इसमें कुछभी सन्देहकी बात नहीं है। इस समय जो ख्रीष्टधर्मकी शिक्षा मिलती है, वह यथार्थमें ख्रीष्टका उपदेश नहीं है। यदि ऐसा न होता तो ख्रीष्टीयलोग राज्य प्राप्तिके लिये प्राणवध करना स्वीकार नहीं करते। युद्ध करना एक प्रकारकी पशुवृत्ति है, अतएव वैराग्यधर्म-विरोधी है, इसमें कुछ संदेहकी बात नहीं।

हे महापुरुषो! क्या ख्रीष्टके इस उपदेशसे निवृत्तिमार्ग उत्कृष्ट स्वीकृत नहीं हुआ? अंगरेजलोग क्या ख्रीष्ट धर्मसे च्युत नहीं हुए? केवल प्रवृत्ति मार्ग ही श्रेष्ठ है, ऐसा सब अंगरेज नहीं कहते यह बात ठीक है, किन्तु जो निवृत्तिके विरोधी हैं, वे लूथर नामक किसी धर्म-संस्कर्ताके शिष्य हैं। लूथरके समयसे उनने प्रवृत्ति-मार्गको ही उपासनाका एकमात्र उपाय स्वीकार किया है। वर्तमान समयके प्रोटेस्टेन्ट अर्थात् लूथरके शिष्यलोग सन्यासावलम्बी पुरुषोंको भ्रान्त कहते हैं। किन्तु

रूस, फ्रान्स इत्यादि देशोंमें लूथरका मत विशेषरूपसे स्वीकृत नहीं हुआ और इस कारण वहांके पादरीलोग हमलोगोंके वैरागी तथा महन्थोंके सदृश स्त्रीसम्भोग छोड़कर निःसङ्ग भावसे उपासना करते पाये जाते हैं। इस मतको कैथलिक अर्थात् ख्रीष्टका यथार्थ मत कहते हैं।

लूथरने ख्रीष्टके उपदेशोंका लक्षणा द्वारा स्वतन्त्र अर्थ करके नया मत चलाया। हमलोगोंके देशमें जिस प्रकार श्रीशङ्कराचार्यने वेदान्तसूत्र तथा उपनिषदोंके गौणार्थ द्वारा मायावादरूप असच्छास्त्र प्रकाश किया है, इंगलैण्डमें लूथरने भी उसी प्रकारसे बाइबल शास्त्रका गौणार्थ करके निवृत्ति मार्गको भ्रममार्ग कहकर प्रवृत्ति-मार्गको श्रेष्ठ बतलाया है। हमारे नये अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियोंने ऊपर कहे हुए अंगरेजोंके प्रति श्रद्धान्वित होकर इस प्रवृत्ति-मार्गकोही श्रेष्ठ समझ लिया है। सन्न्यासी तथा वैरागियोंको देखनेही उन्हें दुःख होता है और वे कहते हैं कि अहा! ऐसे क्षमताशील व्यक्ति संसारकी उन्नतिके प्रति अकर्मण्य हो गये हैं। यह यदि विवाहादि करके जमीन जोतते तो उससे पृथ्वीदेवीका बहुत दुःख कम हो जाता।

जो इस प्रकारके विचार रखते हैं, वे मूर्ख हैं, ऐसा हमलोग नहीं कहते, बल्कि उनलोगोंमें बहुतसे अत्यन्त पण्डित तथा विज्ञानवित् महापुरुष हैं। किन्तु रक्तमांससे बना हुआ मनुष्य भ्रमरहित नहीं हो सकता, अतएव उनको भ्रम रहेगा, इसमें सन्देह क्या है? प्रवृत्ति-मार्गके पक्षपाती वस्तुतः बहुतसे पण्डित देखनेमें आते हैं, अतएव इस विषयके विचार करनेके लिये श्री श्रीमद्भागवतमें कहे गये चार प्रमाणोंको अवलम्बन करना उचित है।

"श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम्।"

अखिल शास्त्र, प्रत्यक्ष, इतिहास तथा युक्ति इन चार प्रमाणोंका अवलम्बन करनेसे विवेचना निर्मल होगी। किसी बातके निर्णय करनेके समय किसी एक मनुष्यके पाण्डित्यसे भीत या भ्रान्त नहीं होना चाहिये। अतः हम स्वाधीनताके साथ विचार करें। परमाराध्य श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने हमलोगोंको ऐसा कहा है।

स्वाधीनता रत्न हय ईश्वरेर दान।
ताहारे त्यजिते कभु नारे बुद्धिमान॥

निर्मल युक्ति, शास्त्र, इतिहास तथा प्रत्यक्ष प्रमाणोंके द्वारा जो स्थिर होगा वह हमलोगोंको नितान्त पूज्य होगा। शङ्कराचार्यके समान पण्डित यद्यपि इस सिद्धान्तके विरुद्ध विश्वास करेंगे, तोभी उससे हम विचलित नहीं होंगे। अंगरेज पण्डित ऐसा विश्वास करते हैं इसलिये प्रवृत्ति-मार्ग सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अंगरेज भी तो मनुष्य ही हैं। हमारे नवयुवक जो परमसाध्य वस्तुकी प्राप्तिके मार्गमें प्राप्त हुए भ्रमके वशीभूत होकर आर्य-प्रकाशित निवृत्ति-पथसे घृणा करते हैं, यह भी उनलोगोंके बहुतसे भ्रमोंमेंसे एक प्रधान भ्रम है। अब मुख्य विषयका विचार किया जाय।

दूसरोंके भ्रमको छोड़कर उनके साधुवाक्यको ग्रहण करना हमलोगोंके लिये वाञ्छनीय तथा आचरणीय है। इसके उदाहरणमें श्रीशङ्कराचार्यका मायावाद अनादरणीय होनेपर भी उनका लिखा निम्न-प्रकाशित युक्तवाक्य ग्रहण किया गया है। उन्होंने श्रीगीता भाष्यके प्रारम्भमें लिखा है:—

"द्विविधो हि वेदोक्तो धर्म्मः प्रवृत्ति-लक्षणो निवृत्तिलक्षणश्च।"

धर्म वास्तवमें दो प्रकारका है—प्रवृत्तिमूलक तथा निवृत्तिमूलक सम्पूर्ण शास्त्रोंकी आलोचना

करके देखनेसे यही स्पष्टरूपसे देखनेमें आता है कि प्रवृत्ति-धर्मका फल भोग एवं निवृत्ति-धर्मका फल मुक्ति है। प्रवृत्ति-धर्मावलम्बन करनेसे संसारमें अधिकतर उन्नति होती है, जैसे दुर्गोत्सव, अश्वमेध, अग्निहोत्रादि क्रियाके द्वारा प्रतिष्ठा तथा बहुतसे लोगोंके अनुग्रहका पात्र हो सकता है। प्रवृत्ति-मार्गसे संसारकी बहुत उन्नति होती है।

पण्डितलोग प्रवृत्ति-मार्ग अवलम्बन करके अनेक ग्रन्थोंकी रचना करते, वैज्ञानिक तत्त्वका आविष्कार करते तथा भूगोलके अनेक भागोंका वर्णन करते हैं। तरल पदार्थोंके गुणोंका अन्वेषण करके उससे द्वारा मनुष्यको जो कुछ फल प्राप्त हो सके, उसे स्थिर करते हैं। विद्युत्तत्त्वका (electricity) आविष्कार करके वार्त्तावहादि (telegraphy) शिल्पकी नींव देते हैं। वाष्पतत्त्व (steam) द्वारा जहाज, हवाईजहाज तथा मोटरगाड़ी इत्यादिका चलाते हैं। वृक्ष लतादिका गुण अनुसन्धान करके अपूर्व औषधि-निचयका प्रचार करते हैं। संसारोपयोगी अन्य विषयोंके सम्बन्धमें भी वे बहुतसा काम करते हैं। संसार-सम्बन्धी नानाप्रकारकी सभ्यताका नियम स्थापन करते हैं। राजा प्रजाका सम्बन्ध, अर्थके द्वारा जीवन-यापन करनेका उपाय तथा अन्यान्य प्रकारके लाभको स्थिर करना, ऋण-ग्रहण तथा दानविचारके द्वारा अभावको पूर्ण करना, गृह, ग्राम, नगर तथा दूकान स्थापन द्वारा व्यावहारिक अभावका दूर करना इत्यादि विषय निश्चित हुए हैं। विवाहादि संस्कारोंके द्वारा प्रजा वृद्धि एवं न्यायपूर्वक स्त्रीसम्भोग द्वारा देह तथा बलकी रक्षा करते हैं। शिल्पकारलोग प्रवृत्तिके आधीन होकर कितने कितने अलङ्कार, वस्त्र, काष्ठासन, दीपादि, अपर द्रव्याधार एवं खाट, गृह, पलङ्ग प्रभृति बनाकर प्रवृत्तिशाली लोगोंके सुखको बढ़ाते हैं। इन सब द्रव्योंके प्रति तथा विशेषतः गृह-परिवारादि एवं यशके प्रति प्रवृत्त पुरुषोंको इतना प्रेम-उपजता है कि वे अन्यान्य आक्रमणकारी पुरुषोंके साथ युद्ध द्वारा रक्त-पातादि करते रहते हैं। यह सब न्यायानुगत प्रवृत्तियां हैं, किन्तु इन सबोंके अतिरिक्त अन्याय प्रवृत्तियां भी बहुतसी हैं। इन्द्रियोंके वश प्रवृत्त पुरुष स्त्रियोंमें अन्यायपूर्ण आसक्ति तथा पान-भोजनादिमें गाढ़-प्रेम इत्यादि क्रियाओंके द्वारा जीवन-यापन करते हैं। प्रवृत्त-पुरुष केवल इस संसारमें आबद्ध रहते हैं, ऐसा बात नहीं है, वे इन्द्रपुरी प्रभृति नानाप्रकारसे पारलौकिक संसारके सुखकी आशासे उन सुखोंके देनेवाले देवताओंकी उपासना करते हैं। अश्वमेधादि यज्ञ करके वे इन्द्रपुरीकी अप्सराओंके सहित इन्द्रिय चरितार्थ करके सुखी होनेका इच्छा करते हैं। वास्तवमें प्रवृत्तिशील लोगोंकी आशाका अन्त नहीं है। पृथ्वीका राजत्व, स्वर्गका राज्य, ब्रह्मपद, शिवत्व प्रभृति बहुतसे पदोंकी वाञ्छा करते हैं। इन सब विषयोंके बहुतसे उदाहरण शास्त्रमें तथा इस संसारमें पाये जाते हैं किन्तु हमलोगोंने उनसबोंका यहांपर कुछ भी संग्रह नहीं किया, कारण पाठकगण उनसब बातोंको जानते हैं, यही हमारा विश्वास है।

प्रवृत्ति-पथ इन्द्रिय गोचर है, एवं उस पथके अवलम्बन करनेवालोंको प्रत्यक्ष फल मिलता है इसमें सन्देह नहीं। मनुष्यजातिको विचार शक्ति रहती है, अतएव उनलोगोंके सम्मुख प्रवृत्ति-मार्गका फल प्रकाशित होगा, इसमें कहनेकी कोई बात नहीं है। पशुओंकी बुद्धि आबद्ध रहनेपर भी वे भी प्रवृत्तिके फलको जानते हैं। 'विभर' नामक पशुका

गृह-निर्माण एवं वायुइके गोमलेका निर्माण केवल प्रवृत्तिका फल है।

प्रवृत्ति पथमें मनुष्यको बहुत सुख मिलता है, इसमें सन्देहकी कोई बात नहीं है। तोतली-बोली बोलनेवाले बालक-बालिकाओंको गोदमें लेना, घृत अन्नादिका आस्वादन, स्त्रियोंके साथ नाचना एवं दुग्धफेनके समान शय्यापर शयन करना, रेलगाड़ी मोटर इत्यादिपर चढ़कर दूर देशमें भ्रमण करना अतिशय आनन्दप्रद है, इसमें क्या संदेह है। जीवोंपर कृपा करके परमेश्वरने संसाररूपी धर्म-शाला जो सुसज्जित किया है, अवश्य यही विश्वास होता है, क्योंकि जिह्वाके साथ उद्भिद पदार्थोंका जो कोमल सम्बन्ध, कर्णछिद्रके साथ गीतवाद्यादिका जो प्रिय सम्बन्ध, चक्षुके साथ दृश्य पदार्थ प्रकाशादिका जो सौहार्द्र है, वह परमेश्वरकी अचिन्त्यशक्तिकी क्रियाशक्तिका फल है, यह कौन स्वीकार नहीं करेगा।

संसारमें जितने प्रकारके सुख हैं वे सभी 'प्रवृत्ति-सुख' हैं। प्रवृत्ति-सुखके वशीभूत पुरुष दैहिक, मानसिक तथा सामाजिक उन्नतिके लिये सर्वदा व्यस्त रहते हैं। यह प्रवृत्ति-सुख यदि नहीं रहता, तो सांसारिक अवस्थामें मनुष्यकी बहुत दुर्दशा होती। कहांसे नगर, कहांसे रेलकी सड़क, कहांसे नौका, कहांसे दूकान, कहांसे मन्दिरादि देखनेमें आते। मानवजाति पशुसदृश वन-वनमें भ्रमण करते करते नष्ट हो जाती। पृथ्वीका सौन्दर्य पृथ्वीमें ही अदृष्ट भावसे छिपा रहता।

क्रमश.

श्रीभक्तिसिद्धान्तवाणी

जिनलोगोंकी सेवा करनेके लिये स्वयं भगवान भी व्यस्त रहते हैं, उन्हीं वैष्णव लोगोंकी सेवा करना अज्ञ आकृत लोग नहीं चाहते। हमलोगोंका प्रधान कर्त्तव्य है—वैष्णवोंकी सेवा करना। बहुतसे प्रचारक भगवानकी ही सेवा करनेको कहते हैं, किन्तु श्रीगौर-सुन्दरने भक्त-सेवा को सर्वोत्तम बतलाया है। जो सजीव भगवद्विग्रह हैं—जिनसे भगवद्विग्रहकी जीती जागती कथा प्रकाशित होती है, जिनसे प्रश्नों के उत्तर मिलते हैं, और सेवा किसको कहते हैं जिनसे यह जाना जाता है, उन्हीं भगवद्भक्तों की सेवा भगवान्‌की अर्चामूर्त्तिकी सेवासे भी श्रेष्ठ है। अर्चामूर्त्तिकी सेवा भी भगवद्भक्तोंकी वाणीश्रवण किये विना पूर्णरूपसे नहीं हो सकती। भगवद्भक्तों की पूजासे ही भगवानकी पूजाकी पूर्णता साधित होती है।

कोई कोई कहते हैं कि चुपचाप रहना ही अच्छा है; चुपचाप नहीं रहनेसे परचर्चा हो जायगी। किन्तु परोपकार करनेकी वृत्तिकी अपेक्षा प्रतिष्ठा-प्राप्तिकी प्रवृत्ति ही जिनलोगोंकी प्रबल है, वे ही असत्यके प्रतिवादको 'परचर्चा' कहा करते हैं। जगत्‌का उपकार यदि कोई न करे, तो भगवान् क्यों उसका उपकार करेंगे? हमलोगोंका एकमात्र कर्त्तव्य है दुःसङ्ग परित्याग करना; दुःसङ्ग परित्यागका नाम ही तीर्थवास है। सत्यकी जहां प्रतिष्ठा है वहीं तीर्थ है और वह सर्वत्र ही सम्भव है। भजनमय गृह भी तीर्थ हो सकता है; किन्तु जहां कपटता है और कपटताकी आड़में जहां अमङ्गल वस्तुके ग्रहण करनेकी चेष्टा है, वह तीर्थ नहीं। 'यदि कोई यह कहे कि कलिकाल ही क्यों न हो पर हमारे ठीक रहनेसे ही सब ठीक हो जायगा तो इसका

उत्तर यह है कि जिन इन्द्रियोंका हमलोगोंने आश्रय लिया है, वेही चक्षु, कर्ण, नाक, जिह्वा, त्वक् प्रभृति इन्द्रियाँ हमलोगोंके प्रति परम शत्रुता और विश्वासघात कर रही हैं। तिसपर भक्तिमार्ग नानाप्रकारके मनोधर्ममय मतवादरूप कण्टकोंसे आकीर्ण है। अतः मनुष्य इन्द्रियोंके सहारे अमल मार्ग अवलम्बन करनेमें असमर्थ है। इसलिये श्रीचैतन्यचन्द्रके निज जनोंकी शरणमें जानेके सिवा और कोई उपाय नहीं।

यथार्थमें भोगी एकमात्र भगवान हैं–वेही भोगपुरन्दर हैं। जीवके स्वरूपधर्ममें भोगवृत्ति नहीं है। जीव भोगपुरन्दरके भोगका उपकरणमात्र है। निष्कपट होकर हरिसेवा करनेके समय यदि कोई भगवत्सेवकको भोगी वा त्यागी देखे तो देखे; हरिसेवक त्यागी भी नहीं हैं और भोगी भी नहीं हैं; किन्तु निष्कपट सेवक हैं।

महाभागवत निष्किञ्चन साधुका भी अभाव है और हमलोगोंकी हरिकथा सुननेकी प्रवृत्तिकाभी अभाव है। हमलोग अन्य विषयोंके सुननेके लिये खूब उपाय करते हैं। जहां शुश्रूषु और महत्‌का सम्मेलन है, वहां हरिकीर्त्तन होता है। वर्तमान समयमें निष्कपट होकर दूसरेकी भलाई करनेवाले बहुत ही कम हैं। भगवानकी कथाकी आलोचना करनेका अभिनय कर भी अनेकबार अवास्तव उद्देश्यसिद्धिकी यथेष्ट चेष्टा की जाती है किन्तु इसके भीतर दूसरा मतलब रहता है। जिनलोगोंमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष अथवा अधर्म, अनर्थ, कामकी अतृप्ति एवं संसारप्रवृत्ति वर्तमान है, जगत्‌में उनलोगोंकी ही संख्या अधिक है। वे जो हरिकथा सुनानेका अभिनय करते हैं, वह भी अन्यान्य अवास्तव उद्देश्यसिद्धिके लिये ही। इसलिये कपटी लोगोंके मुखसे कीर्त्तन सुननेसे कोई सुविधा नहीं होगी। हमलोग यदि सचमुचही अपना मङ्गल करना चाहते हों, और सचमुच दूसरोंके मङ्गल करनेकी इच्छा रखतेहों तो भगवान निश्चय ही हमपर दया करेंगे। दूसरेको फाँसी देनेसे स्वयं भी फांसीमें पड़ना पड़ेगा।

भगवानके चरणमें शरण ग्रहण किये बिना स्वाधीनता प्राप्त करनेका और कोई उपाय नहीं। गुरुकी शरणमें स्वेच्छानुसार पूर्ण रूपसे आधीन स्वतन्त्रताका सद्व्यवहार ही पूर्ण स्वाधीनता है। मनोयोग पूर्वक हरिकथा श्रवण करनेके द्वारा ही उत्तम साधुसङ्ग होता है। साधुलोगोंका उत्तम सङ्ग मिलनेसे भगवानके वीर्य और जगतके दौर्बल्यकी कथा हमलोग समझ सकते हैं। हमलोग तब साधुलोगोंके कथनानुसार सेवा करते करते कृष्णसेवामें सुदृढ़ विश्वास, आसक्ति और प्रीति प्राप्त कर सकते हैं। कृष्णसेवामें प्रीति ही निखिल जीवका चरम प्रयोजन है।

कृष्ण भजनीय वस्तु हैं, जीव भजनकारी वस्तु है, दोनोंके बीच वाली क्रिया 'भजन' है। सम्बन्ध जाननेके बाद क्रिया होती है; जैसे घड़ीसे देखकर समय जाननेकेबाद उस समय हमारा क्या कर्तव्य है यह समझमें आता है। तब उस समयका आवश्यक कार्य किया जाता है। ब्रह्म जिज्ञासाके बाद, ब्रह्म निरूपित होनेपर—ब्रह्मके साथ अपना सम्बन्ध ज्ञान होता है, तब उसके प्रति अपना क्या कर्तव्य है यह जानकर मनुष्य उसका आचरण करता है। जो भ्रान्त विचार वाला है, उसे ही "मैं कर्त्ताहूं"—यह अभिमान रहता है; वह विमूढ़ है। तुच्छतारूपी भगवद्दास्य ही हमलोगोंका वाञ्छनीय है। तृणसे भी छोटा बनने पर कर्तृत्वाभिमान बिलकुल

नहीं रहेगा। कर्म और कुछ नहीं है—केवल दूसरों की चीजमें अपना कर्त्ताभिमान है।

भक्ति एक क्रिया है। निष्कपट हरि-भजन-परायण पुरुष वा भगवद्भक्त प्रसाद सेवा करते हैं—भोग नहीं करते। भात दाल भोगी खाता है। भात दाल खाना कर्म है। भगवद्भक्तका प्रसाद-सम्मान बाह्य दृष्टिसे कर्मके समान देख पड़ने पर भी उसका देह-प्राण और आत्मा के भगवत्सेवाके लिये समर्पित होनेके कारण 'कर्म' नहीं 'सेवा' है। मनमाना धर्म माननेवाले भजनीय वस्तु और भजनकारीके स्वरूप निर्णयमें असमर्थ होकर भक्ति और कर्मको एक समझते हैं।

"आदौ श्रद्धा"

(गतांक से आगे)

जब किसीके प्रति हमलोगोंकी श्रद्धा कम रहती है, तो उस समय यदि वह हमलोगोंके तरफ दृष्टि भी करे तो हमें मालूम पड़ता है कि वह निश्चयही अपने किसी स्वार्थ साधनके लिये मेरे प्रति दृष्टि निक्षेप कर रहा है। अप्राकृत गुरुदेव जिस समय अपने शिष्यको निर्जन घरमें मन्त्रोपदेश प्रदान करते हैं, उस समय श्रद्धाहीन आर्य्यविक उसको दूसरी दृष्टिसे देखता है और नानाप्रकारकी समालोचना करता है। जिस समय महाप्रभु नवद्वीपमें श्रीवास मन्दिरमें द्वार बन्दकर भक्तोंके साथ कृष्णसङ्कीर्त्तन करते थे, उस समय नवद्वीपके श्रद्धाहीन व्यक्ति कितने प्रकारकी समालोचना किया करते थे। साधु यदि योषिद् दर्शन न कर पुरुष वा स्त्री-रूपधारी किसीके निकट हरिकथा कीर्त्तन करते हैं, उस समय श्रद्धाहीन व्यक्ति कितने प्रकारकी कल्पना वा समालोचना करता है। श्रद्धाहीन व्यक्ति साधुकी खाद्यवस्तु और गाड़ीके सम्बन्धमें भी कितनी समालोचना करता है। अधिक क्या स्वयं महाप्रभुके सम्बन्धमें भी उसी प्रकार कितनी समालोचनायें हुई हैं! नवद्वीपवासी पाखण्डी, रामचन्द्रपुरी, अमोघ प्रभृति आर्य्यविकगणने पतितपावनशिरोमणिगणोंके आराध्य श्रीगौरपादपद्ममें भी कितने ही कलङ्कोंका आरोप किया है और अभी भी कर रहे हैं। महापुरुष क्यों वैद्युतिक पंखा की हवा भोग करेंगे, प्रथमश्रेणीके वाष्पीय गाड़ी, वैद्युतिक गाड़ीमें चढ़ेंगे? इस प्रकारकी कितनी ही बातें श्रद्धाहीन आर्य्यविक व्यक्तियोंके मुखसे सर्वदा सुनी जाती है। श्रद्धाहीन व्यक्तिगण परदुःखदुःखी साधुओंके भगवद्भक्ति प्रचारको भी उनलोगोंका प्रतिष्ठा-कामनाका वाहन समझते हैं। साधुके प्रति श्रद्धा नहीं रहनेसे साधुके हाथ उठानेपर भी मालूम होगा कि वह दूसरेका धन अपहरण करनेके लिये ऐसा कर रहा है! साधुके नैष्ठिक ब्रह्मचारियों का आचरण करनेपर भी समझमें आयेगा, कि उसने छिपकर व्यभिचार करनेके लिये ऐसा छद्मवेश ग्रहण किया है। साधुसजातीयाशयस्निग्ध (एक चित्तवृत्तिविशिष्ट) व्यक्तियोंके साथ एकान्तमें निरन्तर भागवतधर्मकी कथा कीर्त्तन करनेसे भी मालूम देगा कि साधु विश्वनिन्दा वा नानाप्रकारका षड्यन्त्र कर रहा है। साधुके कनक (अर्थ) के द्वारा माधवकी सेवा करनेसे मालूम होगा, कि वे अपना प्रभुत्व विस्तार कर रहा है। साधुके किसी कामनीको कृष्णसेवामें नियुक्त करानेसे मालूम पड़ेगा कि, वह योषित्सङ्ग कर रहा है। श्रद्धाकी दृष्टिसे जिनलोगोंको भुवनमङ्गल महापुरुष समझा जाता है, और

जिनलोगोंकी प्रत्येक क्रिया-मुद्रासे मङ्गलमयी उपलब्धि होती है, अश्रद्धाकी दृष्टिसे उनलोगोंको पाखण्डी और उनलोगोंके कार्यको भांड़पना (कपटता) कहा जाता है।

इसीलिये महाजनोंने कहा है,—जो अश्रद्धावान और संशयात्मा हैं, उनलोगोंको कभी महाप्रसाद, गोविन्द, नामब्रह्म और वैष्णव इन अप्राकृत चार वस्तुओंका दर्शन नहीं होता। वे इन अप्राकृत चार वस्तुओं में भी दोष है, ऐसा हृदयमें विश्वास करते हैं। वे आधिभौतिकताके द्वारा वंचित होकर इस प्रकार श्रद्धाहीन और संशयपरायण हो जाते हैं कि साधुके सभी कार्य ही उनलोगोंके निकट सन्देह और समालोचनाकी वस्तु हो जाते हैं। इसप्रकार सांदिकावृत्ति अनुशीलन करते करते ही ये नरक की ओर प्रधावित होते रहते हैं। इसीलिये सभी महाजन, गुरु, शास्त्र उच्चस्वरसे कहते हैं,—"श्रद्धायुक्त हो"— "अश्रद्धावानकी गति नहीं।" सरलता रहनेसे अन्धविश्वासी भी किसी न किसी दिन सत्य पथकी ओर फिर प्रत्यावर्त्तनकर (लौट) सकता है, किन्तु कपट, श्रद्धाहीन, संशयात्मा कभी भी सत्य-पथ पर नहीं आ सकता है। उसका विनाश अवश्यम्भावी है यह स्वयं भगवानकी वाणी है। यह वाणी मिथ्या नहीं हो सकती—

"अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।"

गी: ४।४०

इसीलिये ठाकुर भक्तिविनोदने पुनः पुनः कहा है,—

"सकल छाँड़िया भाई, श्रद्धादेवीर गुणगाई।"

जिससे लोग "आदौ श्रद्धा"—इस कथाको कभी न भूलें। जब श्रद्धा होगी तब साधुसङ्ग होगा। यदि श्रद्धा ही नहीं हुई तो किस प्रकार साधुसङ्ग होगा? फिर किस प्रकार भक्ति प्राप्त होगी? अधिक क्या कहा जाय, हमलोगोंका कर्माधिकार ही नहीं जायगा। अश्रद्धालु व्यक्ति अन्यासिलापवीर, कर्मवीर, ज्ञानवीर, योगवीर हो सकते हैं,—सम्पूर्ण जगत्को अपने व्यक्तित्व और प्रतिभाके द्वारा विमोहित और स्तम्भित कर सकते हैं, किन्तु वे कर्माधिकारसे मुक्त नहीं हो सकते। महाजनगण उनको 'भक्त' नहीं कहते। आध्यात्मिकके सौ सौ अकाट्य समालोचनाओं या सौ सौ प्रत्यक्ष प्रमाणोंके द्वारा भी महाप्रसादका महापावनत्व, श्रीअर्चावतारका करुणामयत्व, श्रीनामब्रह्मका अप्राकृतत्व और वैष्णवका पतितपावनत्व विनष्ट नहीं होगा।

श्रद्धाहीन व्यक्ति जगत्के कर्मी, ज्ञानी अन्याभिलाषी आध्यात्मिक लोगोंको मिलाकर उनलोगोंका नेतृत्व कर सकेंगे, किन्तु भक्तिदेवीकी विन्दुमात्र भी भी कृपा नहीं पा सकेंगे। अतएव—"आदौ श्रद्धा"। गङ्गाजलमें बुद्बुद् या फेन-पङ्क देखकर श्रद्धाहीन होनेसे पतितपावनी गङ्गाका दर्शन नहीं होगा; द्रवब्रह्मकी कृपा प्राप्त नहीं होगी। वैष्णवोंका वपुगत दोषादि दर्शनकर उनके प्रति श्रद्धाहीन होनेसे कभी भी साधुसङ्ग नहीं होगा।

हमलोगोंने जिनलोगोंको नहीं देखा, पर केवल जिनलोगोंकी कथामात्र ग्रन्थादिमें पाठ किया है, ऐसे व्यक्तियोंको हमलोगोंने बहुतबार महापुरुष समझ लिया है। हम जिन महापुरुषोंको सामने देखते हैं उन्हेंही कुछ आदमियोंके फन्देमें पड़कर आंशिकरूपसे महापुरुष समझने लगते हैं पर उनलोगोंके प्रति सुदृढ़ श्रद्धा नहीं हो सकती। श्रद्धाहीन होनेसे कितने प्रकारकी पाखण्डता का रक्तबीज दैत्य, प्रति मुहूर्त्तमें हृदयमें जन्म ग्रहणकर प्रत्येक क्षणमें अश्रद्धालुके सद्वृत्तियोंको ध्वंस कर देता है, श्रद्धाकी

कमीके कारण ही हमलोग गुरुवैष्णवके पल्लादार हो जाते हैं ! हमलोग अपनेको वैष्णवसे भी अधिक समझते हैं। ऐसा मनमें समझते हैं कि हम गुरुवैष्णवको चालाकी धर सकते हैं, अतएव साधु सावधान ! श्रीहरि गुरुवैष्णवके पाद-पद्ममें यही प्रार्थना है कि हम श्रद्धादेवीकी कृपासे वञ्चित नहीं हों।

साधुका अनुसन्धान

गत मासके भागवतमें 'श्रद्धाके' सम्बन्धमें आलोचना हुई है। श्रील रूपगोस्वामी प्रभुने प्रेम प्राप्त करनेके लिये जो क्रम निर्णय किया है, उसमें 'श्रद्धाके' बाद ही 'साधुसङ्ग' का कथा है। सुकृति-शाली श्रद्धावान् जीव ही प्रकृत साधुके सङ्गके लिये उत्कण्ठित और यत्नवान होते हैं।

साधुसङ्ग करनेके लिये प्रकृत साधुका अनुसन्धान करना कर्तव्य है। असाधुको साधु समझकर उसका सङ्ग करनेसे कभी भी प्रकृत मङ्गल प्राप्त नहीं होगा।

प्रकृत साधुका अनुसन्धान यत्नके साथ करना कर्तव्य है; किन्तु एक श्रेणीके लोगोंका ऐसा स्वभाव है कि वे सत्यके अनुसन्धान करनेकी आड़में ज्ञान वा अज्ञानवश आध्यात्मिकताको ही सत्यानुसन्धान समझते हैं। यह भोग और त्याग-पिपासा ही एक प्रकारकी प्रच्छन्न नास्तिकता वा कपटता है। प्रच्छन्न आध्यात्मिकोंका यह स्वभाव है कि वे सत्यानुसन्धान करनेके बहाने केवल नये नये धर्ममत, नये नये धर्म-प्रतिष्ठान और साधुके नये नये दोषोंका अनुसन्धान करते फिरते हैं। इष्टवस्तुके आवाहन और विसर्जन ग्रहण और त्यागके चक्करमें अपनेको गिराकर उसको ही सत्यानुसन्धित्सा कहकर कल्पित करते हैं। सत्यानुसन्धित्सुका अभिनयकर आज वे जिस मत, पथ वा व्यक्तिविशेषको अनेक युक्तियोंके साथ एकमात्र वास्तव सत्य वा एकमात्र साधु, गुरु, वैष्णव वा इष्टदेव कहकर आवाहन करते, जिसके लिये दूसरोंके साथ कितना न संग्राम करते, कल व्यतीत होते न होते ही उसी एकमात्र वास्तव सत्यको असत्य कहकर प्रतिपादन वा अद्वितीय साधु-गुरु-वैष्णवको बहुत बुरा असाधु और वञ्चक कहकर सर्वदाके लिये विसर्जन करनेके लिये उद्यत होते हैं। इस प्रकार आवाहन और विसर्जन अर्थात् गढ़ने और तोड़नेका स्वभाव निर्विशेषवादियोंके चरित्रमें सर्वदा ही देखा जाता है।

ये जब अपने पूर्वस्वीकृत 'वास्तव' सत्यको दूसरे मुहूर्तमें 'अवास्तव' कहकर प्रचार करते हैं, उस समय वे कहते हैं कि वे सत्यकी खोज कर रहे हैं, इसलिये इस प्रकार आवाहन और विसर्जनके मध्यमें चलते चलते ही किसी न किसी दिन वास्तव सत्य प्राप्त कर ही लेंगे। आरोहवादी आध्यात्मिक सम्प्रदायकी ऐसी युक्ति भगवद्भक्ति-याजनके अभिनय करनेवाले प्रच्छन्न निर्विशेषवादियोंके आचरणमें देखा जाता है।

एक विख्यात धर्मनेता पहले वैष्णव धर्ममें विशेष अनुरागी थे। वैष्णवधर्म याजन करते करते उनको ब्राह्म-धर्मके प्रति आसक्ति हुई। वे उपवीतादि परित्यागकर श्रीमूर्त्तिपूजा और ब्राह्मण्यधर्मके विरुद्ध प्रचारक हो पड़े। ब्राह्ममत ग्रहण करनेके पहले उनके दो अपने सम्बन्धी व्यक्ति एक ब्राह्म-नेताके पास जाते थे; उन्होंने उससे पूर्णरूपसे बाधा प्रदान की, यहाँ तक कि इसके

लिये वे अपने आत्मीय स्वजनको भी परित्याग करनेमें कुण्ठित नहीं हुए; किन्तु उसी व्यक्तिने फिर अपने ही निन्दित मतको प्रकृत सत्य समझकर ग्रहण और वैष्णवधर्मके विरुद्ध प्रचार आरम्भ किया। इसके बाद उस ब्राह्ममतको परित्यागकर उन्होंने एक किसी योगीको प्रकृत (सच्चा) साधु समझा एवं योगमिश्रित मतवाद अवलम्बनकर बहु शिष्य करने लगे।

एक दूसरे विश्वविख्यात धर्म-नेता पहले शिव भक्त थे। शिवरात्रि-दिवस दिन भर उपवास रहकर जब रात्रिके दूसरे प्रहरमें किसी शिवमन्दिरमें शिव पूजा करनेके लिये गये तो देखा कि कितने चूहे शिवलिङ्गके सामने रखे हुए नैवेद्यको खा रहे हैं और शिवलिङ्गके ऊपर अनायास घूम रहे हैं, इसको देखते ही उनकी शिवभक्ति जड़से नष्ट हो गयी! वे यह प्रचार करने लगे कि यदि शिव सर्वशक्तिमान ईश्वर हैं, तो चूहे उनके ऊपर क्यों विचरण कर रहे हैं? इसके बाद वे सन्यासी होकर भगवद्विग्रह और श्रीमद्भागवतका दोष अनुसन्धानको ही 'सत्यानुसन्धान' कहते हुए संसारमें प्रचारकर एक विराट् आध्यात्मिक-सम्प्रदाय रचना कर गये। इस जातिके सैकड़ों व्यक्ति सत्यानुसन्धानके बहाने आध्यात्मिक और हरिगुरु-वैष्णवापराधी हो गये हैं और हो रहे हैं!

प्रायः बीस वर्षोंकी बात है कि श्रीगौड़ीयमठका आश्रित होनेका अभिनय कर कोई एक सज्जन प्रबल सत्यानुसन्धित्साका अभिनेता होकर जाति-गोस्वामी और वेतन लेनेवाले प्रचारकोंके विरुद्ध प्रचारक हो गये। वे अपने जीवनमें सभी धर्म-मत और सभी सम्प्रदायके नेताओंके साधुत्व और गुरुत्वका आस्वादनकर अन्तमें वैष्णव-धर्मके स्तावक हुए। श्रीश्रीविश्व-वैष्णवराजसभाके प्रचारकोंकी कथा आध्यात्मिक कर्णोंसे श्रवण कर वे प्रकृत भक्ति और भक्तका स्वरूप न समझकर उसके सुविख्यात महाजनके निन्दक हो गये और उनका असद्गुरु परित्याग एवं सद्गुरु और सत्सङ्ग प्राप्त हुआ है, यह बड़े बड़े सभासमितियोंमें प्रबन्धमें और निबन्धमें प्रचार करते रहे। वैष्णवधर्म और वैष्णव सद्गुरुके सुखके आस्वादनका "शौख" थोड़े ही दिनोंमें मिट जानेसे उन्होंने श्रीमद्भागवत और श्रीचैतन्यचरितामृतसे भी ख्रीष्टीय धर्मपुस्तकमें अधिकतर सौन्दर्य देखा! महाप्रभुसे भी ख्रिष्टका अधिक माहात्म्य उपलब्धि किया! वैष्णव सद्गुरुके आचार और विचारसे उनका इन्द्रियतृप्तिविधान नहीं होनेसे, वे मनोधर्मके आवाहन और विसर्जनके चक्रमें पतित होते हैं। जिज्ञासा करनेसे वे अवश्य उत्तर प्रदान करते हैं कि "वे सत्यानुसन्धित्सु" हैं, यदि भूलसे किसी असत्यको ही सत्य समझकर ग्रहण किया है, तो उसीको लेकर वे क्यों चिरकाल बैठे रहेंगे? पञ्चोपासकगण इसी प्रकार मनोधर्मके आवाहन और विसर्जनरूप आध्यात्मिकताको ही सत्यानुसन्धित्सा समझकर नित्य नये साधुगुरुको प्रतिमा गढ़ते हैं और दूसरे मुहूर्तमें ही उसको तोड़ते हैं।

पुराणमें इस जातिके प्रवृत्तिविशिष्ट व्यक्तित्वके अनेक उदाहरण हैं। बाण राजाने शिवका एक सर्वश्रेष्ठ स्तावक कहकर अपनेको विख्यात किया था; किन्तु महादेवके निकटसे प्राप्त अस्त्र से ही अर्थात् सहस्र बाहुद्वारा ही महादेवके साथ युद्ध आरम्भ किया था।

वृक भी उसी प्रकार शिवके स्तावक थे। बहुत तपस्याकर वृकने वैष्णवराज शिवसे यह वर प्राप्त

किया कि वे जिसके मस्तकपर अपना हाथ रखेंगे, उस व्यक्तिकी उसी मुहूर्तमें मृत्यु हो जायगी। वृक ऐसा वर प्राप्तकर अपने इष्टदेवके वाक्यकी सत्यता-का प्रमाण करनेके लिये शिवके मस्तकपर ही हाथ रखनेके लिये उद्यत हुए। जो आध्यक्षिकताको ही सत्यानुसन्धित्सा समझते हैं, उनलोगोंका विचार भी ऐसा ही है। जब कोई प्रकृत साधु 'कृष्णभक्त और योषित्सङ्गीके' विरुद्ध प्रचार करते हैं, तो उस समय आध्यक्षिक उसी साधुके मस्तकपर हाथ रखकर उसकी परीक्षा करनेके लिये उद्यत होता है! महाप्रभुने "भाल ना खाइवे, आर भाल न परिवे" उपदेश दिया है, सुतरां रामचन्द्रपुरी वही अस्त्र महाप्रभुके अङ्गमें निक्षेप करनेकेलिये कृत सङ्कल्प हुए। रूप-कविराज वृकके समान श्रीनिवासाचार्य प्रभुके मस्तकपर हाथ रखकर उनके साधुत्व की परीक्षा करनेके लिये उद्यत हुआ था!

इस प्रकारकी प्रवृत्ति और चित्तवृत्तिके द्वारा परिचालित होनेसे कभी भी साधुका सङ्ग प्राप्त नहीं होता। संशयात्मा होकर गङ्गाके किनारे जल प्राप्त करनेकी आशामें नित्य नया असमाप्त कूप खननेसे परिश्रम ही केवल लाभ होता है, अर्थात न तो गङ्गा-का जल ही प्राप्त होता और न किसी एक कूपको धैर्य पूर्वक पूर्णरूपसे खोदकर उससे जल प्राप्त किया जाता; इस प्रकार गङ्गाके किनारे रहकर भी उस आध्यक्षिक व्यक्तिको जलके नहीं मिलनेके कारण प्राण त्याग करना पड़ता है। इस प्रकार आत्महत्या ही हरिगुरुवैष्णवके चिद्विलासके अस्वीकार करनेवाले निर्विशेषवादियोंको प्राप्त होता है।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने जैवधर्ममें कहा है,—

"साधु सर्वदा संसारमें हैं। केवल असाधुगण उनलोगोंको नहीं पहचान सकते इसीलिये साधुसङ्ग दुर्लभ होता है।"

(जैवधर्म ७ म अध्याय)

अन्यत्र श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने कहा है:—

"जीवनमें बहुत साधुओंके साथ साक्षात्कार होता है; किन्तु हमलोगोंके कपट व्यवहारसे हमलो-गोंको साधुसङ्गका कोई फल प्राप्त नहीं होता।"

(सज्जनतोषणी १५।१२)

साधुके अनुसन्धान करनेके समय हमलोग मुख्य बात भूल जाते हैं। हमलोग समझते हैं कि हमलोग अपनी विद्या, बुद्धि, सुनीति, विचारशक्ति, प्रभृति परिमाप-यन्त्रके (तौलनेके यन्त्रके) द्वारा साधुको पहचान सकते हैं! हमलोगोंके हाथमें कसौटीपत्थर है, उससे साधुरूप स्वर्ण और असाधु-रूप 'नकली सोने' को पहचान लेंगे। किन्तु विचारनेकी बात है कि हमलोगोंके हाथोंमें यदि 'कसौटी-पत्थर' हो तो हम हरक्षणमें तोड़ने और गढ़नेके दास क्यों बनते हैं? हमारे सिद्धान्तकी स्थिरता क्यों नहीं है? हमलोग विभ्रान्त (अस्थिरचित्त) और वाञ्छित क्यों होते हैं? जिनके निकट 'कसौटी पत्थर' है, वे तोड़ने और गढ़नेके अर्थात् मनोधर्मके दास नहीं हैं, उनके सिद्धान्तमें अस्थिरता नहीं है, हृदयमें संशय नहीं है, चित्तमें दोलायमान वृत्ति (करूँ कि न करूँ) नहीं है, निष्ठाके मध्यमें यवनिका-पात नहीं है; उनके पातिव्रता-धर्मके मध्यमें व्यभिचा-रिणीकी चित्तवृत्ति नहीं है, उनको कोई असाधु साधु कहकर वञ्चना नहीं कर सकता, उनके निकट कोई प्रकृत साधु आत्मगोपन भी नहीं कर सकता।

साधुकी कृपासे ही साधुको पहचाना जाता है, साधुकी दी हुई आँखसे साधुको देखा जाता है, साधुके निकटसे प्राप्त दिव्यज्ञानके द्वारा ही साधुकी

किया मुद्रा उपलब्धि की जाती है—इसी प्रकारसे प्रकारसे प्रकृत साधुका अनुसन्धान होता है।

श्रीगौरपार्षद जगदानन्दने गीतमें कहा है :—

"साधु पावा कष्ट बड़ जीवेर जानिया।
साधु-गुरुरूपे कृष्ण आइला नदिया॥"

किन्तु श्रीरामचन्द्रपुरीकी आँखने गौरसुन्दरका साधुत्व देखनेके बदले जिह्वा-लाम्पट्य दर्शनकी, नवद्वीपके पाखण्डी हिन्दू महाप्रभुमें साधुत्व दर्शन करनेके बदले नाना प्रकारका असदाचार और दुर्नीति देखा करते थे। अमोघने महाप्रभुकी साधुता दर्शन करनेके बदले पेटूपना देखा किया।

प्रद्युम्न मिश्रने आध्यक्षिक आँखसे सबसे श्रेष्ठ विद्वत्मन्यासी राय रामानन्दमें योषित्सङ्ग (!) दर्शन किया है। •श्रील गदाधर पण्डितने लोक शिक्षाके लिये पुण्डरीक विद्यानिधिकी साधुता देखनेके बदले विषय और विलास दर्शन करनेका अभिनय किया है। किन्तु उनलोगोंके परवर्ती आचरणसे यही शिक्षा मिलती है कि साधुकी कृपासे ही साधुका सन्धान मिलता है। साधुकी कृपासे साधुका अनुसन्धान न कर अन्य चेष्टा द्वारा साधुका अनुसन्धान करनेसे अपराध और निर्विशेषवादमात्र प्राप्त होगा।

निर्विशेषवादीके समान अभागा और कोई नहीं है। बल्कि पापी सविशेषवादी एक प्रकारसे अच्छे हैं, किन्तु तपस्वी निर्विशेषवादी किसी प्रकारसे अच्छे नहीं। उनका सङ्ग सबसे बड़ा दुसङ्ग है। श्रीचैतन्यभागवत-रचयिताने यह बार-बार कहा है। धर्म-जगत्में पापने जितनी नुकसानी नहीं की है, निर्विशेषवादने उसकी अपेक्षा करोड़गुणा अधिक नुकसान पहुँचाया है। चार्वाकका मत धर्ममतके नामसे बहुत कम गृहीत हुआ है। किन्तु सिद्धार्थका मत, महावीर, पारशनाथ प्रभृतिका मत, अष्टावक्र, शक्ति प्रभृतिका मत, शंकराचार्यका मत, पृथ्वीके सैकड़ों तथाकथित धार्मिक लोगोंने श्लाघ्य (धन्यवाद देने योग्य) धर्म मत समझकर ग्रहण किया है। इसका कारण यह है कि उनलोगोंकी सुनीति, त्याग-तपस्याके ऐश्वर्यसे जीवकी आँख भर गयी। एक-मात्र गौरभक्तोंने ही इस प्रकार आध्यात्मिकताके प्रति घृणा प्रदर्शनकर चिद्विलासका जयगान किया है।

साधु और गुरुका अनुसन्धान करनेके समय भगवद्बहिर्मुखतासे उत्पन्न निर्विशेषवाद-दैत्य हम-लोगोंके सत्यानुसन्धानके रास्तेको बन्द कर देता है। उस दैत्यके प्रभावसे हमलोग समझते हैं कि इन्द्रिय-निग्रहकारी तपस्वी ही प्रकृत साधु हैं। हरिगुरु-वैष्णवके चिद्विलासका लोप कर देना ही निर्विशेष-वाद-दैत्यकी प्रतिज्ञा है।

श्रीमन्महाप्रभुने गुरुकी कोई दूसरी संज्ञा न देकर केवल यही कहा है,—"येई कृष्णतत्त्ववेत्ता सेई गुरु हय" किन्तु कर्मी, ज्ञानी, योगी-सम्प्रदाय कृष्णतत्त्ववेत्तृत्व वा कृष्णमें अन्यान्य शरणागति रूप किसी लक्षण को गुरु और साधुका लक्षण कहकर वर्णन नहीं करते हैं। अर्थात् कर्मी, ज्ञानी, अन्याभिलाषी योगी-सम्प्रदायके तटस्थ लक्षणके प्रति अधिक आदर, और सविशेष-वादियोंके निकट स्वरूप लक्षणके प्रति अधिक आदर देखा जाता है।

प्रच्छन्न आध्यक्षिक तथाकथित साधुके दोषका अनुसन्धानकर साधु और गुरु-परित्यागके प्रति बहुत उत्साही रहते हैं; किन्तु अपने रिपु और मनोधर्म-रूप दुष्ट गुरुका सङ्ग परित्याग करनेके उद्योगी नहीं हैं। अपने ६ रिपुओंकी चंचलता, मनोधर्मका ताण्डव नृत्य, सिद्धान्तके अस्थिरताको वे यत्नपूर्वक अनुकूल खाद्यादिदानकर पोषण करते रहते हैं! वे समझते हैं कि अपना मङ्गल-संग्रह और दूसरेका

उपकार करनेके लिये ही वे प्रकृत साधुके अनुसन्धान-में आध्यात्मिकताका पोषण करते रहते हैं; किन्तु भक्तिवृत्तिके बढ़नेके बदले आध्यात्मिकताके बढ़नेसे उनलोगोंका अपना और दूसरोंके मङ्गलका अनुसन्धान मायामृगके पीछे दौड़नेके व्यापारके समान हो जाते हैं। भगवद्भक्तका पथ ऐसा नहीं है। मापनेका धर्म भगवद्भक्ति नहीं है। भगवद्भक्त कृपाके अवतारके लिये अत्यन्त धैर्यशील और सहिष्णु होकर सेवाका पथ वरण करते हैं। पहले सत्यानुसन्धान, इसके बाद सेवा, यह आध्यात्मिक निर्विशेषवादीका पथ है; भगवद्भक्तिका पथ नहीं है। सेवाके साथ साथ कृपाका अवतार, सत्यका स्वतः-प्रकाश और सत्यका सुदृढ़ परिचय भक्तिके पथमें पाया जाता है। भक्त सेवाके पथमें ही सत्यका अनुसन्धान प्राप्त करते हैं, सेवा छोड़कर आरोह चेष्टा-से सत्यका वा साधु-गुरुका अनुसन्धान नहीं करते। सेवा छोड़नेसे, और प्रीतिपूर्वक सेवामें सर्वदा नहीं लगे रहनेसे बुद्धियोग कहां पाया जायगा? साधुकी कृपाके बिना कौन प्रकृत साधुका अनुसन्धान प्रदान करेगा? यदि तपस्या, वैराग्य, पाण्डित्य, सुनीति, विचारशक्ति ये सब प्रकृत साधुका और गुरुका सन्धान देते, तो अभक्तिके द्वारा ही भक्तिका सन्धान प्राप्त होता है और धर्म ज्ञान, योग, वैराग्य, तपस्याके द्वारा कृष्ण-पादपद्मका सन्धान प्राप्त किया जाता है—यही प्रमा- णित होता। यदि प्रत्यक्ष ज्ञानके द्वारा साधुका दर्शन प्राप्त होता तो महाजन लोग साधुकी वाणीका शुश्रूषु और सेवोन्मुख कानसे ही साधु-दर्शनकी कथाका उपदेश नहीं करते।

साधुके आचार और प्रचारके सामञ्जस्यको ही आध्यात्मिकता किस प्रकारसे माप सकेगा? "वैष्णवेर क्रियामुद्रा विज्ञे ना बुझय।"—महाजनका यह सिद्धान्त-वाक्य क्या वाँझ युक्ति-विशेष है? श्रीचैतन्य-भागवतकारकी ये सब बातें क्या निरर्थक हैं?

अधिकारी वैष्णवेर ना बुझि' व्यवहार।
ये जन निन्दये, ता'र नाहिक निस्तार॥
अधमजनेर ये आचार, येन धर्म्म।
अधिकारी वैष्णवे ओ करे सेई कर्म्म॥
कृष्ण-कृपायसे इहा जानिवारे पारे।
ए सब सङ्कटे केह मरे, केह तरे॥
—चै० भा० अ ९।३८७-३८६।

श्रील प्रभुपादने कहा है,— 'अनधिकारी व्यक्ति वैष्णवको और अवैष्णवको बराबर समझनेके कारण नरक गमन करते हैं। वे वैष्णवके मध्यमें दुष्टका दुराचार दर्शन करते हैं; किन्तु यथार्थमें वैष्णव कभी भी दुराचारी नहीं हैं।" भगवत्-कृपा नहीं होने-से भक्तचरित्रके तात्कालिक दर्शनसे किसीका सर्वनाश होता है एवं कोई अपराधसे न कर अपराधसे दूर रहते हैं। जो सावधान होकर श्रीमद्भागवत पाठ नहीं करते और भक्तोंका अलौकिक चरित्र नहीं समझते, उनलोगोंको अमङ्गल प्राप्त होता है। किन्तु प्रकृत भगवद्भक्तको भगवान दिव्य बुद्धि प्रदान करते हैं, उनलोगोंके किसी अमङ्गलकी आशङ्का नहीं रहती। विपज्जनक व्यापारसमूह होनेसे भी उनलोगोंको अमङ्गल प्राप्त नहीं होता। न्यूनाधिक साठ वर्ष पहले श्रीस्वरूप दास बाबाजी महाशयके प्रतिभी श्री-कृष्णने इस प्रकारकी कृपा-परीक्षा लीलाका प्रकाश किया था।

(गौड़ीय भाष्य)

पुरीके कन्था धारण करनेवाले श्रीरघुनाथदास बाबाजी महाशय, जिसके सम्बन्धमें श्रील ठाकुर भक्ति विनोदने बाबाजी महाशय सिद्धपुरुष हैं सुतरां सब बात जानते (स्वलिखित जीवनी १२१ पृ:) ऐसा

लिखा है वे भी एक बार श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका चरित्र न समझ सके जिससे उनको अपराध हुआ था। यही बात कहकर उन्होंने ठाकुरके निकट क्षमा भिक्षा की थी। इसलिये "वैष्णवेर क्रिया मुद्रा विज्ञे ना बुझय"—यह महाजन वाक्य सर्व प्रकारसे सत्य है।

श्रीरघुनाथदास महाशयके समान वैष्णवभी जब भगवद्भक्तका चरित्र देखनेमें असमर्थ होनेका अभिनय करते हैं, तो मनोधर्म वशीभूत अनर्थयुक्त, दोष-चतुष्टयके आधीन व्यक्तिगण भगवद्भक्तकी क्रिया मुद्रा और चरित्र समझनेमें असमर्थ हों, तो इसमें और आश्चर्य क्या है? मनोधर्मके कहनेमें पड़कर यदि हमलोग गुरुवैष्णवापराध करें, तो क्या किसी दिन मङ्गल प्राप्त कर सकेंगे? अतएव साधुके अनुसन्धान करनेके समय हमलोग आध्यात्मिकताको ही साधु गुरु न कर बैठें, महत् (सच्चा साधु) के छिद्रानुसन्धित्साको सत्यानुसन्धित्सा न समझें और प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा प्रतारित होकर अप्राकृततत्व की अवहेलना न करें। जो इस भक्तिके अनुकूल विचारको, वा अन्वय विचारको वरण न कर नित्य नई प्रतिमा गढ़ने तोड़नेके विचारमें दौड़ा फिरेगा उस आध्यात्मिक परामर्शमें अन्तमें नाशके सिवाय और कोई फल प्राप्त नहीं होगा।

श्रीरामानुजाचार्यकी उपदेशावली

पूर्व महाजनोंकी शिक्षाके प्रति दृढ़ विश्वास रखना।

इन्द्रियोंका दास होकर न रहना।

सांसारिक ज्ञान-प्राप्तकर सन्तुष्ट न होना।

भगवान्‌के गुण और लीला-कीर्त्तनविषयक ग्रन्थादि पाठमें रुचिविशिष्ट रहना।

श्रीगुरुदेवकी कृपासे जब एकबार प्रज्ञान-नेत्र उन्मीलित हो जावे, तब फिर मायाके मोहमें न भटकना।

इन्द्रियज सुख और दुःख दोनोंके प्रति समान भावसे उदासीन रहना।

भगवन्नाम और महिमा-कीर्त्तनमें जिस प्रकार आनन्द होता है उनके सेवकोंके नाम और महिमा कीर्त्तनमें भी तुम्हारा उसी प्रकार उत्साह हो।

तुम्हारे हृदयमें यह दृढ़भावसे अंकित रहे कि भक्तकी सेवामें जो सर्वदा नियुक्त हैं, वे जितना शीघ्र भगवत्पादपद्म प्राप्त करेंगे उतना शीघ्र दूसरा कोई प्राप्त नहीं कर सकता।

भगवान और उनके भक्तोंकी सेवामें पूर्णरूपसे नियुक्त नहीं रहनेसे महाज्ञानियोंका भी भ्रष्ट होना अनिवार्य है। कभी वैष्णवसेवाको उपायरूपसे ग्रहण न करना, वही उपेय है अर्थात वैष्णवोंके द्वारा अपना कोई अन्याभिलाष चरितार्थ मत करना। वैष्णवसेवाके लिये ही वैष्णवसेवा करना।

उपेयके प्रति सर्वदा लक्ष्य रखना, वहीं तुमको पहुँचना होगा।

भजन

जीव जाग जीव जाग गोराचांद (गौरचन्द्र) बले
कत (कितना) निद्रा जाओ माया-पिशाचीर कोले
(गोदमें) ॥१॥

भजिब बलिया एसे (आकर) संसार-भितरे।
भुलिया रहिले तुमि अविद्यार (शरीराभिमान) भरे
(वशमें) ॥२॥

तोमारे लइते आमि हेनु अवतार ।
आमि विना बन्धु आर के आछे तोमार ॥३॥
एनेछि औषधि माया नाशिवार लागि' ।
हरिनाम महामन्त्र लओ तुमि मागि' ॥४॥
भक्तिविनोद प्रभु-चरणे पड़िया ।
सेइ हरिनाम-मन्त्र लइल मागिया ॥५॥

प्रचार-प्रसङ्ग

कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठके प्रचारक श्रीसत्यनारायण ब्रह्मचारीजीने ता: २० जुलाईको पीलीभीत राजाके ठाकुरमन्दिरमें प्राय: दो सौ श्रोताओंके निकट छायाचित्र द्वारा कृष्णलीला प्रदर्शनकी तथा प्राय: डेढ़ घन्टेतक वक्तृता दी। सभामें राजासाहब तथा उनके कर्मचारियोंने हरिकथा सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक उनकी प्रशंसाकी। सभाके पहले तथा पीछे संकीर्त्तन भी हुआ। उक्त ब्रह्मचारीजी महोदय पीलीभीतके विभिन्न स्थानोंमें श्रीचैतन्य-वाणीका प्रचारकर लखनऊ शहरमें पधारे हैं।

उपदेशक श्रीपाद निताइदास ब्रह्मचारी भक्तिशास्त्रीजीने बम्बे नगरमें साण्टाक्रुश-प्रवासी श्रीयुत केदारनाथ भार्गव बी ए महोदयके भवनमें गत पहली जुलाईको चातुर्मास्य व्रतारम्भके दिन श्रीमद्भागवतसे "अजामिल" उपाख्यानका हिन्दी भाषामें पाठ और व्याख्या कर कुछ सज्जनोंके परिप्रश्नोंका सदुत्तर दिया। दूसरे दिन पतितपावन ब्रह्मचारीजीने साण्टक्रुश-प्रवासी प्रसिद्ध व्यवसायी एम्. के. चोकसीजीके भवनमें श्रीमद्भागवतके कुछ विषयोंको लेकर गुजराती भाषामें हरिकथाकीर्त्तन किया था। गत १८ वीं जूनकी रथयात्राके दिन प्रात:काल श्रीचैतन्यमठमें महामहोपदेशक श्रीपाद नारायणदास भक्तिसुधाकर प्रभुने श्रीचैतन्य भागवत पाठ और व्याख्या की थी। १ बजे मठाश्रित और मठवासी भक्तवृन्दने संकीर्त्तन शोभायात्राके साथ श्रीधामके सभी मठ और श्रीमन्दिरादिकी परिक्रमा की। ३ बजे अविद्या-हरण नाट्यमन्दिरमें एक बड़ी सभामें महोपदेशक श्रीपाद किशोरीमोहन भक्तिबान्धव बी-एल् महोदयने वक्तृता दी।

मूल मठ श्रीचैतन्यमठके एकमात्र शाखा कटकके श्रीसच्चिदानन्द मठका वार्षिक उत्सव गत २८ वीं जून वृहस्पतिवारसे श्रीश्री विश्व वैष्णव राजसभाके वर्तमान पात्रराज गौड़ीयमठाचार्यके आनुगत्यमें संकीर्त्तन द्वारा आरम्भ हुआ।

श्रीभक्तिविनोद-विरह महामहोत्सव

श्रीगोद्रुमस्थ स्वानन्दसुखदकुञ्जमें नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिविनोद ठाकुरके प्रिय प्रवीण शिष्यवर, गौड़ीय मिशनके चेयरमैन, त्रिदण्डिपादाग्रणी श्रीपाद भक्तिप्रदीप तीर्थ गोस्वामी महाराज प्रमुख शुद्ध भक्तगणने श्री श्रीविरह महा-महोत्सव सम्पादन किया है।

श्री श्री विरह-महामहोत्सवके दिन प्रात:काल श्रील तीर्थ गोस्वामी महाराजको अग्रणी कर श्रीधामवासी सेवकवृन्दने नगरसंकीर्त्तन द्वारा श्रीनामहट्टके परिमार्जक-लीलाभिनयकारी श्रीश्रील ठाकुर भक्तिविनोदकी आराधना की। इसके बाद गौड़ीयकी श्री श्रीभक्तिविनोद-विरह संख्या से श्रीश्रील ठाकुर-रचित "भक्तितत्वविवेक" प्रबन्ध सभाके मध्यमें पढ़ा गया। भोगारात्रिकके बाद कीर्त्तन द्वारा महाप्रसाद दिया गया।

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है । प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है । हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रावलीका पाठ करनेका अनुरोध करते हैं ।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ नैतिक अवस्था, शिक्षा, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगत्‌की अवस्था, समसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व तथ्य और प्रमाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भावमें साधारणके पढनेके योग्य वर्णन किया गया है । ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं । सुन्दर जिल्द, भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा । भिक्षा १) । प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकत्ता । श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० बोसारी, ढाका ।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवनके मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है । निर्मत्सर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे । वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें पुष्टिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें । विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं । भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या' —गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणोंकी गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुमण्डित होकर प्रकाशित हुई है । श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा ।।) आना ।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामे बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित । भिक्षा ।।।) मात्र । प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ ।

अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ । बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण । पहले प्रति अध्यायके प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्यविरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपादका सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्त्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है । इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्रभी संयोजित हुआ है । भिक्षा २) मात्र ।

Printed by :—Mukunda Madhab Das Brahmachari, at the Ramesh Printing Works
and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः
श्री श्रीगुरुपूजा संख्या Regd No. P. 468.
वर्ष ५] संख्या ६]

भागवत

एकमात्र
पारमार्थिक
मासिक पत्र

६ हृषिकेश
गौराब्द
४५३

भाद्र कृष्ण ६
संवत्
१९९६ वि०

प्रति संख्या) ॥ | स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥ | वार्षिक १)

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि-लक्षणा फलाभिसन्धान-रहिता ऐकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है—उसी भक्तिके बलसे अनर्थ शमन होनेपर आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है ।

सम्पादक—उपदेशक पं० श्री रूपविलास ब्रह्मचारी भक्ति शास्त्री बी० ए० ।
Editor :—Upadeshak Pandit Sree Rupvilas Brahmachari, Bhaktishastri B A.

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

विषय सूची

भक्तिके अन्यान्य पत्र

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

भागवत

श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना)

वर्ष ५ — संख्या ७-८

भाद्र कृष्ण ६, ४५३ सं० १९९६ वि०, ४ सितम्बर सन १९३९ ई०

प्रवृत्ति तथा निवृत्ति (२)

(ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

भागवतकी गत संख्यामें प्रवृत्ति सुखका वर्णन किया गया है। ऐसे सुखके अतिरिक्त जीवके लिये और एक प्रकारका सुख है। गम्भीररूपसे विचार करनेसे निवृत्ति-सुखके उत्पत्ति-स्थानकी उपलब्धि होती है। निवृत्ति-सुख किसको कहते हैं, इसकी व्याख्या होनी चाहिये। जीव कौन है, यह पहले विचार करना आवश्यक है। इस मनुष्य शरीर में त्वक्, चर्म, मांस, रुधिर, मेद, मज्जा, अस्थि प्रभृति सात पदार्थ देखनेमें आते हैं। इनसे जीवको क्या सम्बन्ध है? त्वक्, अस्थि प्रभृति पदार्थ प्राकृत अर्थात् भौतिक हैं किन्तु जीव इन सबोंके अतिरिक्त दूसरा पदार्थ है, जिसके बहुतसे प्रमाण हैं। देह के वियोग होनेपर त्वक्, मज्जा प्रभृति पदार्थ देहमें ही रहते हैं, किन्तु किसके अभावमें ये सब शून्य मालूम पड़ते हैं, यह विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। चक्षु शीतल होकर पुतलीके चक्षुके समान स्थिर रहता है, हाथ-पांव स्पन्दनहीन हो जाता है, बन्धुबान्धव हा हा करके रोते हैं,—किन्तु वियुक्त देह किसी को भी उत्तर नहीं देता! अहा! यह विषय कितना गम्भीर है!! जो देह अपनी सुन्दरता से वेशविन्यास द्वारा कितनी ही रमणियोंका मन हरण करता था, जो चक्षु अनुवीक्षण यन्त्र द्वारा कल ही ध्रुवतारा तथा अरुन्धतीकी दूरीको निर्णय करता था, जो कर्ण नाना प्रकारके मधुर स्वर मिले हुए उत्कृष्ट संगीतज्ञके टप्पे श्रवण करके मोहित

होता था, जो हाथ [illegible] खड्ग, वर्म, बन्दूकादि धारणकर स्वदेश रक्षा तथा शत्रुदलन करता था, जो [illegible] दिन [illegible] भ्रमण कर आया था, वहाँ आज कुत्ते तथा शृगालादिके महोत्सवका [illegible] हुआ है। यह सब विचार करके कौन महाजन [illegible] नहीं होगा? पाखण्ड लोग भी थोड़े समयके लिये वैराग्य-विस्तारक वाक्य कहते हैं, परन्तु विषयमें अत्यन्त विक्षिप्त रहनेके कारण [illegible] उन बातोंको भूल जाते हैं।

[illegible] आवरणोंसे युक्त देह ही जीव [illegible] नहीं हो सकता। जीव स्वयं [illegible] विख्यात है। प्राकृत [illegible] जो वर्तमान सम्बन्ध है, [illegible] सकता। प्राकृत पदार्थमें [illegible] 'रस' [illegible] नितान्त तुच्छ [illegible]। प्राकृत [illegible] पदार्थसे जीवको [illegible] हो सकता। प्राकृत पदार्थ [illegible] उत्पन्न करनेवाला है। [illegible] विलक्षण वस्तु है। जीवात्मा सर्वदा स्वाभाविकः किसी अनिर्वचनीय आनन्दके अनुसन्धानकी लालसा करता रहता है। प्राकृत पदार्थसे उस आनन्दका आभास भी प्राप्त नहीं होता। बल्कि भौतिक देहसे आबद्ध होकर जीवका कई प्रकार अकल्याण होता आया है। जीव प्रकृतिके अधीन होकर अपने स्वाधीनता-सुखको अनुभव करनेमें असमर्थ है। क्षुधा, पिपासा-प्रभृति छः प्रकारकी आपत्तियां सर्वदा जीवको यन्त्रना देती रहती हैं। भौतिक पदार्थोंके बीच जीवके प्रवेशको 'बद्धभाव' कहा जाता है। समस्त वैष्णव इस प्रकारके अवस्था-प्राप्त जीवोंको 'बद्धजीव' कहते हैं। फलतः उनलोगोंको किसी किसी मुक्त जीवका आभास प्राप्त हो जाता है।

भौतिक पदार्थोंमें जीव जिस समय आबद्ध होकर सुखान्वेषण करता है, उस समय माया-प्रकृतिस्थ प्रवृत्ति-सुख, उसको अपना अतिथि बनाकर और उसे मोहित करके रखता है। ऐसी अवस्थाको प्राप्त पुरुष सांसारिक पदार्थ-सुख, कल्पित इन्द्रत्व, ब्रह्मत्व, तथा शिवत्व प्रभृति पदोंकी आशाकर चिरकाल दुःखके उपरान्त दुःख भोग करता रहता है। जीव मनमें सोचता है कि जो ऊँची ऊँची अट्टालिकायें हैं तथा जो नाना प्रकारके सुन्दर उपकरण तथा सुन्दरी स्त्री, पुत्रादि हैं और जो ये रेल तथा वार्तावहादि यन्त्र हैं उसी प्रकार ये जो नियमित और नियन्त्रित राज्य-शासन तथा पदार्थ-विज्ञानकी आविष्क्रियायें हैं वे ही जीवनके उद्देश्य हैं। अहा! कैसा कठिन भ्रम है! यदि वैज्ञानिक आविष्क्रिया-द्वारा और समस्त राजनियमोंके अनुष्ठानसे उनका ४०० वर्षों तक देहान्त न होता, तब अवश्यही कुछ अंशोंमें उनकी जय स्वीकारकी जाती। नास्तिक वैज्ञानिक तथा भक्तिहीन तार्किक इस संसारकी उन्नतिके द्वारा जीवकी परमायु वृद्धि तथा अनन्त उन्नतिकी कल्पना करते हैं। अहा! उनलोगोंका भ्रम कितनी दूर तक है! प्राचीनकालसेही भौतिक विज्ञानकी उत्तरोत्तर उन्नति होती जारही है। ग्रीसदेशके थेलिस नामक पण्डितने जिस समय जलसे सभी पदार्थोंकी उत्पत्तिकी बात बतलाई, उस समय लोगोंने विज्ञानसे अनेक प्रकारकी आशायेंकी थी। बेकन, निउटन, लामार्क, गोयटी प्रभृति अनेक नवीन तत्ववादी नाना प्रकारके चिन्तामणिका आविष्कार करकेभी जीवका कोई प्रकृत (सच्चा) मङ्गल साधन न कर सके। चुम्बक, रेल, बन्दूकके अतिरिक्त अनेक शिल्प सम्बन्धी आविष्क्रि-

तियां हुईं, किन्तु उनके द्वारा मानवजातिका संसार-सुख क्या बढ़ सका है? हमारी ऐसी युक्तियोंसे नवीन-सम्प्रदायको सन्तोष नहीं होगा, क्योंकि वे बालकालसे ही इन सब विषयोंमें कुसंस्कृत हैं। रेल और जहाज प्रभृतिके द्वारा जो बहुत प्रकारके वाणिज्यादिकी उन्नति हुई है उसका असल कारण विज्ञानके खोज ही हैं, यही लोगोंका दृढ़ विश्वास है और यही बात बचपनसे ही वे सुनते आ रहे हैं। किन्तु निरपेक्ष होकर विचार करनेपर पता चलता है कि उनके द्वारा जैसे कई बातोंमें सुविधा हुई है, वैसेही कई बातोंमें नाना प्रकारकी दुःखदायिनी असुविधायें भी आ खड़ी हुई हैं। 'स्वल्पे सन्तोष' 'थोड़े में सन्तोष' का नाम भी अब सुननेमें नहीं आता। यह बात अब पौराणिक कथा मात्रही रह गई। सन्तोषकी इस कमीको कौन स्वीकार नहीं करेगा? सन्तोष ही जीवका अमूल्य रत्न है। आशाका अन्त नहीं। आशारूपी मत्त-रमणी इन्द्र-लोक, ब्रह्मलोक तक प्राप्त करके सन्तुष्ट नहीं होती। आशाही जीवका प्रधान शत्रु है। नेपोलियन बोनापार्टके आधुनिक इतिहास और दुर्योधन-रावणादिके पौराणिक वृतान्तपर जो मनन करते हैं उन्हें इस संसारमें आगे और किसी आशाकी आशा नहीं रहती। इस समय जो सन्तोषके अभावसे आशाकी वृद्धि हुई है, उसकी थोड़ीसी आलोचना करनेसे निःसन्देह यह पता चलेगा कि इस संसारमें प्रवृत्ति-मार्गावलम्बी पुरुषोंके जो उन्नति सम्बन्धी भाव हैं वे निकृष्ट हैं, आशा अनर्थमूलक है इसका प्रमाण श्रीमद्भागवतमें है :—

> आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखं।
> यथा संछिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला॥
> (भा० ११-८-४४)

यद्यपि पदार्थ-विद्याकी अनुपयोगिता हम स्वीकार नहीं करते, तथापि उस विद्याकी उन्नतिसे जीवको प्रत्यक्ष क्या लाभ हुआ यह देखनेमें नहीं आता। गम्भीर विचारक इस विषयपर बहुत चिन्ता करते आये हैं। जर्मनी देशवासी एक महापुरुषने अनेका-नेक तत्व-विद्याका आविष्कार करके अपनेको कई प्रकारके नियमोंका सृष्टिकर्त्ता समझकर एक दिन सन्ध्या समय अपने पुस्तकालयमें बैठकर कहा,—"हाय मैंने समस्त पदार्थ-विद्यामें नये सत्यका आविष्कार किया है यह बात प्रसिद्ध होगई है; किन्तु इससे मुझे क्या शिक्षा मिली? सामान्य मूर्ख और मुझमें क्या भेद है?" तब उन्होंने बहुत सोचकर कहा,—"आज मुझे विशाल लाभ हुआ है, जिससे मुझे पता चला कि किसी एक विषयका भी सत्य स्वरूप मैं नहीं जानता!" यह वृत्तान्त "फाउस्ट" नामक एक अपूर्व ग्रन्थमें वर्णन किया गया है। सुइडेनबर्ग नामक एक महापुरुष भी इसी प्रकारके नतीजेपर पहुंचा था। नवीन-सम्प्रदायके लोगोंकी विदेशी ग्रन्थ तथा पाण्डित्यमें अधिक आस्था होती है, इसीलिये यहांपर मैंने विजातीय उदाहरण दिया। हमलोगोंके स्वदेशीय शास्त्रमें इन सब विषयोंके अनेकानेक प्रमाण हैं। केवल एक प्रमाण यहांपर दिया जाता है। श्रीमद्भागवत द्वितीय, शुकवाक्य—

> शाब्दस्य हि ब्रह्मण एष पन्था यन्नामभिर्ध्यायति धीरपार्थैः।
> परिभ्रमंस्तत्र न विन्दतेऽर्थान मायामये वासनया शयानः॥

स्वामिकृत टीकाच-शाब्दं शब्दमयं ब्रह्म वेदस्तस्य एष पन्थाः कर्म्मफलबोधनप्रकारः। कोऽसौ? अपार्थैरर्थशून्यैरेव स्वर्गादिनामभिः साधकः ध्या-यति तत्तदिच्छां करोतीति यत्। अपाधन्यसवाह तत्र

मायामयं पथि सुखमिति शमनया शयानः स्वप्नान् पर्य्यन्निव परिश्रमनर्थान्न विन्दति, तत्तल्लोकं प्राप्तोऽपि निरवद्यं सुखं न लभत इत्यर्थः ।

किन्तु 'जीवका नित्य सुख क्या है' इस विषयको विचार करनेसे देख पड़ेगा कि 'स्वाधीनताही जीवका नित्य सुख है' प्रकृतिकी आधीनता प्राप्त करनेसे जीवको दुःख उदय हुआ है। इस माया-प्रकृतिको अतिक्रम करके (पार होकर) जीवके स्व-स्वरूप-प्राप्तिका नाम मुक्ति है। इसको निवृत्ति-सुख कहते हैं। प्रवृत्ति-मार्गस्थित पुरुषोंको कर्मका फल भोगनाही पड़ता है; अतएव प्रवृत्त पुरुषोंको मायासे मुक्त होनेकी सम्भावना नहीं है। प्रवृत्ति-मार्गकी उन्नतिही उस मार्गमें चलनेवालोंको प्राप्त होती है। किसी काममें विपरीत फल नहीं होता; सजातीय फलही प्राप्त हुआ करता है। अतएव प्रवृत्ति कभी निवृत्ति प्रसव नहीं कर सकता। तब यदि भाग्यवश किसी प्रवृत्त पुरुषको प्रवृत्तिके प्रति अप्रवृत्ति उत्पन्न हो तो उसको शुभफल लाभ होता है। इस प्रकार अनेक लोग मायामुक्त हुए हैं।

बहुतसे आधुनिक तथा पुरातन युक्तिवादी पुरुष मुक्तिके विषयमें प्रतिवाद करते हैं। उनलोगोंका पहिला प्रतिवाद यह है "यह ब्रह्माण्ड ईश्वरका सृष्टि किया हुआ है, अतएव मनुष्यके लिये वाञ्छनीय है। जगदीश्वरने मनुष्योंको युक्ति-शक्ति द्वारा भूषित करके इस ब्रह्माण्डमें रहनेके लिये आज्ञा दी है। मनुष्य युक्तिशक्तिको चलाकर समाज और उस सम्बन्धमें बहुतसी व्यवस्थायें स्थापन करके संसारमें सुखभोग कर रहे हैं। अनेकानेक आविष्कार करके सुख तथा सुखके उपायका परिमाण बढ़ाया है तथा समय समयपर इस प्रकार उन्नति होते होते यह ब्रह्माण्ड भी एक अपूर्व क्लेशरहित धाम हो जायगा। मनुष्य उस समय अनायासही सर्वसुख भोग कर सकेंगे, यही भगवत् इच्छा है"

यह सब सिद्धान्त-विश्वास भी युक्ति-विरुद्ध है, कारण इसके विपरीत स्वतःसिद्ध दृष्टान्त देखनेमें आता है। स्वभावतः आत्माकी एक अप्राकृत आशा देखनेमें आती है। हे पाठकगण! हड्डी-चमड़ेकी स्थूल देह और मनोमय सूक्ष्म देह पार होकर आप आत्माके कमरेमें प्रवेश करके एकबार समाधि अवस्थामें इस विषयको देखें। तब देखेंगे कि आप पथिकके सदृश इस सात प्रकारके आवरणवाली देहमें वास कर रहे हैं और अपने धामको जानेके लिये गाढ़ी आशा कर रहे हैं। श्रीजगन्नाथधामके यात्री जिस प्रकार पथमें किसी एक गृहमें वासकर रात्रि बिताकर अरुणोदयकी अपेक्षा करते हैं, उसी प्रकार आपलोग भी इस प्राकृत देहमें अज्ञानरूप रात्रि बिताकर ज्ञानरूप सूर्यकी अपेक्षा कर रहे हैं। सरायमें आसक्त होकर कौन मूर्ख उसकी उन्नतिकी चेष्टा करेगा? यात्री कभी ऐसी चेष्टा नहीं करेगा। तब इस सरायमें निवास करानेके द्वारा जिसको लाभ होता होगा और जो उसका अधिकारी होगा वही व्यक्ति उस काममें हाथ लगावेगा। जिस पुरुषने इस पाञ्चभौतिक सरायकी सृष्टिकी है, वही इसका पालनकर्त्ता है। कर्त्तव्यविमूढ़ यात्रीलोग इस सरायमें आसक्त होकर इसकी उन्नति करते हैं और ईश्वर भी इन सब व्यक्तियोंके द्वारा अपना काम चला लेते हैं। इसमें उनकी असीम कौशलका परिचय मिलता है। जिन कारणोंसे पथिक उसमें आसक्तिरूप जो अपराध करते हैं, उसके दण्डमें उनको अनावश्यक परिश्रम करनेके लिये बाध्य होना पड़ता है। पूर्वपापक्षयरूप फलके सिवा और कुछ प्राप्त नहीं होता है, वरन् उन सबोंकी आसक्ति गाढ़ी हो

जाती है और वे वहां वास करके अपनी बञ्चना करते हैं। जीव इस मायिक ब्रह्माण्डका चिरनिवासी नहीं है, यह बात स्वतः सिद्ध है, अतएव इसको ब्रह्माण्डकी प्रजा कहनेसे विश्वासविरुद्ध वाक्य हो जाता है। यह भौतिक ब्रह्माण्ड कितनाही उन्नति क्यों न करे, निर्दोष नहीं होगा। कभी भी इससे विमल सुख प्राप्त नहीं होगा। यह भी एक स्वतः सिद्ध विश्वास है। पञ्चभूतकी उत्पत्ति मायासे है, अतएव इसमें सदाही अभाव बना रहता है। अभाव ही इसका स्वभाव है, अतएव भौतिक ब्रह्माण्ड किसी कालमें अभावरहित नहीं होगा। पूर्णता नहीं होनेपरभी विमल सुखकी आशा कभी की जायगी, ऐसी बात नहीं है। इस मायिक ब्रह्माण्डकी कितनी उन्नति क्यों न हो, देश, काल प्रभृति परिच्छेदक गुण कहां जायगा ? यूरोप और अमेरिका देशके अनेक...तत्ववित् पण्डितभी इस सम्बन्धमें बहुत भ्रममें पड़ गये हैं। कोई कोई "इन भूतोंकी क्रमोन्नतिके द्वारा अप्राकृतत्व प्राप्त होगा", ऐसा स्वीकार करते हैं। हाय ! वे युक्ति करनेके समय परमेश्वरके अचिन्त्य शक्तिका ध्यान नहीं करते। यदि एकबार हृदयरूपी कन्दरेमें परम-पुरुष भगवान्के सच्चिदानन्द भावका स्थापन करें, तब आगे उनके ऐसे सङ्कीर्ण तथा असंस्कृत तर्कका उदय नहीं होगा। परमेश्वर जब सर्वशक्तिसम्पन्न हैं, तब उनकी बनाई हुई अनन्त प्रकारकी सृष्टि हो सकती है। यह प्राकृत जगत्ही जो क्रमशः अप्राकृत हो जायगा इसका क्या प्रयोजन है ? क्या उनका एक अप्राकृत जगत् नहीं रह सकता है ? जो प्रकृतिको सम्पूर्ण जगत्का आदि कारण समझते हैं तथा एक महान् चैतन्यको स्वीकार करनेमें असमर्थ हैं, और उसपरभी एक चैतन्यस्वरूप पुरुषको प्रकृतिका सन्तान कहते हैं, वे ही केवल प्राकृत जगत्से अप्राकृत जगत्के प्रादुर्भावकी कल्पना कर सकते हैं। सेश्वरवादी पुरुषोंके ऐसा कहनेसे आश्चर्य्यान्वित होना पड़ता है। प्राकृत जगत् कभी अप्राकृत हो जायगा ऐसा कभी स्वीकृत नहीं हो सकता।

ऐसा प्रतिवाद युक्तिविरुद्ध भी है। परमेश्वरको वेद सत्यसंकल्प और सर्वशक्तिमान कहते हैं। जगदीश्वरने मनुष्योंकी उन्नतिकी आशा कर प्रथम सृष्टिके उपरान्तही इस संसारको स्थापित किया ऐसा नहीं हो सकता। वे सर्वमङ्गलमय हैं, अतएव अकारण ही हमलोगोंको इस क्लेशमय देशमें रखकर विपज्जालमें गिरा देंगे, ऐसा उनका स्वभाव नहीं। यदि यह ब्रह्माण्ड हमलोगोंका चिरनिवास अथवा भोगके लिये बना रहता, तो वे अवश्य ही निर्मलरूपसे इसको सृष्टि करते। वे सर्वशक्तिमान् हैं अतएव इस ब्रह्माण्डके किसी विशेष परिणामकी आशाकर बैठे हुए हैं, ऐसी बात उनके लिये सम्भव नहीं है। बढ़ई काठ तथा बटालीके नहीं रहने पर और किसी वस्तुका निर्माण नहीं कर सकता, कर्मकार लोहे, हथौड़ी और अग्निके विना कुछ नहीं कर सकता और कुम्हार कुदाल, चक्र, मिट्टी प्रभृति उपकरणको छोड़कर कुछ गढ़ नहीं सकता, यह बात प्रसिद्ध है। किन्तु हमलोगोंके परमेश्वर क्या ऐसे ही अक्षम अयोग्य पुरुष हैं ? वे क्या मानव-बुद्धि और कर्मफल-सृष्टिके विना इस संसारको श्रेष्ठ नहीं बना सकते थे ? अहा ! जिस महापुरुषकी इच्छासे ही सदसत् जगत्की उत्पत्ति हुई है, काम करनेकी इच्छा होने पर क्या उनको द्रव्य वा यन्त्रकी आवश्यकता होती है ? जो समस्त चैतन्य, जड़ और यन्त्रादिके नियन्ता हैं उनका सङ्कल्प कभी अपेक्षात्मक नहीं हो सकता।

यह ब्रह्माण्ड चिरकाल असिद्ध और अभावपूर्ण रहेगा, यही उनकी इच्छा है, नहीं तो इसकी अवस्था ऐसी नहीं होती। जीवके लिये प्राप्य किसी और एक धामको स्वीकार किये बिना कोई विशुद्ध सिद्धान्त नहीं हो सकता. शास्त्रयुक्ति और आत्माकी प्रत्यक्ष दृष्टिद्वारा यही सिद्ध होता है। जीव उसी अद्भुत अप्राकृत धामकी आशा करता रहता जैसे वामनपुराणमें लिखा है :—

श्रुत्वैतद्दर्शयामास स्वलोकं प्रकृतेः परम्।
केवलानुभवानन्दमात्रमक्षयमध्वगम् ॥
श्रुतौ च—एषः ब्रह्मलोकः एष आत्मलोक इति।

इस प्रकार प्राकृत और अप्राकृत दो जगतका स्वीकार करना अनादिसिद्ध कहना होगा।

क्रमशः

भय और संशय

द्वितीयाभिनिवेशसे भयकी उत्पत्ति होती है। भगवानसे स्वतन्त्र द्वितीय-वस्तुकी प्रतीति जिससे होती है, वह माया है। मायामें जबतक अभिनिवेश रहता है, तबतक जीवका भय बना रहता है।

साधारण भोगी व्यक्ति सर्वदा ही भयभीत रहता है। भोगी संसारमें जिन वस्तुओंमें आसक्त होता है, वे नश्वर हैं। न जाने किस मुहूर्त्तमें उसका सभी सुख दुःखमें परिणत हो जाय, इसी चिन्तामें भोगी सर्वदा भयभीत रहता है। नाशवान् वस्तुके प्रति आसक्ति वा अभिनिवेश दूर नहीं होने तक भोगी जीव निर्भय नहीं हो सकता, अतः शान्ति भी नहीं पा सकता।

नश्वर वस्तुके प्रति आसक्त होनेसे उसकी अनिष्टाशङ्का चित्तको सर्वदा ही अस्थिर करेगी, यह स्वाभाविक है। किन्तु विस्मयका विषय यह है कि जड़की क्षुद्रता जानते हुए उसके प्रति अत्यन्त विरक्त होकर जो उसे त्याग कर चिद्‌वस्तुके प्रति अभिनिविष्ट होनेकी चेष्टा करते हैं, वे भी निर्भय नहीं हो सकते। चिदनुशीलनके समय अनुशीलनीय वस्तु एवं अनुशीलनकारीके बीचमें पीछे माया आकर प्रवेश करेगी, यही भय रहता है। भोग्य जड़वस्तु पीछे नष्ट हो जायगी, यही भोगीको भय रहता है, और त्याज्य जड़ वा अचित पीछे किसी प्रकार आ उपस्थित होगा, यही त्यागीका भय रहता है। भयकी मात्रा दोनोंकी समान है। कहना नहीं होगा कि यह भय ही निर्विशेषवादकी भित्ति है। महाजनोंने गाया है :—

जड़ प्रति घृणा करि, भजिते प्रेमेर हरि,
स्वरूप लक्षिते कर भय।
स्वरूप करिते ध्यान, पाछे जड़ पाय स्थान
एइ भये भाव ब्रह्ममय ॥

जड़के प्रति निर्विशेषवादीकी विलक्षण घृणा रहती है। पीछे वही घृणित जड़त्व तत्ववस्तुमें स्थान प्राप्त करे, यही चिन्ता कर निर्विशेषवादीके उद्वेगकी सीमा नहीं। तत्ववस्तुको विलासवान् वास्तव-सविशेष "हरि" रूपसे निर्विशेषवादी किसी प्रकारभी स्वीकार नहीं कर सकेगा। हरिका भजन-रूप अभिधेय एवं हरिके साथ जीवका प्रभु-दासरूप सम्बन्ध निर्विशेषवादीके निकट आदर नहीं पाते। विलास, विचित्रता वा विशेष स्वीकार करनेसे माया आ उपस्थित होगी, यही निर्विशेषवादीका भय है। विलास ही स्वतन्त्रताका प्रकाश एवं स्वतन्त्रता ही चेतनता का लक्षण है। किन्तु निर्विशेषवादीकी चिद्‌वस्तु अपनी स्वाधीन वृत्ति परिचालित कर जड़

से अपनेको पृथक् नहीं रख सकती; बल्कि वह सर्वदा ही मायावश होजाने के योग्य है। भयका मूल द्वितीयाभिनिवेश एवं द्वितीयाभिनिवेशका मूल अविद्या वा माया है। निर्विशेषवादीका जो यह भय है इसके मूलमें भी है द्वितीयाभिनिवेश, किन्तु निर्विशेषवादी द्वितीय वस्तुका अस्तित्व स्वीकार करनेमें असम्मत है। माया वा अविद्या वास्तवमें मिथ्या वा कल्पना है—यही निर्विशेषवादीकी युक्ति है। किन्तु उसी कल्पित मायाके आक्रमणकी कल्पना कर निर्विशेषवादी सर्वदा भयभीत रहता है। वस्तुतः निर्विशेषवादीका चिद्वस्तुके प्रति अभिनिवेश नहीं है, उसका सोलह आना अभिनिवेश है जड़ हटानेके प्रति (जड़ निरसनके प्रति)। भोगीका अभिनिवेश भोग्य जड़द्रव्यमें है और त्यागीका अभिनिवेश त्याज्य जड़द्रव्यमें है। निर्विशेषवादी तत्ववस्तुको अचिन्त विलक्षण चितपदार्थ और अपनेको ब्रह्म कहकर केवल ब्रह्मवाद स्थापन करके मायाको मिथ्या वा कल्पना कहकर बिलकुल अस्वीकार करनेको जितनी ही चेष्टा क्यों न करे, वास्तवमें उसकी दृष्टि जड़के सिवा और कुछ नहीं देखती, उसकी चिन्ताभी जड़को अतिक्रम नहीं कर सकती। इसीलिये चिद्विलासके जो विलासी हैं उनलोगोंके निकट निर्विशेषवादीका चिन्मात्रवाद मायावादमात्र है। मायावादमें विशुद्ध मायाके सिवाय और कुछ नहीं है।

माया वा जड़के प्रति बहुत गाढ़ अभिनिवेशके कारण ही इस भयकी उत्पत्ति होती है। तत्व वस्तुको अतद्वस्तु माया दूषित कर सकती है, अप्राकृत वस्तुमें जड़का अच्छा बुरा विचार स्थान पा सकता है, यह भय ही मायावाद का स्वरूप लक्षण है। शङ्करानुगत कहकर परिचय प्रदान करनेवाले और तत्ववस्तुका चिद्विलास, चिद्विग्रह अस्वीकार करनेवाले निर्विशेषवादीही केवल मायावादी हैं ऐसा नहीं है। मायावाद सर्वत्रही स्पष्ट रूपसे प्रकाशित है वा होगा, ऐसी कोई बात नहीं। सेव्य भगवान और सेवक भगवान् अर्थात विषय और आश्रयकी नित्य वास्तवता, अतीन्द्रियत्व, अप्राकृतत्व मुखसे स्वीकार करने पर भी भीतर प्रछन्न भावमें मायावादका आवाहन होता है। जहां अधोक्षज भगवान और भागवतकी निरङ्कुश स्वतन्त्रताका नाश करनेकी इच्छा जिस किसी रूपमें उपस्थित हो, अधोक्षजके प्रति जहां मत्सरता वर्तमान हो, वहां मुखसे भलेही जो कुछ भी कह दिया जाय पर भीतरमें अधोक्षजविलास विरोधी मायावाद विष ही पूर्ण भरा रहता है। श्रीगुरुमुखविनिःसृत श्रौतवाणीमें अन्यमनस्कता आनेसे अनर्थयुक्त जीव या तो भोगी हो जायगा वा त्यागी हो जायगा और साथ ही साथ उसके पास भय आ उपस्थित होगा। जड़ाभिनिविष्ट बद्धजीव अपनेको जड़ पदार्थ ही समझता है। स्व-स्वरूपज्ञान नहीं रहनेसे हरि, गुरु-वैष्णवका स्वरूप दर्शन भी उसको नहीं होता है। हरि-गुरुवैष्णवको मुखसे अधोक्षज स्वीकार करके भी मत्सर प्रच्छन्न मायावादी उनके कृपालोकसे ही उनलोगोंका स्वरूप दर्शन करनेका यत्न न कर एक कल्पनामात्र पोषण करता है। किन्तु अधोक्षज तत्व, बद्धजीवकी कल्पनाके अनुसार प्रकाशित नहीं होते। निर्विशेषवादीकी पङ्कधारणाके मस्तकपर पदाघातकर उसकी स्वेच्छातन्त्रता वे प्रकाश करते हैं। यह उनकी अपार करुणा होनेपर भी भीतिग्रस्त निर्विशेषवादीकी आंख अधोक्षज विलासको जड़विलास ही देखती है। जड़के प्रति उसकी विषम घृणा है; इसीलिये अधोक्षज विलासको भी वह जड़ज्ञानसे

हेय समझकर परित्याग करता है। जड़ हेय है, किन्तु स्वरूप तो हेय नहीं है। जड़का निरसन (खण्डन) करनेमें स्वरूप का परित्याग नहीं करना होगा, यह भीतिग्रस्तोंके विचारमें स्थान नहीं पाता। अधोक्षज-वस्तुका अधोक्षजत्व मायावादी समझही नहीं सकता। किन्तु प्रच्छन्न मायावादी तत्ववस्तु अतीन्द्रिय, अधोक्षज है—यह स्वीकार करता है। स्वीकार करके भी उसको चारों ओर नियमका घेरा करनेके लिये उद्यत होता [illegible]। उनकी धारणा है—अधोक्षजको बद्धजीवकी [illegible]न्ध धारणाका आसामी होना ही होगा, स्व[illegible]नाहीन, स्वतःकर्त्तृत्वहीन, मनोधर्मकी पुतली होनी ह[illegible]ोगी। जबतक बद्धजीव अपनी मायिक धा[illegible]ुकूल उसको देख सकेगा तभीतक वे चिद्वस्तु [illegible] और जब उसे स्वतन्त्रता आवेगी उसी समय [illegible] जड़ वस्तु हो जायँगी; भीतिग्रस्तका (भय[illegible]) ही विचार है। बद्धजीव अधोक्षजके सम्बन्धमें [illegible] कल्पना वा धारणा करता है, वे [illegible], तब तो वे निर्विशेषही हो पड़ते, प्राकृत हो [illegible]न्तु यथार्थमें वे वैसा नहीं हैं। [illegible]णा प्रबल रहेंगी, तबतक यह तत्व उप[illegible]ब्ध नहीं [illegible]। अधोक्षजके अपने स्वरूप प्रकाश करने[illegible] मायावाद कलुषित जीव उसे नहीं देख स[illegible] [illegible]स्वतात्म होनेका विचार अर्थात् श्रौतपथमें [illegible]के साथ सम्यक् युक्त होनेका विचार प[illegible] अपनी अन्धधारणा वा तर्कपथका अवलम्बन [illegible] द्विनियाभिनिवेश प्रबल होगा। उस समय [illegible]ागी होकर जड़में स्वरूप बुद्धिकर सर्वदा भयभी[illegible] रहना होगा, नहीं तो त्यागीको निर्विशेषप[illegible]र स्वरूपविलासको जड़ समझकर उसका त्याग [illegible]रनेमें भयभीत होना होगा।

इस भयके साथ साथ संशय आता है। संशय नास्तिकता का ही प्रच्छन्न रूप है। संशयात्मा अविश्वासी है। शास्त्र, साधु, गुरु—सभीके प्रति उसका अविश्वास है। शरणागत विश्वासी है; किन्तु संशयात्मा विश्वासी नहीं है। संशयात्मा दाम्भिक है। तब यह दाम्भिकता स्पष्ट नहीं है, प्रच्छन्न है। क्योंकि दाम्भिक हरि-गुरु-वैष्णवको स्पष्टभावसे उपेक्षा करता है; उनलोगोंके वाक्योंकी स्पष्टभावसे अवहेला करता है। संशयात्मा बाहरसे आनुगत्यका छल करता है; किन्तु वास्तवमें वह अनुगत नहीं है। उसकी सोलह आना बुद्धि मापनेकी है। हरि-गुरु-वैष्णवका अधोक्षजत्व मुखसे स्वीकार करके भी जो हृदयसे उसको अस्वीकार करते हैं वे ही संशययुक्त हैं। नित्य आनुगत्यका छली मायावादी ही संशयात्मा है। मायावादी भयभीत और नास्तिक—दम्भ-परायण है। संशयात्मा प्रच्छन्न नास्तिक और प्रच्छन्न दाम्भिक है; इसीलिये वह मायावादी और नास्तिकसे भी अधिक निन्दनीय है। संशयात्माका लक्षण यही है कि उसका जितना संशय है सभी साधुगुरु और उनकी वाणीके प्रति है। संशयात्माका अपने प्रति संशय नहीं है, अपने प्रति उसका अखण्ड विश्वास है। अपनेको वह बद्धजीव समझता है। बद्धजीवकी धारणा प्रकृत है, दर्शन असम्पूर्ण है, बद्धजीवका विचार भ्रममय है—यह सभी स्वीकार करते हैं; किन्तु स्वीकार करके भी अपने प्रति उनका अन्धविश्वास है। हमलोगोंके हृदयमें शत शत अनर्थ, अन्याभिलाप और कपटता, भरी ही है, हमलोगोंकी समझसे हममें हेयता, असम्पूर्णता, भ्रम रहनेपर भी हम ठीक हैं, हममें कोई गोलमाल नहीं है। सभी दोष, सभी अपराध

गुरुवैष्णव ही करते हैं—इस विचारसे गुरुवैष्णवके प्रति विचार दण्ड प्रयोगमें संशयात्मा सर्वदा उद्यत है।

संशय और जिज्ञासा एक वस्तु नहीं है। सम्पूर्ण स्वरूपज्ञानमें प्रतिष्ठित न होने तक जिज्ञासा रहती है। साधक मात्र ही जिज्ञासु हैं। किन्तु संशयात्मा और जिज्ञासुमें भेद यही है कि जिज्ञासु शरणागत हैं, वे अविश्वासी नहीं हैं। हरि, गुरु और वैष्णवका सब कुछ अच्छा है; उनलोगोंमें कुछ दोष नहीं है। उनलोगोंके चरित्रमें वर्तमान जो विरोध दिखलाई पड़ता है वह वास्तवमें उनलोगोंके चरित्रमें नहीं है। हमलोगोंके विचारमें जड़त्व है अत: हम विरोध देखते हैं। वे जिस भूमिकामें अवस्थित हैं उसी भूमिकामें पहुँचनेसे यह विरोध दर्शन नहीं होगा—इसी विचारमें दृढ़ निर्भरता रखकर जिज्ञासु reconcile करनेमें ही यत्न करते हैं, संशयाकुलके समान गुरुवैष्णवका संस्कार करना नहीं चाहते। गुरुवैष्णवकी भूमिकामें उपस्थित होकर चिन्मय चक्षुके द्वारा गुरुवैष्णवका पूर्ण चिदानन्द विग्रह दर्शन करूँगा—यही जिज्ञासुका विचार है। और स्वयं जड़में आवद्ध रहकर गुरुवैष्णवको भी जड़में उतार लाऊँगा, अपनेको जड़पिण्ड जानूंगा, गुरु वैष्णवको भी जड़पिण्डके रूपमें ही देखूंगा—ऐसा संशयात्माका विचार है। वर्तमान अवस्थामें देखनेपर संशयात्मा और जिज्ञासु एक समान देख पड़ते हैं किन्तु वास्तवमें बात वैसी नहीं हैं। उनलोगोंकी चित्तवृत्ति सम्पूर्ण विभिन्न है। एकही आकाशमें अवस्थित होकर भी चातककी दृष्टि ऊपरकी ओर रहती है; किन्तु शकुनिकी दृष्टि नीचेकी ओर रहती है; गलित मांसके प्रति। मांसदृक् संशयात्मा जितना भी उच्च विषयका विचार करे, उसकी दृष्टि जड़के प्रति अवश्य निबद्धही रहेगी।

जिज्ञासुका standard ठीक है। वे जानते हैं कि भक्ति निरपेक्षा है। भक्तिके विचारसे कभी भी अभक्ति प्रमाणित नहीं हो सकती। उनका मान-यन्त्रका ठीक रखकर वे जो कुछ विरोध देखते हैं उसके सम्बन्धमें सामञ्जस्य करनेकी चेष्टा करते हैं। किन्तु संशयात्माका मानदण्ड नहीं है, और रहनेपर भी शास्त्र और साधुवाक्य उसके मानदण्ड नहीं हैं। उसकी प्रच्छन्न दाम्भिकता वा मापनेकी बुद्धि ही उसका मानदण्ड है। माप लूंगा—यही संशयात्माका मूल मन्त्र है।

भय वा संशय आत्माकी नहीं, बद्ध विकृत जड़ मनकी वृत्ति है। किन्तु प्रकृत जिज्ञासामें कपटता नहीं है। उसमें उन्मुखता, अन्वय अनुशीलन है। भय और संशय कपटता मात्र है।

संशयात्मा भी बहुत बार जिज्ञासाका भान करता है। संशयात्मा कहता है, मैं जब बद्ध जीव हूँ, बद्ध धारणा करना ही मेरा स्वभाव है, इसके अतिरिक्त कुछ कहनेपर जब मैं नहीं समझता तो मुझे मेरे उपयुक्तही उपदेश देना चाहिये। वास्तवमें वह सरल जिज्ञासा नहीं है, कपटतामात्र है। स्वरूपमें किसीकी बद्धता नहीं है: बद्ध धारणा पोषण करना भी स्वरूपका स्वभाव नहीं है। जो घटना-क्रमसे आगया है, उसको दूर करना ही आवश्यक है। बद्धता रखकर मुक्तके विचारमें प्रतिष्ठित होनेकी इच्छामें आन्तरिकता नहीं है। स्वरूपके स्वभावमें सन्देह, संशय वा अज्ञान—कुछ नहीं है। फिर स्वरूपके ऊपर जो अस्वच्छ आवरण आगया है वह जिससे दूर हो वह कौशल वे ही जानते हैं जो स्वयं स्वरूपमें प्रतिष्ठित हैं। मैं जो कल्पना करता हूँ, वह उपाय नहीं है। जिससे मैं अपने स्व-स्वरूपमें

प्रतिष्ठित हो सकें, इसीलिये गुरुदेवका पतित-पावन-लीला जगतमें नित्य प्रकट है। गुरुदेवकी उसी लीलाका तात्पर्य हृदयङ्गम करनेकी अकपट आकांक्षा लेकर प्रणिपात और सेवाके साथ परिप्रश्न आयेगा। स्वरूपमें प्रतिष्ठित होनेके लिये ही जिज्ञासा है। मैं बद्ध हूँ, यह धारणा दृढ़ रखकर बद्धताके उपयुक्त स्वरूपकी कथा कही जाय, तो वह कथा निरर्थक होगी। बद्धताके उपयोगी अर्थात् विमुख मन जिसको रुचिर समझकर ग्रहण करेगा, उस प्रकारकी इन्द्रियतृप्तिकारिणी कथा स्वरूपकी कथा नहीं है। बद्धताके उपयुक्त कथाके द्वारा बद्धता वृद्धि पावेगी। बद्धता कुछ हमलोगोंका स्वरूप नहीं। स्वरूपकी कथा अविमिश्ररूपसे कीर्तित होनेपर भी उसे उपलब्ध करनेकी सम्पूर्ण योग्यता हमलोगोंकी है अतः जड़ जगतमें बैकुण्ठ वस्तुका अवतार है; नहीं तो वह सम्पूर्ण निरर्थक होता। हमलोग यदि निष्कपट और विश्वासी हों, तो स्वरूपकी वार्त्ता हमलोगोंके निकट दुर्बोध कभी भी नहीं होगी, बल्कि उसीका सबसे अधिक सहजरूपसे प्रतिभान होगा। गुरुपादपद्मसे सहज सरल पारमार्थिक ब्राह्मणता प्राप्त करके स्वरूप जिज्ञासा वा ब्रह्मजिज्ञासाका अधिकारी बना जाता है। गुरुदेवको उस अधिकार दानमें कोई आपत्ति नहीं। किन्तु गुरुपादपद्मसे स्वरूपका परिचय प्राप्त करनेका पूर्ण अवकाश पानेके बाद भी यदि "यदि मैं बद्ध हूँ" यह ज्ञान प्रबल रहा एवं गुरुदेव द्वारा कीर्तित वाणी ब्रह्मकी विजातीय बोध हुई, तो समझना होगा, गुरुदेवके कृपा-ग्रहणसे वे इच्छा पूर्वक पराङ्मुख हुए हैं। वे अविश्वासी हैं, कपटी हैं। उनकी जिज्ञासा भी सरलताका भानमात्र हैं, क्योंकि वास्तवमें वे जानना नहीं चाहते।

सनातन धर्म

जड़ जगत् परिवर्त्तनशील है। आज जो नवजात शिशु है कल वही प्रफुल्लवदन बालक होता है, पुनः वही वीर्यवान युवक, धीरे धीरे प्रशान्तमूर्त्ति प्रौढ़ और अन्त में सफेद केशवाला और दन्तहीन वृद्ध हो जाता है। स्निग्ध प्रभात किरण देखते देखते प्रखरसे भी प्रखर होता और पुनः अन्धकारमें विलीन हो जाता है। आज जहाँ अत्युच्च पर्वतश्रेणी विराजमान है, कल वहीं अथाह समुद्र अवस्थित देखा जाता है। सागर सूखता है, मरुभूमि जलसे प्लावित होती है। आज जो लोगोंसे परिपूर्ण और चहकती हुई राजधानी है कल वही श्मशानमें परिणत हो जाती है। इतिहास इसका साक्षी है। यह जगत् हेयता और अनुपादेयता (घृण्य) से परिपूर्ण है। प्राणसे भी प्रिय पुत्र अपने हाथसे पिताको विष देकर राज्य प्राप्त करता है, प्रियतमा पत्नी उपपतिकी सहायतासे अपने स्वामीके हृदयमें अस्त्राघात करती है और सहोदर भ्राता अपनेही भ्राताके सर्वनाश-साधनमें तत्पर होता है। निर्दोष दण्ड पाता और खूनी बेकसूर साबित हो जाता है। यह हम प्रति क्षणमें देख रहे हैं। इस रङ्गमञ्चपर नित्य और निर्मल आनन्दका पूर्ण अभाव है। बहुत अच्छा हूँ, कोई अभाव नहीं है,—सुन्दर रूप, अनेक सद्गुण, अद्भुत पाण्डित्य, आश्चर्यमयी बुद्धि, अतुल ऐश्वर्य, सुबृहत् अट्टालिका, पति-प्राणा पत्नी, सोने और चाँदके समान पुत्र और कन्या, सब कुछ। अकस्मात्

कहींसे एक भवदावाग्नि जल उठी—एक मुहूर्त्तमें भस्मीभूत हो गया। पण्डित मूर्ख हो जाता, मूर्ख पण्डित हो जाता है। ज्ञानी अज्ञानी, अज्ञानी ज्ञानी हो जाता। धनी दरिद्र और दरिद्र धनी हो जाता। उसी प्रकार बलवान दुर्बल और दुर्बल बलवान हो जाता है। इस प्रहेलिकाके मध्यमें नित्य सत्य वस्तुका संवाद क्या प्राप्त किया जा सकता है?

रोम ग्रीस और चीनके मनीषिवृन्दों एवं भारतीय विद्वतसम्प्रदायके जड़वस्तुसमूहकी धारणाओंके इतिहासकी विशेषरूपसे आलोचना करनेपर ज्ञात हो जाता है कि उन्होंने जिसे सत्य समझकर ग्रहण किया था, वही धारणा कालान्तरमें शिक्षाके प्रभावसे परिवर्त्तित होती जाती है। काम और क्रोधसे अभिभूत (ग्रसित) व्यक्तिकी धारणा मायिक होनेसे दूसराही आकार धारण करलेती है। हम अपने जीवनकी आलोचना करकेभी देखते हैं कि कभी कभी हमारी धारणायें भी अद्भुतरूपसे परिवर्तित होती रहती हैं। प्रति वर्ष, प्रति मास, प्रति दिन, प्रति घण्टे, प्रति मिनट, प्रति मुहूर्त हम यह परिवर्त्तन देखा करते हैं। तो क्या नित्य, सत्य, उत्कृष्ट और निर्मल आनन्द प्राप्त करनेकी आशा नहीं है?

सत्यानुसन्धानकी इच्छासे सनातन धर्मपर विचार करनेसे उक्त प्रश्नका यथार्थ उत्तर मिल जाता है। सनातन धर्म क्या है? सनातन धर्म किसका धर्म है? सनातन धर्मकी आवश्यकता क्या है? एवं किस प्रकार उसका पालन किया जा सकता है?—इन सब प्रश्नोंपर विचार करना प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है। अनित्य और नश्वर वस्तुओं को छोड़कर शेष सभी सनातन अर्थात् नित्य वस्तुओंमें सनातन धर्म नित्य विराजमान रहता है। नित्यानन्दका उद्गम स्थान यहीं है।

गीताका कहना है कि क्षिति, जल, पावक (अग्नि), आकाश, हवा और मन बुद्धि अहङ्कार भगवानकी अपरा प्रकृतिसे बने हैं अर्थात् प्राकृत हैं। अतः पञ्चभूतात्मक देह और मन प्राकृत हैं। प्राकृत वस्तुएं परिवर्त्तनशील हैं, उनलोगोंका धर्म भी परिवर्त्तनशील है इसलिये देह और मनका धर्म सनातन नहीं है। भगवानकी परा प्रकृति जीव, अपरा प्रकृतिसे नहीं उत्पन्न हुआ है। भगवान् प्रकृतिके अन्तर्गत वस्तु नहीं हैं - वे अप्राकृत हैं। जीव कहनेसे देह और मनका नहीं बोध होता बल्कि उससे चित्कण आत्माका निर्देश होता है।

असूर्य्यानाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

जो आत्म हत्या करने वाले हैं, वे आसुरी वृत्ति अवलम्बन कर (अज्ञानसे ढके हुए) नाना प्रकारका कुतर्क करते हैं। चित्तमें नाना प्रकारकी विकृति देखते हैं। आत्माका सन्धान पानेसे ही विकार हट जाता है। आत्मा नित्य है, उसका धर्म भी नित्य अर्थात् सनातन है। आत्माकी नित्यवृत्ति शुद्धभक्ति ही सुनिर्मल सनातन धर्म है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके ऊपर पञ्चम पुरुषार्थ भगवत् प्रेम ही प्रयोजन वा फल है। जीव स्वरूपतः भगवद्दास है। आत्म वृत्ति भगवद्दास्यका स्वाद पातेही जीव कहने लगता है—

नास्था धर्म्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे
यद्यद्भव्यं भवतु भगवन् पूर्वकर्मानुरूपं।
एतत् प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्मजन्मान्तरेऽपि
त्वत् पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु॥

उस समय इस जगत्की कोई असुविधा उसके हृदयमें स्थान नहीं पाती। अप्राकृत जीव

बन्धनावस्थामें स्थूल और सूक्ष्म दो प्राकृतिक उपाधियोंमें आवद्ध रहनेके कारण अप्राकृत तत्वकी उपलब्धि नहीं कर सकता है। जड़देहके गुणोंकी आलोचना करते करते मनके सभी भाव उदय होते हैं, इस कारणसे मनुष्योंकी कल्पना-विभावना रूप चिन्ताएं और धारणाएं प्रकृति-मूलक हैं इस कारण अप्राकृत नहीं हो सकतीं। सनातन धर्म अप्राकृत तत्व है। यह सत्य वस्तु अवरोह-पथसे (श्रौत पथसे-आम्नाय पथसे) श्रीभगवानसे ब्रह्माके हृदयमें प्रकट हुई थी। ब्रह्मासे नारद, नारदसे व्यास एवं व्याससे आम्नाय—परम्परामें वैयासिक सम्प्रदायने उस वस्तुको प्राप्त किया है। महाजनोंका क्या ही सुन्दर गान है :—

"भ्रमिते भ्रमिते यदि साधुसङ्ग हय।
पुनरपि गुप्त नित्य-धर्मेर उदय॥"

सूर्य जिस प्रकार मेघ द्वारा ढक जाता है, सनातन धर्म भी उसी प्रकार काल-प्रभावसे आवृत रहता है पर वह नित्य वर्तमान रहता है। सनातन धर्मके छिप जानेपर भगवान् स्वयं अवतीर्ण होते हैं, या कभी पार्षद भक्तोंको भक्तावताररूपसे प्रेरण करते हैं। नित्य-मुक्त भगवद्भक्त कभी भी माया-द्वारा अभिभूत (आकृष्ट) नहीं होते। वे बद्धजीवके सदृश स्वतन्त्रताका असद्व्यवहार न कर सर्वदा सनातन धर्ममें अवस्थित रहते हैं। प्राकृत धारणा द्वारा युक्त चित्त अप्राकृत वस्तु धारण करनेके योग्य नहीं है। काय मन और वाक्य द्वारा भगवान् और उनके भक्तोंका दासत्व करनेके पहले सुनिर्मल सनातन धर्मका आस्वादन नहीं हो सकता। प्राकृत और अप्राकृत, नित्य और अनित्य, आत्म और अनात्म, भक्ति और मुक्ति—इन सबोंके पार्थक्यका ज्ञान सद्गुरु—चरणाश्रय कर विशेष रूपसे प्राप्त किया जाता है। जो ऐसा न कर परमार्थके साथ शारीरिक, मानसिक, लौकिक, व्यावहारिक, नैतिक और सामाजिक भावोंको सम्मिश्रण करते और अपनी एक अलग सृष्टि निर्माण करते हैं उनकी वह सृष्टि सनातन नहीं हो सकती। देह और मनकी मंगल कामना करने वाले प्रचारक अनात्म प्रतीतिमें अवस्थित होकर परमार्थ-स्मृतिके साथ इतर स्मृतिके समन्वय करनेका प्रयास करते हैं। कर्मविद्ध और ज्ञानविद्ध भक्तिका आदर करते हैं। शुद्ध भक्त इसको महत्व नहीं देते। किन्तु सीधे सादे लोग इन बातों से विषम समस्यामें पड़ जाते हैं। बद्धावस्था के कारण भोगमें लीन होकर मनके अनुकूलको ही सनातन धर्म समझकर लोग भ्रममें अन्धे हो रहे हैं—उन्हें शुक्तिमें रजतका (चांदी) भ्रम होरहा है। दुग्धमें घी के मौजूद रहने पर भी प्रज्वलित अग्निमें वही दूध डालनेसे वह अग्नि बुझ जाती है, किन्तु उसी दूधसे घी निकालकर उस बुझी जाती हुई अग्निमें डालनेसे वह प्रज्वलित हो उठती है। वस्तुतः शुद्धभक्ति वा पराभक्ति ही आत्मधर्मविकाशके अनुकूल है, विद्धभक्ति उसके प्रतिकूल है। शुद्धभक्ति वा पराभक्तिको ही सनातन धर्म, नित्यधर्म, आत्मधर्म या जैवधर्म कहते हैं। भगवान् नित्य हैं, भक्त नित्य हैं और भक्ति नित्य है। ये तीनों वस्तुएं आनन्दमय हैं। वहां अनित्यता, हेयता वा अनुपादेयताका स्थान नहीं है।

हमलोग जिस समय भोगकी अनित्यता मायावादी की ईशविमुखता एवं देह और मनकी परिवर्त्तनशीलताकी उपलब्धि कर श्रद्धान्वितचित्तसे सद्धर्माश्रयके लिये व्याकुल होते हैं उस समय यह समझनेका अवसर मिलता है कि हमलोग चिद्वस्तु

हैं एवं वृन्दावन ही हमलोगोंका नित्यवास है। माया द्वारा सृष्ट इस संसार वृक्षके कोटरमें पक्षीके समान कुछ दिनके लिये वास कर रहे हैं। जड़बुद्धिसे भोक्ताके रूपमें नश्वर जड़का भोग अङ्गीकार करनेके कारण और अनात्म देह और मनमें आत्मवस्तुका भ्रमउत्पन्न हो जानेके कारण हमलोगोंका सर्वनाश हुआ है।

जो नित्यकाल अवस्थित है, वही 'सत' है। 'असत' परिवर्त्तन और ध्वंसशील है। सद्गुरुसे दीक्षा, सत्सङ्ग और सच्छास्त्र अध्ययन करते करते अनर्थके कट जानेपर समस्त असत् धारणायें चली जाती हैं उसी समय नित्यतत्त्वका रहस्य प्रकाशित होता है। उसी समय "ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते" इस श्लोकका तात्पर्य हृदयङ्गम होता है। मेघके हटते ही सौभाग्यसूर्यकी रश्मि (किरण) दिखलाई पड़ती है, चक्षु उन्मीलित होता है, और बधिरता नष्ट होती है। उसी समय हमलोग श्रीगुरुदेवका "कोटिचन्द्र सुशीतल" पदकमल दर्शन कर अमरत्व प्राप्त कर सकते हैं। अपना कार्पण्य और भगवत् प्रीतिहीनता का ज्ञान होते ही आंसुओंसे छाती प्लावित हो जाती है।

अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

कहते कहते उनके चरणकमलोंमें लोटने लगते हैं। उस अप्राकृतचरणाश्रयसे हृत्कर्णरसायन हरिकथा सुनते सुनते चक्षु-कर्णका विवाद, और मनका समस्त सन्देह मिट जाता है मानव-जीवन सार्थक होजाता है। सच्छास्त्र और असच्छास्त्र, सद्गुरु और असद्गुरु, सत्सङ्ग और असत्सङ्ग, असल और नकल—सभी धराधाममें (इस संसारमें) वर्त्तमान हैं। तनिक भी असतर्क होनेसे असत् सत प्रतीत होता है, मन ही आत्मा मालूम पड़ता है, देह देही मालूम पड़ता है, नश्वर जगत्को नित्यवासोपयोगी स्थान समझकर महाभ्रम राज्यमें जीव आबद्ध होजाता है और दुर्लभ मानव जन्म वृथाही नष्ट हो जाता है। इसीलिये स्वभावत: करुणामय महाजनगण बद्धजीवकी बद्धदशा हटानेके लिये—उनलोगोंकी मोह निद्रा तोड़ कर आत्मधर्मकी कथा सुनानेके लिये "प्रचार" कार्यकी व्यवस्था कर गये हैं—

"प्रति घरे घरे गिया करे एइ भिक्षा।
भज कृष्ण, बल कृष्ण, कर कृष्ण शिक्षा॥

किन्तु हमलोग सांसारिक अनुभवों से (ज्ञान द्वारा) परिचालित होकर प्रत्येक मुहूर्त्तमें अपने २ सत्याभासको सत्य स्वीकार कर परस्पर कलह कर रहे हैं, शास्त्रों की कल्पित व्याख्याके विवादमें अग्रसर होकर अपनेसे निम्नतरस्थित जीवोंकी परमार्थ चेष्टाका पथ बन्द कर रहे हैं और दाम्भिकताके आश्रयमें घृणित जीवन यापन कर नरक पथके पथिक हो रहे हैं। भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा और करणापाटव हमलोगोंके चित्तमें प्रबल झड़ उपस्थित कर रहे हैं, इस मायाके ताण्डव नृत्यमें क्षणक्षण मुग्ध हो रहे हैं। यथेच्छाचारका आश्रयकर मनोविमानमें चढ़कर सुखकी कल्पनामें मायाके पीछे कितना दौड़ रहे हैं! बार बार हार रहे हैं—हताश हो रहे हैं। त्रिताप ज्वालासे जलकर राख हो रहे हैं किन्तु तो भी आशासे विराम नहीं पाते —नित्य नये यत्नोंसे फिर कमर कस कर दौड़ते हैं। कभी धर्म, अर्थ कामका फल अनुसन्धान करनेके लिये कनक, कामिनी और प्रतिष्ठाकी प्राप्तिमें पटुता दिखाकर पुण्यवान होना ही धर्म समझते और कभी मुमुक्षु होनेकी पिपासामें अहंग्रहोपासक (अहंकार रूपी ग्रहकी उपासना करनेवाला) मायावादी

होकर ईशवैमुख्यकी पराकाष्ठा प्राप्त करते हैं। स्वतन्त्रताका असदव्यवहार कर अज्ञ ज्ञानका दास होकर दुर्दशाकी चरम सीमामें पहुँच गये हैं—स्वरूप विभ्रम होनेसे (स्वरूप भूल जानेसे) क्या ही भयानक और कुत्सित अवस्थाके कीड़े हो पड़े हैं। हाय! हाय! हमारे ऐसे घोर दुर्दिनमें कौन मायाके कवलसे मुक्तकर नित्य परम आत्मीय श्रीभगवान्के निकट ले जायगा। कब हम श्रीहरिको परम सत्य समझ सकेंगे कब हम प्राकृत जगत् के अन्दर वैकुण्ठ धामका संवाद पावेंगे। कब हम युक्तिको अपने अधिकारमें रखकर आत्ममङ्गल स्वरूप अच्युत विश्वासको (भगवद् विश्वासको) हृदयमें पोषण करनेमें समर्थ होंगे? कब हम अपनी क्षुद्रता और पाखण्डको समझकर सभी प्राकृत अभिमानसे रहित होते हुए भगवद्भक्तोंके शरणापन्न हो सकेंगे? हाय, हाय! कब हमलोग आत्म प्रतीतिमें और कृष्णेन्द्रिय प्रीतिवाञ्छामें अनित्य कामनाको छोड़नेके योग्य होंगे। हे हरि! कब हमारा जड़ सम्बन्ध शिथिल होकर चित् सम्बन्ध प्रबल होगा? कब हमारा आत्म धर्म-स्वरूप धर्म जागेगा। कब हम भक्तिको जीवका परम पुरुषार्थ समझते हुए श्रीगुरुपादाश्रयकर वृन्दावनमें अप्राकृत कामदेवकी उपासनामें निर्मलानन्दका आस्वादन प्राप्त करेंगे।

यह देखिये, माधुर्यैश्वर्यपति भगवान् श्रीनिवास हमें सान्त्वना प्रदान कर रहे हैं। यह सुनिये, कलियुगपावनावतार श्री श्रीगौरसुन्दर अपने पार्षद भक्तोंके साथ प्रकट होकर "श्रीमद्भागवतसंगही एकमात्र अवलम्बनीय है" इसीकी शिक्षा दे रहे हैं। इसे एक बार सुनें जीवन धन्य हो जायगा। पहला ग्रन्थभागवत और दूसरा भक्तभागवतके आश्रयसे ही सत्य वस्तुकी उपलब्धि होगी एवं शोक, भय, मृत्युके कवलसे निस्तार पाकर हमलोग अमृत प्राप्त कर सकेंगे।

यस्मिन् शास्त्रे पुराणे वा हरिभक्तिर्न विद्यते।
न श्रोतव्यं न मन्तव्यं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत्॥
ततो दुःसङ्गमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान्।
सन्त एवास्य छिन्दन्ति मनोव्यासङ्ग मुक्तिभिः॥

इसी सर्वाराध्य महासमन्वयवाद अद्वयज्ञानोपासनाके प्रवर्त्तक श्रीमायापुरचन्द्रकी और उनके भक्तोंकी अभयवाणी शिरपर धारणकर, आइये हमलोग सत्यवस्तुके अनुसन्धानमें अग्रसर हों,—भावग्राही जनार्दन सभी अमङ्गल हटाकर हमें अभीप्सित सिद्धि निश्चय प्रदान करेंगे।

भजन

यशमती-नन्दन, व्रजवर-नागर,
गोकुल-रञ्जन-कान।
गोपी-परान-धन, मदन-मनोहर,
कालिय-दमन-विधान॥
अमल हरिनाम अमिय विलासा।
विपिन-पुरन्दर, नवीन नागर वर,
बंशीवदन सुवासा॥

व्रजजन-पालन, असुर-कुल नाशन,
नन्द-गोधन राखओयाला।
गोविन्द माधव, नवनीत तस्कर,
सुन्दर नन्दगोपाल॥
यामुनातटचर, गोपी वसनहर,
रास-रसिक कृपामय।
श्रीराधावल्लभ, वृन्दावन नटवर
भकतिविनोद-आश्रय॥

पतितपावनवर परदुःखदुःखी

श्री श्रील आचार्यदेवकी त्रिदण्ड-सन्यासलीला

अकेले ही श्री श्रीगुरुगौराङ्गका आदर्श अनुसरण और निर्विशेषवादी लोगोंके प्रति अहैतुकी कृपा श्री श्रील गोपालभट्ट गोस्वामी प्रभुके विरह-दिवस को ४५३ गौराब्द, आषाढ़ कृष्ण पञ्चमी तिथिमें श्री ईश्वरपुरी और श्रीगौरसुन्दरके मिलनक्षेत्र गयाधाममें सन्यासलीला

सन्यासनाम—श्री श्रीमद्भक्ति प्रसाद पुरीगोस्वामी

परदुःखदुःखी अतिमर्त्य आचार्यवर्गोंकी महावदान्यलीलाको धारणा करनेमें जीव असमर्थ है। श्रीरामानुजाचार्यने लोगोंकी निन्दाके भयसे क्यों दूसरे स्थानमें आश्रय ग्रहण किया था, क्या कारण था कि भगवान श्रीगौरसुन्दरने निर्विशेषवादी, कर्मनिष्ठ, कुतार्किक, निन्दक पाखण्डी विद्यार्थी प्रभृति निपुण व्यक्तियोंकी कृतघ्नताके प्रतिदानके लिये श्रीमायापुरसे विदा ग्रहण करनेकी लीलाकी और सन्यासग्रहणकी लीलाका अभिनय किया था, क्या कारण था कि परमहंसवर ऊँ विष्णुपाद श्री श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी-प्रभुपादने वर्णाश्रमके अन्तर्गत त्रिदण्ड सन्यासग्रहण लीला प्रकट की थी, क्या कारण था कि उद्धवगीतामें अवन्तीनगरीके त्रिदण्डी भिक्षुकी कहानी वर्णित हुई है एवं परवर्त्ती आचार्योंने उसी त्रिदण्डी भिक्षुकी गाथा गाकर व्रजके पथमें चलनेकी लीला प्रकट की है। ये बातें क्षुद्र जीवकी धारणाके परे हैं। निर्विशेषवादी, निन्दक, पाखण्डी आध्यात्मिकोंके लिये ये बातें निन्दाके मसाले हैं किन्तु भगवद्भक्त सदा इन निपुण आध्यात्मिकोंकी निन्दाको अपने भजनके अनुकूल समझकर हरि-भजनके पथकी ओर अग्रसर हुए हैं।

पतितपावनवर श्रील आचार्यदेवका एक स्वतः सिद्ध स्वभाव यह है कि वे प्रत्येक गुरुसेवकके कल्याण और भजनकी उन्नतिके लिये बाहरसे किसी प्रकारका विज्ञापन न कर सर्वदा सब तरहसे बहुत यत्न करते हैं। प्रत्येक निष्कपट सेवक निःसंकोच भावसे इसे स्वीकार करेगा। किन्तु श्रील प्रभुपादके श्रीमुखसे हमलोगोंने सुना है कि श्रील प्रभुपादने जिनलोगोंका अधिक उपकार किया है उनने ही श्रील प्रभुपादके चरणमें अपराधकर उपकारका बदला दिया है। इसके प्रसङ्गमें श्रील प्रभुपादके कथित पण्डित विद्यासागर महाशयका एक गल्प बहुतोंको स्मरण रह सकता है। श्रील आचार्यदेवकी महावदान्य लीलामें भी हमलोग उसी लीलाकी पुनरावृत्ति देख पाते हैं। महाप्रभुने नवद्वीपवासी कर्मकाण्डियों और निन्दकोंका सबसे अधिक उपकार करना चाहा था परन्तु वे ही महाप्रभुके सबसे अधिक निन्दक हुए। किन्तु महाप्रभुने उसका बदला दिया था सन्यास आश्रम ग्रहण लीलाके द्वारा।

करिल पिप्पलिखण्ड कफ निवारिते।
उलटिया आरो कफ बाढ़िलो देहेते॥
आमा देखि कोथा पाइबेक बन्धनाश।
एकगुण बन्ध छिल-हैल कोटी-पाश॥
आमारे मारिते यबे करिलेक मने।
तखनइ पड़ि गेल अशेष बन्धने॥

भाल, लोक तारिते करिलूँ अवतार।
आपने करिल सब जीवेर संहार॥
देख कालि शिखासूत्र सब मुड़ाइया।
भिक्षा करि बेड़ाइमु सन्यास करिया॥

(चै० भा० म २६। १२१, १२६-१३२)

श्री श्रीगुरुगौरांगके इस आदर्शका अनुसरण परदुःखदुःखी श्रील आचार्यदेवकी लीलामें पूर्णरूपसे प्रकाशित हुआ है। श्रील आचार्यदेवने निन्दक निर्विशेषवादी निपुण आध्यात्मिक लोगोंके आचरण-का बदला अपने महावदान्यमयी सन्यासलीला द्वारा दिया। श्रील आचार्यदेव नित्यसिद्ध कृष्णतत्त्ववित हैं, वे श्री श्रीरूपरघुनाथके वाणीके श्रेष्ठ सेवक हैं, वे



ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजक आचार्यवर्य्य
अष्टोत्तरशत श्री श्रील भक्तिप्रसादपुरी गोस्वामी महाराज।

महाभागवतवर परमहंस हैं, उनकी सन्यासलीलाका अभिनय केवल श्री श्रीगुरुगौरङ्गके मनोऽभिष्टानुयायी, उनलोगोंके पदाङ्कानुसरण सेवा है।

इस लीलाके द्वारा उन्होंने हमें काय मन और वाक्यसे दुःसङ्ग परित्यागमें अधिकतर बलवान् और सत्सङ्ग वरण (ग्रहण) में अधिकार शक्ति सञ्चार की है।

श्रील आचार्यदेवकी इस लीलाके विषयमें बहुत लोग अनभिज्ञ थे। गयासे पण्डित श्रीपाद रूपविलास ब्रह्मचारी विद्यार्णव बी-ए महोदय कर्त्तृक 'गौड़ीय' सम्पादकके निकट प्रेरित एक पत्रमें आचार्यदेवकी इस गूढ़ लीलाकी कथा प्रथम प्रकाशित हुई। उस पत्रमें विद्यार्णव प्रभुने लिखा है—"श्रील आचार्यदेवने हमको अति निकट बुलाकर कहा मैं भगवानके irresistible force के द्वारा चालित होकर यहां आया हूं। मेरी दूसरी ओर जानेकी इच्छा थी। मैं जब पार्वतीपुरमें था उस समय श्रीमन्महाप्रभुने मुझे गयामें सन्यास लेनेके लिये प्रबल प्रेरणा की। मुझे त्रिदण्डसन्यास ग्रहण करना होगा, यह मैं नहीं जानता था, मठके और कोई भी यह नहीं जानते। श्रीपादभक्तिसुधाकर प्रभु और श्रीपाद तीर्थ महाराज वा श्रीपाद सुन्दरानन्द प्रभु प्रभृति कोई भी नहीं जानते। तुम मुझे इस विषयमें सहायता करो। अगामी कल प्रातः श्री श्रीगदाधरका श्रीपादपद्म दर्शन और परिक्रमा करनेके बाद श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी प्रभुकी तिरोभाव तिथिमें मठमें श्रील प्रभुपादके निकट सन्यास ग्रहण करूंगा। इस बात को अति दैन्यके साथ मुझे बताकर दण्ड-वहिर्वास-प्रभृति प्रस्तुत करनेके लिये आदेश किया। उस समय उन्होंने और भी कहा—सभी लोग विषय लेकर झगड़ा-विवाद कर रहे हैं। एक भीषण बवण्डर आया है। इसमें बहुत कम लोग बचेंगे। शरणागत और निष्किञ्चन लोगोंको कोई भय नहीं। श्रीगुरुपादपद्मने मुझे अनुकूल कृष्णभजनका खूब सुयोग प्रदान किया है। मैं कृष्णानुसन्धानमें बाहर हुआ हूं। श्रील प्रभुपादके निकट जो कथा सुनी है उस कथाके साथ किसी अन्य उपदेशका बहुत मेल नहीं होगा। मुझे श्रीगुरुपादपद्मसे कोई च्युत नहीं कर सकता। मेरे अनुपस्थितिकालमें श्रील तीर्थमहाराज मेरा कार्य करेंगे।"

विद्यार्णव प्रभुने पत्रमें और भी लिखा है—श्रीलआचार्यदेवका वैराग्य देखनेसे पाषाण भी विदीर्ण होगा। हमलोगोंका किसी प्रकारका अनुनय विनय भी उन्होंने नहीं सुना। सन्यासके दिन प्रातःकाल मस्तक मुण्डन कराकर स्नान किया और मुझे साथ लेकर पैदल श्री श्रीविष्णुपादपद्मदर्शन करनेके लिये गये। अग्योगी श्रीयुक्त कृष्ण प्रकाश सिंहकी अति सुन्दर गाड़ी श्रील आचार्यदेवकी सेवाके लिये प्रस्तुत रहनेपर भी वे उसपर नहीं बैठे। प्रायः दो मील रास्ता पैदल चलकर फल्गु नदीका जल स्पर्श किया, विरजाके जलमें स्नानकर अधोक्षज विष्णुपादपद्म सेवा प्राप्त करनेका वैशिष्ट्य वर्णन करते करते श्रीविष्णुपादपद्मके मन्दिरमें उपस्थित हुए। वहां पुनः पुनः साष्टाङ्ग दण्डवन्नति और कुछ देरतक पूर्व महाजनोंके विरचित स्तवसमूह उच्चारणकर मन्दिर-प्राङ्गणमें उपस्थित हुए। वहां श्रीमन्मध्वाचार्यका एक चित्रपट विराजित है। उसी चित्रपटकी ओर दृष्टि निबद्धकर कहा—आज हम श्रीमन्मध्वाचार्यके आनुगत्यमें यहांकी क्रिया दि सम्पन्न करेंगे। श्रीमन्दिर प्राङ्गणमें बैठकर प्रायः आधे घण्टे तक श्रीमन्मध्वाचार्य, श्रीरामानुजाचार्य और श्रीमन्महाप्रभुके प्रचारित भागवत धर्मके सिद्धान्तका

वैशिष्ट्य समूह कीर्त्तन किया, श्रीमन्दिरके द्वारके खुलनेपर श्रील आचार्यदेवने दूर परही दण्डायमान होकर कुछ देरतक स्तवस्तुति की एवं कीर्त्तन करते हुए श्रीमन्दिरकी परिक्रमा करने लगे। परिक्रमा करनेके समय उन्होंने एक पड़े हुए शेषशायी श्रीविग्रह एवं उसके बाद दण्डायमान अवस्थामें ही एक और शेषशायी मूर्त्ति का दर्शनकर उनके चारों हाथोंका अस्त्रादि हमें लिखलेनेके लिये कहा एवं मठमें आकर श्रीचैतन्यचरितामृत के वर्णनके साथ मिलाकर देखा कि वे यथाक्रमसे अधोक्षज और त्रिविक्रम श्रीविग्रह हैं। इन दोनों विग्रहोंकी कथा आपको ('गौड़ीय' सम्पादकको) सूचित करदेनेके लिये आदेश किया।

श्रील आचार्यदेवकी सन्याससलीलाका सम्वाद जानकर स्थानीय बहु भक्त मठमें उपस्थित हुए। वैष्णवहोम सम्पादनके बाद श्रील आचार्यदेवने ठाकुरमन्दिरमें प्रवेश किया और श्रीश्रील प्रभुपादके निकट यथारीति सन्यास ग्रहण किया। श्रील आचार्यदेव अब श्रीमद् भक्तिप्रमाद पुरी इस सन्यास नामसे विभूषित हुए हैं।

इस प्रकार उन्होंने श्रील गोपालभट्ट गोस्वामी प्रभुकी तिरोभावतिथि को सन्यास लीला प्रकट की एवं उसी दिन गया मठमें बहु वैष्णव, भक्त, सज्जन, और विशिष्ट व्यक्तियोंकी एक सभामें उन्होंने सङ्कीर्त्तन करते हुए प्रायः डेढ़ घण्टेतक एक सारगर्भित भाषण प्रदान किया। उसमें उन्होंने जो दैन्योक्तियां सुनाईं उनके सुननेसे पाषाण भी विदीर्ण होजाता, किन्तु पाषाणसे भी कठिन हमलोगोंका हृदय विदीर्ण नहीं हुआ। उन्होंने श्री श्रीमद् गोपाल भट्ट गोस्वामीके दान और उनके माहात्म्य, त्रिदण्डकी व्याख्या, अवन्ती नगरके भिक्षुककी सहिष्णुता और भजनमें दृढ़ता, जीवशिक्षाके लिये श्रीमन्महाप्रभुका गयामें श्रीगुरुपादपद्म आश्रयग्रहणका लीलाभिनय एवं अधोक्षज विष्णुकी सेवा वैशिष्ट्यकी कथा कीर्त्तन की। सन्यास लीला प्रकट करनेके बाद श्रील आचार्यदेवने जो अतिमर्त्य वैराग्यका आचरण आरम्भ किया है, उसको अपने आँखसे नहीं देखनेसे समझाया नहीं जा सकता। उनको यह जीवशिक्षामयी लीला हमलोगोंकी दुर्बुद्धिको दण्डित करे। जय ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य अष्टोत्तरशत श्री श्रील भक्तिप्रमाद पुरी गोस्वामी प्रभुकी जय !!

शिक्षाष्टक

अनुवादक—रामकीर्ति सिंह वकील, औरंगाबाद।

(१) चरम साधन क्या है ?

चेतोदर्पणमार्ज्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयः कैरवचन्द्रिक वितरणं विद्यावधू जीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्व्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्त्तनम्॥

घनाक्षरी

चित दर्पण मल हारी हरि कीरतन,
भवदावानलके बुझाविवेको वारी है।
श्रेय कुलकैरवको सुखकारी चन्द्रिकासी,
विद्यावरनारीके सुजीवन संचारी है॥
आनन्द उदधि वृद्धकारी प्रतिपद यह,
भक्तिरस भूखेको अमृत स्वाद कारी है।
अखिल प्राणिनके परानको आधार यह,
जय जय जय जय जय जयकारी है॥

(२) नामसाधन सुलभ क्यों है ?

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्व्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।

एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥२॥

सवैया

पावन नामनि में निज नाथ,
प्रभो निज शक्ति सबैभर दीनी ।
तहां नहिं देश न काल न शौच,
अशौचहु की कछु टेक न कीनी ॥
भगवान तुम्हारी कृपा इतनी,
अरु मैं हतभाग महामति हीनी ।
पाइ सुऔसर ऐसो प्रभु,
तबहुं तिन में अनुराग न कीनी ॥

(३) नामसाधन की प्रणाली क्या है ?

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः ॥३॥

दोहा

क्षमाशील तरुतें अधिक, तृणहुं तें लघु होय ।
आप अमानी मानप्रद, हरि कीर्तन कर सोय ॥

(४) साधक की कामना क्या है ?

न धनं न जनं न सुन्दरीं
कवितां वा जगदीश कामये ।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे
भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥४॥

चौपाई

नहिं धन जन न रुचिर कविताई,
चाहौं मैं जगदीश दुहाई ।
जनम जनम तव पद रति होऊ,
अविरल भक्ति-प्रकारण सोऊ ॥

(५)

अयि नन्दतनुज किङ्करं
पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ ।
कृपया तव पादपंकज-
स्थितधूलीसदृशं विचिन्तय ॥

चौपाई

नन्दसुवन मैं किंकर तोरा,
परेउ विकट भवनिधि मंह घोरा ।
निज पद पंकज धूरि समाना,
करि राखहु मोहि कृपानिधाना ॥

(६)

नयनं गलदश्रुधारया
वदनं गद्गदरुद्धया गिरा ।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा
तव नामग्रहणे भविष्यति ॥

चौपाई

प्रभु कहँ कब ऐहैं दिन सोई,
जब तव नाम लेत अस होई ।
नयनन बहिहिं अश्रु जल धारा,
गद्गद कंठन गिरा प्रचारा ॥
हृदय मोद भरि पुलकित गाता,
रहिहौं लेत नाम दिन राता ॥

(७)

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम् ।
शून्यायितं जगत सर्व्वं गोविन्दविरहेण मे ॥

दोहा

युग सम बीतत निमिष मोहि,
निशिदिन बरषत नैन,
शून्य जगत गोविन्द सुनु,
तुम बिनु नहीं क्षण चैन ॥

(८)

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मा-
मदर्शनान्मर्महतां करोतु वा।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः॥

घनाक्षरी

अंक भरि मेले चाहे लात मारि ठेले मोहि,
देश ते निकारै मोहि जानि अति खुसरो।
चाहे तरसावे दरशावे न स्वरूप निज,
चाहे विनती करत मारै मार मुंसरो॥
भावे तेहि जाहि विधि राखै मोहि ताहि विधि,
लम्पट को नेह विचलित बात कुसरो।
नौहूं सुनु सांची सखि सांवरी सुरति रांची,
मेरो प्राणनाथ सोई कृष्ण नहीं दूसरो॥

शिक्षाष्टक

(ॐ विष्णुपाद श्री श्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

परमतत्व एक और अद्वितीय है। यह तत्व सर्वदा सर्व अवस्थामें स्वाभाविक अचिन्त्य शक्तिमें सम्पन्न है।

इसी अचिन्त्य शक्तिके द्वारा यह परमतत्वका एकही समय सविशेष और निर्विशेष दो भिन्न भावोंमें अनुभव होता है।

सविशेष और निर्विशेष दोनों भावोंके, एकही समयमें, सिद्ध होनेपर्भी इन दोनोंमें सविशेष प्रतीति ही बलवती है। निर्विशेष प्रतीति अनुभूत नहीं होती यह केवल मान लीजाती है।

यह सविशेष प्रतीतिमय परमतत्व अचिन्त्य शक्तिके बलसे स्वयं सर्वदा चार रूपोंमें अर्थात् स्वरूप, तद्रूपवैभव, जीव और प्रधान रूपोंमें अवस्थित है।

जैसे सूर्य्य मण्डलका तेज, उसका मण्डल, मण्डलके बाहरकी तेजरश्मि और तेजकी छाया जिस प्रकार एकही सूर्य्यतत्वमें सदा चार रूपोंमें अवस्थित है उसी प्रकार परमतत्वके चार प्रकारके रूप नित्य सिद्ध हैं।

शक्तिमान तत्व स्वरूपतः एक होनेपर भी चार प्रकारका है। अतएव भेद और अभेद दोनों एकही समय नित्य और सत्यात्मक हैं।

परमतत्वकी अचिन्त्य शक्ति विचित्र विक्रममयी है। उसके अनन्त प्रभावोंमें तीन प्रभावोंको हमलोग जान सकते हैं। उन तीन प्रभावोंमें एक एक प्रभाव विशेषतायुक्त होकर तत्वकी पराशक्ति स्वभावतः अन्तरंगा चिच्छक्ति, तटस्था वा जीव शक्ति; बहिरङ्गावा माया शक्ति के रूपोंमें नित्य देदीप्यमान है।

जीवसमूह अन्तरङ्गा शक्तिकी सहायतासे उस तत्वके अगणित रश्मि परमाणुओंके से नित्य सिद्ध हैं, बहिरङ्गाशक्तिकी सहायतासे उस तत्वकी छायाकी रंगोंके जगत्‌पर माया वैभव है। नित्य सिद्ध स्वरूपादिकी असलियत यही है।

स्वरूप अनन्त होनेपर भी विशेष परिचित इन नित्य तीन भावोंसे अर्थात् ऐश्वर्य, माधुर्य्य और औदार्य्य भेदोंसे भगवत्‌स्वरूप तीन प्रकारके हैं अर्थात् नारायणरूप, कृष्णरूप और कृष्ण चैतन्यरूप।

स्वरूपवैभव अनन्त है। उनमेंसे परव्योम गोलोक, वृन्दावन और नवद्वीप इन तीन धामोंसे विशिष्ट वैकुण्ठरूप चिज्जगत् है।

इन्हीं इन्हीं स्वरूपोंके और उनके स्थानोंकी समस्त लीलाओंके उपकरणके ही स्वरूप वैभव कहते हैं।

भगवत् सूर्य्यके बाहर निकले हुए चित्त परमाणुरूप जीवोंकी संख्या अनन्त है।

जीव स्वभावतः स्वरूपशक्ति और बहिरङ्गा मायाशक्ति इनदो वैभवोंके मध्यवर्त्ती तटस्था शक्तिके द्वारा दोनों वैभवोंकी योग्यतासे युक्त है। परन्तु अनादि स्वरूप विमुखताके कारण माया वैभवमें फंसा हुआ है और मायावृत्ति रूपा अविद्यासे पैदा हुए जड़ाभिमानके द्वारा जड़धर्म्मरूप कर्म्ममार्गमें भ्रमणशील है। इसीलिये यह सदा संसार-दुःखसे पीड़ित है।

अनन्त जड़ात्मक ब्रह्माण्ड समूह तथा बद्ध जीवगणके स्थूल और लिङ्गशरीरसे युक्त मायावैभव ही परमतत्त्वकी छायाके वर्णवैचित्र्यरूपमें उस विभूति की अत्यन्त हीन चौथा पाद है।

ऐश्वर्य्यसे भरा हुआ भगवत स्वरूप चतुर्भुज मूर्तिसे वैकुण्ठ परव्योममें दास्य रसाश्रित नित्य सिद्ध जीवगणोंके द्वारा सेवित हैं।

माधुर्य्य प्रचुर भगवत स्वरूप द्विभुजमूर्तिसे वैकुण्ठ के अन्तर प्रकोष्ठमें नित्य दास्य, सख्य, वात्सल्य, और मधुर रससे अनन्तलीलाका विस्तार करनेवाला है।

वैकुण्ठके इस अन्तःपुरमें दो प्रकोष्ठ हैं एक प्रकोष्ठमें गोलोक है जहां मधुर रस नित्य स्वकीय भावात्मक है। दूसरे प्रकोष्ठमें वृन्दावन है जहां मधुर रस नित्यपरकीय भावात्मक है।

औदार्य्य प्रचुर भगवत स्वरूप द्विभुज और कभी षड्भुज मूर्तिसे वैकुण्ठके अन्तर्गत नवद्वीप प्रकोष्ठमें भक्त भावात्मक औदार्य्यरस विशेषसे अपने रस योग्य परिकरोंके साथ जीवाचार्य्य स्वरूपसे नित्य विराजमान है।

१४०७ शकाब्द के फाल्गुनी पूर्णिमाके सन्ध्याके बाद औदार्य्य प्रचुर भगवान् श्री चैतन्यदेव गौड़देशमें गंगातीरपर प्रपञ्चगत स्वीयधाम नवद्वीपमें श्री जगन्नाथ मिश्रकी पत्नी श्री शची देवीके गर्भसे अवतीर्ण हुए। और उन्होंने शिशुकालके वयसोचित बालचपलता, पौगण्ड वयसमें विद्याभ्यासादि, कैशोर वयसमें विवाह, माध्व सम्प्रदायी वैष्णव श्री ईश्वरपुरीके पास दीक्षा ग्रहण और कीर्त्तन प्रचार द्वारा समस्त गौड़ भूमिका आनन्द विधान किया।

चौबीश वर्षकी अवस्थामें केशव भारतीसे सन्यास ग्रहण करके पहले छः वर्षोंमें पाश्चात्य, गौड़ तट, दाक्षिणात्य प्रभृति देशोंमें पवित्र हरिभक्तिका प्रचार और शुद्ध हरिभक्तिके विरुद्ध समस्त मतोंका खण्डन किया और अन्तिम अठारह वर्षों तक श्री पुरुषोत्तम क्षेत्रमें अपने पार्षदोंके साथ रहते हुए श्री रूप सनातन प्रभृति प्रचारकोंके द्वारा बहुत देशोंमें अपने "अचिन्त्य भेदाभेद" मतका प्रचार किया, और अपने बनाए हुए शिक्षाष्टकके प्रेमरसका पान कराते हुए जीवोंकी कर्तव्यता विधान की।

श्री कृष्णदास गोस्वामी श्री चैतन्यचरितामृतकी अन्त्य लीलाके २०वे परिच्छेदमें लिखते हैं:—

पूर्वे अष्ट श्लोक करि लोक शिक्षा दिल।
सेइ अष्ट श्लोक आपने आस्वादिल ॥
प्रभु शिक्षा अष्ट श्लोक येइ पढ़े सुने।
कृष्ण प्रेम भक्ति तार बाढ़े दिने दिने ॥

प्रभुने जिन आठ श्लोकोंका प्रचार किया था उनके तात्पर्यकी व्याख्या करता हूँ।

(५)

जिस श्री कृष्ण संकीर्त्तनके द्वारा जीवोंका चित्त-दर्पण मार्जित होता है, भवरूप महादावाग्नि बुझ जाती है, श्रेय रूप कुमुद विकाशक भाव चन्द्रिका वितरित होती है और जो विद्या वधूके जीवन स्वरूप आनन्द समुद्रको वर्धन करने वाला है, पद पदपर पूर्णामृतका आस्वादन कराने वाला है एवं शुद्ध जीवके समस्त स्वरूपको स्निग्ध करने वाला है वह श्रीकृष्ण नाम, रूप, लीला संकीर्त्तन सर्वोपरी उपयुक्त हो।

इस श्लोकके द्वारा परम औदार्य्य विग्रह निखिल जीवनाचार्य्य श्री मन्महाप्रभु समस्त तत्वोंको बतलाते हुए जीवगणको आशीर्वाद करते हैं। पूर्वोक्त परमतत्वके अन्तर्गत तटस्था शक्तिसे पैदा हुए जीवके सम्बन्ध ज्ञानकी सिद्धिके लिये "चेतोदर्पण मार्ज्जनम् भवमहादावाग्नि निर्वापणम्" इस चरणकी उक्ति हुई है। स्वरूप सिद्धि क्या है? जीव स्वभावत: तटस्थ अर्थात् स्वरूपानन्दरूप वैकुण्ठ और विरूपानन्द रूप माया वैभव इन दोनों अवस्थाओंके योग्य है।

परेश वैमुख्यवश होनेके कारण उसने मायामें प्रवेश किया है, और विशुद्ध चिदभिमान रूप विशुद्ध अहंकार विकृत होकर जड़ाभिमान रूप विकारके द्वारा शुद्ध चिततत्व जड़मलसे ढक गया है।

कृष्णानुशीलनके द्वारा चित्तका अविद्यामल दूर होनेसे चित्त दर्पणमें स्वरूप तत्वका विशुद्ध दर्शन होता है इसी अवस्थाका नाम स्वरूप सिद्धि है।

इस सिद्धिके अवान्तर फलसे सुख दुःखका नाश हो जाता है। जीव इससे माया स्वरूप वैधर्म्मको परित्याग करके स्वरूपशक्तिका आश्रय लाभ करता है, भगवत् स्वरूप, जीवस्वरूप, माया-स्वरूप और मायान्तर्गत भूत, अविद्यात्मक काल और कर्म्म स्वरूप ज्ञानको सम्बन्ध ज्ञान कहते हैं।

"श्रेय: कैरव चन्द्रिका वितरणम्" इस अर्द्धपद के द्वारा अभिधेयतत्त्वरूप साधन भक्तिका उल्लेख किया है। कर्म्म ज्ञानादिके द्वारा जीवका नित्य मंगल-साधन नहीं हो सकता है। केवल हरिभक्तिके द्वारा ही यह साधित होता है।

सत्संगके द्वारा इस प्रकारकी शास्त्रार्थ अवधान-रूपा श्रद्धाके उत्पन्न होनेसे जीव साधु गुरुपदाश्रय करके श्रवण कीर्त्तन, विष्णुस्मरण, पादसेवन, अर्पन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन रूप नवधा भक्तिका अवलम्बन करके श्रीकृष्ण संकीर्तन करता है। और इसी संकीर्त्तनसे पराविद्याकी परम-ज्योति प्रकाशित होकर जीवका श्रेय साधन करती है।

साधनाङ्गके द्वारा पहलेकी जनमी हुई श्रद्धा वा भगवन्माधुर्य्य लोभ जिस समय परिपक्व होकर निष्ठा, रुचि, आसक्ति इत्यादि अवस्थाओंको पार करके भावदशा प्राप्त होती है उस समय स्वरूपत: जडोद्भूत स्थूल और लिङ्गरूप औपाधिक देहद्वय आत्माभिमान शून्य हो जाता है और पूर्व सिद्ध चित् स्वरूप और रसाधिकार विशेषसे इस योग्य चिद्देह प्राप्त होता है।

मधुर रस विशिष्ट जीवगण अपना रस योग्य गोपीदेह लाभ करके माधुर्य्यमय श्री वृन्दावन धाम में कृष्ण लीलाके उपकरण हो जाते हैं।

यहां पर स्वरूप शक्ति विद्याके प्रभावसे जीवका गोपीभाव प्राप्त करना ही स्वरूपत: विद्यावधूत्व प्राप्त करना है। उस समय जीव विद्यावधू होकर श्रीकृष्ण कीर्तनको जीवन स्वरूपसे वरण करता है।

भावदशा क्रमशः चिद्धामका विभाव अनुभाव, सात्विक और व्यभिचारी रूप चित्त सामग्रीके द्वारा परिपुष्ट होकर चिदेकरसता लाभ करता है। ऐसे समयमें जीवकी आनन्दाम्बुधि स्वभावतः परिवर्द्धित होता है और चिद्रसकी नित्यता धर्म्मके द्वारा भूत भविष्यत् रूप जड़मल दूर हो जाता है। और उसके लिये सदाही वर्तमान कालकी नवीनता रहती है अतएव अनुराग लब्ध जीवको पग पग पर श्रीकृष्ण संकीर्त्तन पूर्णामृत स्वादनरूप होता है इस अवस्थामें गुण गुणी भेदभाव जनित विशुद्ध चिन्मय तत्वात्मक जीव विशुद्ध अहंकार चित्त, मन, बुद्धि देह, इन्द्रियविशिष्ट अणु-चैतन्य स्वरूपमें रहता है।

ऐसी अवस्थामें जो कृष्णकीर्तन होता है वह सर्वात्मस्नपन रूप अवस्था है अर्थात् स्वरूप साक्षात्कार समयमें ब्रह्मलय वा स्वीय सम्भोगसुख रहित सच्चिदानन्द युगल स्वरूपकी सेवाही जीवके सिद्धसत्ताका हर समयका साथी है। यही प्रयोजन तत्व है।

इस प्रकार सम्बन्धाभिधेय प्रयोजन ज्ञानसे मार्जित शुद्धभक्ति स्वरूप श्रीकृष्ण संकीर्तन ही का सर्वत्र प्रयोजन है।

यहांपर श्लोकके चतुर्थ पाद में "परम" शब्दके द्वारा ऐसे धर्म्म ज्ञानान्तर्गत हरि कीर्त्तनका जो भुक्ति और मुक्तिकी साधनाके लिये की जाती है अनादर हुआ है।

श्री कृष्ण संकीर्त्तन चार प्रकारका है। नाम संकीर्त्तन, रूप संकीर्त्तन, गुण संकीर्त्तन और लीला संकीर्त्तन।

परमार्थरूप वस्तु का नाम ही उसके अनुभवका मूल है। नामके पूर्णरूपसे उदित होनेसे उसके गुण समूहका उदय होता है। गुणके सम्पूर्ण रूपसे उदित होनेसे लीला मालूम होती है अतएव नामही सबका मूल एवं समस्त सिद्धियोंका एकमात्र कारण है।

नामही क्रमशः रूप गुण लीलारूप में परिणत हो जाता है अतएव नामको छोड़कर बद्ध और मुक्त दोनों प्रकारके जीवोंकी दूसरी गति नहीं है।

प्रभुके सभी उपदेश नामको ही लक्ष्य करते हैं।

(२)

श्रीमनमहाप्रभु कहते हैं हे भगवन! आपने जीवोंके प्रति अपार करुणा प्रकाश कर अनेक नामका प्रकाश किया है कृष्ण, गोविन्द, अच्युत, प्रभृति मुख्य नामोंमें जिनका अधिकार नहीं होता है उनके लिये परमात्मा, पाता, नियन्ता ब्रह्म प्रभृति अनेक गौण नामका प्रकाशित किया है।

उन समस्त नामोंमेंसे मुख्य नामोंमें समस्त शक्ति एवं गौण नाम समूहोंमें अनेक प्रकारके पापनाशक भुक्ति मुक्तिफल देने वाली शक्ति दे रखी है, जीवकी अयोग्यताका विचार करके अपने नामके लेनेमें देशकालादिका कोई नियम नहीं रखा है। यह सब तुम्हारी कृपा है किन्तु हम अपने दुर्भाग्यकी बात क्या कहें। तुम्हारे ऐसे मधुर नाममें मेरा अनुराग नहीं हुआ।

नाममें समस्त शक्ति है जरूर किन्तु दस प्रकारके नाम अपराध रूप दुर्दैव दूर नहीं होनेसे नाममें जीवकी रुचि नहीं होती।

साधु निन्दा, भगवान कृष्ण और उनकी विभूति शिवादि देवताओंमें भेदबुद्धि, गुरु के प्रति अवज्ञा वेद और उनके अनुगत शास्त्रोंकी निन्दा, हरिनाम में अर्थवाद नाम बल पर असत प्रवृत्ति; अन्यशुभ कर्म्मो के साथ हरिनाम की समानता, बहिर्मुख और

अनधिकारियोंको नामोपदेश, नामका माहात्म्य सुनकर उसमें प्रीति नहीं करना इन्हीं कई एक अपराधोंको बचाकर नाम लेनेसे नामका स्वरूप उदित होता है।

अतएव श्रद्धावान व्यक्ति श्रीगुरुसे नामतत्त्व प्राप्त करके निरपराध होकर उसका अनुशीलन करें।

नाम लेनेवालेके लिये कर्म्मान्तर्गत पापके क्षयकी चेष्टा या पुण्यके संचयकी चेष्टा करनेकी आवश्यक्ता नहीं है। क्योंकि श्रद्धा उदित होनेके समय ही कर्म्माधिकार दूर हो जाता है।

भगवद् विषयकी श्रद्धाके उदय होते ही उससे भिन्न वस्तुओंमें अश्रद्धाहो जाती है। जिस समय यह हो जाता है उस समय पाप पुण्यकी बुद्धि बाकी नहीं रह जाती है।

श्रद्धावान पुरुष स्वभावतः जो कुछ करता है या जिनवस्तुओंमें उसको विरक्ति होती है वे सभी विधि निर्दिष्ट पुण्यकी अपेक्षा सार्थक और निर्मल होते हैं।

किन्तु पूर्वोक्त नामापराधके रहनेसे श्रद्धा क्रमशः उन्नत होकर निष्ठाके रूपमें होनेके बदलेमें अवनत हो जाती है।

सारा जीवन साधन करनेसे भी निरपराध नाम नहीं होनेके कारण नामाभास अवस्था उन्नति लाभ नहीं करती।

इसी लिये पद्मपुराणमें इस प्रकार कहा है "नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम "।

अविश्रान्ति प्रयुक्तानि तान्येवार्थ करानिच "॥ अर्थात् नामापराध छोड़नेके लिये व्याकुल चित्तसे कुछ दिन अनवरत नाम लेनेसे अपराध होनेके अवकाश नहीं मिलनेके कारण नामापराध शून्यता हो जाती है।

(३)

अपराध रहित होकर श्रद्धावान व्यक्ति जिस समय मुख्य नामकी आलोचना करते हैं उस समय उनको स्वभावतः चार लक्षण अनुभवमें आते हैं। अतएव श्री महाप्रभुने कहा है "हे जीवगण! जो अपनेको तृणकी अपेक्षा क्षुद्र समझते हैं जो वृक्षकी सहिष्णुताका अवलम्बन करते हैं और स्वयं अमानी होकर दूसरोंको यथायोग्य सम्मान करते हैं वेही हरिकीर्तनके अधिकारी हैं।

इस जड़ जगत्में तृण अति तुच्छ वस्तु होनेपर भी विश्वमें एक वस्तु कहकर अभिमान करे तो अयुक्त नहीं है किन्तु चित्परमाणु रूप जीवका इस जड़ जगतमें कुछ भी अभिमान करना उचित नहीं है क्योंकि जीवके लिये चिदभिमानही न्यायपर है जड़ाभिमान नितान्त आरोपित और मिथ्या है।

काटने वालेके द्वारा काटेजाने पर भी वृक्ष सब किसीको छाया और फल देना अस्वीकार नहीं करता। किन्तु जड़ वस्तुओंसे श्रेष्ठधर्मवाला जीवका उपकार करनेवाला और अपकार करने वाले दोनोंके प्रति सदा दयायुक्त रहना स्वाभाविक है इसका कारण यही है कि जीवकी दया ही जीवमें स्वधर्म्म रूप भक्तिका धर्म विशेष है।

नाम लेनेवालेको स्वयं जड़ाभिमान जनित ब्राह्मणादि वर्ण, सन्न्यासादि आश्रम, धन, रूप, बल, वीर्य अधिकार पद इत्यादिके सम्बन्धमें निरर्थक अभिमान शून्य होकर शुद्ध वैष्णवमात्रके प्रति परम आदर स्वरूप मान देना चाहिये।

भगवत् कृपासे जिन सब अधिकारी सत्व-गणोंने ब्रह्म, शिवादि पद लाभ किया है उनलोगों-को यथायोग्य सम्मान करना चाहिये। यदि पूर्वोक्त लक्षण साधकमें नहीं पाए जायें तो समझना चाहिये कि अपराध अभी भी दूर नहीं हुए हैं।

क्रमशः

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है । प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है । हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रावलीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं ।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगतकी अवस्था, समसामयिक पृथ्वीकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व [illegible] और प्रामाणिक ग्रन्थ व विवरण [illegible] में [illegible] पढ़नेके [illegible] वर्णन किया गया है । ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं । [illegible] साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा । भिक्षा [illegible] प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ पो० बागबाजार, कलकत्ता व श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वोयारी, ढाका ।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका सुबृहत् मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है । निर्मत्सर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे । वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें एण्टिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें । विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं । भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणोंके गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुमण्डित होकर प्रकाशित हुई है । श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा ||) आना ।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहक मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित । भिक्षा |||) मात्र । प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ ।

अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ । बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण । पहले प्रति अध्यायके प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्यविरचित अणुभाष्यसूत्र, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपादका सूत्र-समूह, अणुभाष्य-सूत्रका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्त्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है । इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्रभी संयोजित हुआ है । भिक्षा २) मात्र ।

Printed by :—Mukunda Madhab Das Brahmachari, at the Ramesh Printing Works and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

Regd. No. P. 468.

वर्ष ५] श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः संख्या ९]

भागवत

एकमात्र
पारमार्थिक
मासिक पत्र

५ पद्मनाभ
गौराब्द
४५३

आश्विन कृष्ण ५
संवत
१९९६ वि०

प्रति संख्या —)॥

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

वार्षिक १)

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि-लक्षणा फलाभिसन्धान-रहिता ऐकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होता है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है— उसी भक्तिके बलसे अनर्थ शमन होनेपर आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है ।

सम्पादक—उपदेशक पं० श्री रूपविलास ब्रह्मचारी भक्ति शास्त्री बी० ए० ।

Editor :—Upadeshak Pandit Sree Rupvilas Brahmachari,
Bhaktishastri B A.

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

विषय सूची

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

भागवत

श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना)
वर्ष ५ — संख्या ६
आश्विन कृष्ण ५, ४५३ सं० १९९६ वि०, ३ अक्टूबर सन १९३९

प्रवृत्ति तथा निवृत्ति (३)

(ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील ठाकुर भक्तिविनोद)

यहांपर प्रतिवादीलोग कुतर्क कर सकते हैं और पूछ सकते हैं कि परमेश्वर जीवोंको अपूर्व धाममें न रखकर इस असम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें क्यों रखे हुए हैं। यदि जीव उस धामके योग्य बनाये गये हैं, तब वे वहांपर क्यों नहीं रहे। इस विषयमें भी विश्वास तथा युक्ति उत्तर देगो। हे भागवत महोदयो! आपलोगोंकी आत्मा निगूढ़ प्रदेशमें (हृदय कन्दरेमें) एकबार स्थिरचित्त होकर समाधियोगके द्वारा इस तत्वका विचार करें। समाधिके बिना अप्राकृत तत्वका कोई भाव उपलब्ध नहीं होता। जो लोग समाधिवृत्तिकी आलोचना नहीं करते, उन लोगोंके लिये आत्मतत्व नितान्त दुरूह है। समाधिके द्वारा जीव बाहरी दरवाजोंको बन्द करके अन्तवृत्ति द्वारा अप्राकृत धाममें विचरण करते हुए अप्राकृत तत्वोंका साक्षात् दर्शन करता है। जिस समय हमलोग समाधियोगसे उस परमपुरुष सच्चिदानन्द कृष्णके सन्निकटस्थ होकर साक्षात्कार प्राप्त करते हैं, उस समय हमलोगोंका अन्तःकरण परमप्रेमसे उत्फुल्ल (आनन्दित) होता है। किन्तु उस समय हमलोगोंके पूर्वकृत किसी अपराधके लिये अनुताप उपस्थित होता है। हमलोगोंका उस समय भी इच्छा द्वारा माया-स्वीकाररूप जो अकार्य, वह स्मरणपथारूढ होकर हमलोगोंको विलज्जित तथा सन्तप्यमान करता है। हमलोग उस समय विवेचना करते हैं कि हाय! हमलोगोंने क्यों ऐसे अपूर्व पूर्णानन्दका परित्यागकर मायाके क्षुद्रानन्दमें प्रवेश किया था। ऐसे दयालु

परमेश्वरको परित्यागकर सामान्य जड़सुखकी वाञ्छा की थी। किन्तु परमेश्वर कैसे दयालु हैं! वे हमें परित्याग नहीं कर अपने धामके सहित हमारे निकट वर्त्तमान हैं। हम जिस अवस्थामें पतित क्यों न हों, वे स्व-स्वरूपमें हमारे साथ साथ हमारे पीछे पीछे गमन करते हैं। हमारे केवल दृष्टिपात करनेकी आवश्यकता है। इस प्रकारका भाव समाधिमें हमलोगोंके मनमें निरन्तर उदित होता है। इसका कारण क्या है? हमलोग किसी न किसी समय ईश्वरके निकट अपराधी हुए हैं, यही प्रत्यक्ष मालूम पड़ता है। स्वतः सिद्ध आत्म-प्रत्यय (विश्वास) होनेसे वार्त्ताओंका केवल बीज पाया जाता है, वार्त्ता नहीं जानी जा सकती। इस बीजसे युक्ति तथा शास्त्र विचार द्वारा समग्र वार्त्ता संगृहीत होती है। महाप्रभुने सनातनसे कहा था—

कृष्ण-नित्यदास जीव ताहा भूलि गेल ।
एइ दोषे माया तार गलाय बाँधिल ॥

अभीतक उपनिषद स्वरूप प्रभु वाक्य द्वारा क्या संगृहीत हुआ? मालूम पड़ता है कि जीव किसी समय अपने स्वाभाविक कृष्णभक्तिकी विस्मृति करके भोगेच्छाद्वारा मायाके हाथमें पड़कर इस ब्रह्माण्ड कारागारमें बन्द होनेके सदृश ठहरा हुआ है। असम्पूर्ण मायिक ब्रह्माण्डमें यत्किञ्चित् इन्द्रिय-सुखभोगके द्वारा जीव समय बिता रहा है। इस ब्रह्माण्ड में की अवस्थिति-कालको जीवोंका दण्डकाल कह सकते हैं। जीव अपने कर्मफलसे इस स्थानमें नानाप्रकारका दुःख भोग रहा है। इस ब्रह्माण्डमें हमलोगोंकी जितनी प्राकृत उन्नति होती है, उतनीही बन्धनकी दृढ़ता होती जाती है। यह स्वीकार करना होगा। इस ब्रह्माण्डकी उन्नतिसे हमलोगोंके सुखका कोई कारण नहीं है। जीवकी इस पतित अवस्था को, जो एक निश्चित सत्य है, सभी देशके शास्त्र-वेत्ता स्वीकार करते हैं। खीष्ट धर्ममें आदमका पतन जिस प्रकार हुआ था, उसको आपलोग जानते हैं। ज्ञान-वृक्षका फल-भक्षणही उसके पतनका कारण था। कृष्णके अधीनत्वको परित्यागकर जो अपने ज्ञान द्वारा स्वाधीन होकर भक्ति-सुखको छोड़ देते हैं, उसका और मङ्गल कहां? जीव कृष्णदासत्व परित्यागकर शैतान अर्थात् मायाके हाथमें पड़कर इस ब्रह्माण्डमें दुःख पा रहा है, यह कुराणमें भी स्वीकार किया गया है। जीवका स्वतः सिद्ध सन्तापका मूलही समस्त विवरणमें देखा जाता है। यद्यपि स्वतः सिद्ध विश्वास करनेके उपरान्त भी कोई विशेष सत्यका आविष्कार नहीं किया जाय तो हमलोगोंकी युक्तिशक्तिका क्या फल हुआ? हमलोग पशुओंसे किस विषयमें श्रेष्ठ हुए?

यहांपर प्रतिवादी प्रश्न कर सकते हैं कि जीव क्यों ईश्वरका दासत्व भूल गया तथा परमेश्वरहीने किस कारण उसको इस प्रकार भूल जानेकी योग्यता दी थी। इस विषयके विचारमें प्रवृत्त होनेसे पहले यह जानना चाहिये कि समस्त ज्ञानका आकर जो स्वतः सिद्ध आत्म-प्रत्यय (विश्वास) है वह कभी भी समाधि छोड़कर विवेचित नहीं हो सकता। अतएव हे भागवत! आपलोग और एकबार समाधियोगके द्वारा आत्माके अन्तःपुर धाममें प्रवेश कीजिये। अप्राकृत तत्वस्वरूप भगवद्दीपिका वहांपर निरन्तर सङ्कर्षण-मुखसे सुनी जाती है। जिस प्रकार सनकादि ऋषियोंने भगवान सङ्कर्षणके निकट सात्वती श्रुति भागवत श्रवण किया था आपलोगभी उसी प्रकार श्रवण कीजिये। विशुद्धसत्वमय आत्मावाले सङ्कर्षण अनन्त कहते हैं—श्रवण करो, परमेश्वर सर्वमङ्गल-मय हैं। उन्होंने जीवोंकी अनन्त उन्नतिकी

कल्पनाकर जीवके स्वभावको अपने दासत्वमें परिणत किया है। कृष्ण-दासत्व ही जीवका स्वभाव हुआ। दासत्व-सुखमें जीव परमानन्दसे कालयापन करने लगा। किन्तु जीवका जो अगत्या दासत्व, उसमें जीवको किसी विशेष गौरव नहीं रहनेके कारण अधिकतर उन्नतिका अधिकारी नहीं हो सकता। परमकरुणामय जगदीश्वरने जीवको स्वाधीनता रूप एक अपूर्व रत्न दान किया। उस स्वाधीनताका सद्व्यवहार करके जो सब जीवोंने ईश्वर-सेवामें अधिकतर भक्ति की वे उन्नत अवस्थाके अधिकारी हुए; किन्तु जिस जीवने इस स्वाधीनताका असद्व्यवहार करके भोग वासना करके दासत्वको छोड़ दिया, उन्होंने गुणवती मायासे आकर्षित होकर मायाके अपकृष्ट सेवामें रत होकर कभी दुःख, कभी सुख भोग करनेके लिये भोगायतन प्राकृत देहसे प्राकृत जगतमें प्रवेश किया। यह वृतान्त पुरञ्जन उपाख्यानमें मिलेगा। जो लोग परमेश्वर पर विश्वास करते हैं, किन्तु इन विषयोंके विचारमें प्रवृत्त नहीं होते, वे इस प्रकारके सिद्धान्तमें रह जाते हैं। केवल परमेश्वरकी असीम दयामें विश्वास करके जो भजनानन्दमें कालयापन करते हैं, वे निर्बोध होकर भी सुखी हैं तथा जो इस तत्वका विचार करके इस प्रकार सिद्धान्त करते हैं, उनलोगोंका भी दुःख अपगत होता है, किन्तु जो व्यक्ति इन दोनोंके मध्यमें हैं वे अत्यन्त दुःख पाते हैं। जैसे

> यश्च मूढतमो लोके यश्च बुद्धेः परं गतः।
> तावुभौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः॥

हे भागवत महोदयो! विचारकर देखिये कि जीवके क्लेशका कारण उनको छोड़कर और कौन है? परमेश्वरने हमलोगोंके प्रति अपार करुणा प्रकाश करके हमलोगोंके उद्धार करनेके लिये प्राकृत जगतमें भी आविर्भूत होकर व्रज-लीलाका प्रकाश किया है। अहा! उनकी करुणाकी सीमा नहीं है। इस अप्राकृत व्रजलीलाका जो गम्भीर तत्त्व है, उसके स्पष्ट हृदयङ्गम होनेसे जीवको और दुःख कैसे हो सकता है? संसारके बीच जो लोग कर्मकाण्ड आर्यधर्म कहकर वेद व्याख्या करते हैं, उससे जीवका यथार्थ मङ्गल क्या हो सकता है?

शिक्षाष्टक (२)

(ॐ विष्णुपाद श्री श्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

उक्त चारों लक्षणोंसे युक्त निरपराधनाम ग्रहण करनेसे अहैतुकी, उत्तमा, केवला श्रद्धा, अमिश्रा, अकिञ्चना निर्गुणा इत्यादि विशेषणोंसे युक्त भक्ति प्राप्त होती है।

किन्तु जीवकी बद्धावस्थामें दो व्यतिरेक लक्षण देखे जाते हैं। उन लक्षणोंसे युक्त होनेसे भक्ति शुद्धा होती है। अन्याभिलाषशून्यता और ज्ञान कर्मादिसे अनासक्तता ही भक्तिके व्यतिरेक लक्षण हैं।

(४)

इसी तत्वको अच्छे प्रकारसे सिखलाने के लिये श्री श्री महाप्रभु कहते हैं—"हे जगदीश मैं धन, जन वा सुन्दरी कविताकी प्रार्थना नहीं करता किन्तु जन्म जन्ममें प्राणेश्वर रूप तुममें हमारी अहैतुकी भक्ति रहे" यही प्रार्थना है।

वर्णाश्रमधर्म्मप्रदत्त धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष इत्यादि मैं नहीं चाहता हूँ। देह वा देहानुगत स्त्रीपुत्र कलत्र प्रजादिरूप जन भी मैं नहीं चाहता। कृष्ण

म ...ही पोषण करनेवाली विद्याको छोड़कर सामान्य व्याकरणादि अलङ्कार, काव्य, नाटकादिकी रचना-शक्तिके लिये बहिर्मुख विद्या भी मैं नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ केवल फलानुसन्धान रहित शुद्धा भक्ति। यही मेरी प्रार्थना है।

संसार-दुःखका नाश एवं चित्स्वरूपलाभरूप मोक्ष तो भक्तोंको अनायास ही प्राप्य हैं, ये तो भक्तिके अवान्तर फल हैं। इनके लिये प्रयास वा प्रार्थना द्वारा भक्तिके स्वरूपको दूषित करना उचित नहीं है।

जिस समय जीव को जड़मोचनकी योग्यता प्राप्त होगी उस समय कृष्ण कृपाके द्वारा वह अवश्य ही प्राप्त होजायगा। अतएव भक्तगण जन्म जन्ममें अहैतुकी भक्ति लाभ करें इतनीही वासना करें, और दूसरी वासना न करें।

संसारके दुःखविषयकी आलोचना क्या नितान्त अकर्तव्य है? नहीं। ऐसी बात नहीं है।

भक्ति भावको विशुद्धरूपसे रखकर जहां तक संसार-मोचनके विषयको आलोचना की जा सकती है साधक वहां तक उस विषयकी आलोचना कर सकते हैं। सिद्धान्त यही है कि श्रीकृष्णके निकट संसारके दुःख-मोचनकी प्रार्थना कदापि नहीं करनी चाहिये।

(५)

प्रार्थना केवल इस प्रकार होनी चाहिये कि हे माधुर्य्यरसविषय श्री नन्दनन्दन! मैं तुम्हारा नित्यदास हूँ तुमको भूल जानेसे माया वैभवमें कर्म्मजालमय विषम-भव समुद्रमें गिर गया हूँ। इस अवस्थामें मैं जितनीही चेष्टा करता हूँ उतनाही तुम्हारा चरणाश्रय मुझसे सुदूरवर्ती हुआ जाता है। तुम्हारे कृपा नहीं करनेसे तुम्हारी अकृत्रिम दासता रूप मेरा स्वधर्म्म मेरे लिये सुलभ नहीं हो सकता। हे करुणामय! मुझे अपने पाद पद्मकी धूल बना कर रखो ऐसा होनेसे मैं तुम्हारी बहिर्मुखतारूप मायामें आबद्ध नहीं होऊँगा।

इस प्रकार प्रार्थना करते २ वह करुणामय जिस समय अपना चरणाश्रय देंगे उस समय जीवको और क्लेश नहीं रह जायगा।

(६)

पूर्व पांच श्लोकोंमें सत्सङ्गके साथ साथ कृष्णानुशीलन करनेवाली श्रद्धा, उसके उपरान्त साधुगुरुचरणाश्रय, तब श्रवणकीर्त्तनादिमय भजन, उससे स्वरूपोपलब्धिजनित अविद्यारूप अनर्थ-नाश, तदन्तर निष्ठा, उससे रुचि, उससे आसक्ति और आसक्तिके परिपक्व होने पर भाव वा रति ह्लादिनीसारवृत्तिको आश्रय करके उदित होती है; यही क्रम चला आरहा है। भावदशामें भक्तिका अखण्ड एकस्वरूपत्व सिद्ध होता है। नाम-कीर्त्तन उस समय अत्यन्त प्रबल होता है। शान्ति, अव्यर्थकालत्व, विरक्ति, मानशून्यता, आशाबद्ध, समुत्कण्ठा, नामगान करनेमें रुचि, कृष्णगुणगान करनेमें आसक्ति तथा कृष्णधाममें प्रीति इत्यादि रतिके लक्षण होते हैं। भाव वा रति शुद्धसत्वविशेष प्रेमरूप सूर्यकी किरणों का परमाणु है अर्थात् प्रेमकी प्रथमावस्था है। उसके उदय होनेसे नृत्य, लोटपोट, गीत, चित्कार, शरीर-मोटन, हुंकार, जम्हाई, प्रभूतस्वास, लोकापेक्षाशून्यता, लालास्राव, अट्टहास, घूर्ण तथा हिक्का यह सब अनुभाव तथा स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभेद, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलयरूप अष्ट सात्विक विकार कुछ कुछ देखनेमें आते हैं। उनमेंसे नृत्य, गीत, अश्रु, पुलक और स्वरभङ्ग विशेषरूपसे देखनेमें आते हैं।

अतएव उसदशाकी उपलब्धिकी प्रार्थनाके बदले साधक इस प्रकारकी लालसा करते हैं:—"हे गोपीजनवल्लभ! तुम्हारा अमृतमय नाम उच्चारण करते करते कब मेरी दोनों आंखोंसे अश्रुधारा बह चलेगी। मेरा वदन गद्गद्भावसे कब स्वरभङ्गरूप विकार लाभ करेगा और मेरा समस्त शरीर पुलकित होता रहेगा ? हे नाम! मैं भोगमोक्ष प्रार्थना नहीं करता उसी सर्वानन्दविस्तारिणी भावदशा की प्रार्थना करता हूँ।"

(७)

रतिरूपा आत्मिका भक्ति प्रेम दशामें विभाव, अनुभाव, सात्विक और व्यभिचाररूप भावचतुष्टयके द्वारा परिपुष्ट होकर भक्तिरसरूपमें परिणता होती है। उस समय पूर्वोक्त अनुभाव और सात्विक विकार सम्पूर्णरूपसे देखनेमें आते हैं। ममतातिशयद्वारा भक्तका अन्तःकरण भलीभांति मसृण तथा घनीभूत और भावमय होकर प्रेमका आधार हो जाता है। उस समय भक्तिरसके आश्रय जो भक्त तथा विषयरूप जो कृष्ण हैं उनदोनों-में मुख्य सम्बन्ध—बुद्धि भेदसे शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर यही पांच प्रकारके मुख्यरस तथा उनदोनोंके गौण सम्बन्धसे हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक और वीभत्स यही सात गौणरस देखनेमें आते हैं। जिस जीवकी जिस रसमें रुचि हो उसके लिये वही रस आश्रयणीय है। किन्तु मधुर रस ही सर्वोत्कृष्ट है। उसमें प्रेम, प्रणय, मान, स्नेह, राग, अनुराग और महाभाव सम्पूर्ण-रूपसे अवस्थित हैं। शान्त रसमें उल्लासमयी प्रीति रति अवस्थामें देखनेमें आती है। उस अवस्थामें उस विषयको छोड़कर अन्य विषयोंमें तुच्छबाका विचार रहता है। रति ममतातिशययुक्ता होनेसे प्रेमरूपसे दास्यरसमें देखा जाता है। उस अवस्थामें प्रीतिभङ्गकारी हेतुसकल कार्य नहीं कर सकता। नितान्त विश्वासमय प्रेम प्रणयरूपसे सख्यभावमें देख पड़ता है। उस अवस्थामें विषयका सम्भ्रम-योग्यता रहने पर भी सम्भ्रम नहीं रहता है। प्रियत्वका आतिशय्य प्रयुक्त कौटिल्याभासमय भाववैचित्र्यका नाम मान है। उस अवस्थामें भगवान भी प्रेममय भयको स्वीकार करते हैं। चित्तके अतिशय द्रवभावमय प्रेमको स्नेह कहते है। उस अवस्थामें महावाष्पादि विकार दर्शनमें अतृप्ति, विषयमें ऐश्वर्य्य रहनेपर भी अनिष्टकी आशङ्का होती है। मान और स्नेह वात्सल्यमें ही देखनेमें आता है, अर्थात् शान्त, दास्य तथा सख्यमें नहीं देखे जाते। अभिलाषात्मक स्नेहका नाम राग है, उस अवस्थामें थोड़ा विरह भी असह्य हो जाता है। संयोगपर दुःख भी सुख है। वही राग अनुक्षण अपने विषयीभूत तत्वको नये नये रूपमें अनुभव कराकर स्वयं नवनवभावमें अनुभूत होकर अनुराग नामसे परिचित होता है। उस अवस्थामें आश्रय तथा विषयका परस्पर अत्यन्त वशभाव रहता है। विषय-सम्बन्धसे अन्य प्राणीमें जन्म ग्रहण करनेकी लालसा होती है। विप्रलम्भसे अत्यन्त विस्फूर्त्ति होती है। असमोर्द्ध चमत्कार उन्मत्ततामय अनुरागको ही महाभाव कहते हैं। उस अवस्थामें संयोगके समय निमेषभी असह्य तथा कल्प भी क्षण जान पड़ता है। वियोगमें क्षणकल्पके ऐसा मालूम पड़ता है। योगमें भी वियोगसे उद्दाम अशेष सात्विक विकारादि उदित होते हैं। इन समस्त लक्षणोंका दिग्दर्शन श्री मन्महाप्रभुके वाक्योंसे होता है। "अहो! गोविन्दविरहमें मुझे निमेष युगके समान बोध होता है, नेत्रोंसे वर्षाकालकी धारा चल

रही है तथा समस्त जगत शून्यवत् बोध हो रहा है।" जड़बद्ध जीवोंके लिये पूर्वरागमय विप्रलम्भ अत्यन्त उपयोगी है, यही कहा गया है।

(८)

प्रेमदशाप्राप्त जीवका ऐसा भाव होता है,—

मैं श्रीकृष्ण-चरणारविन्दको छोड़कर और कुछ नहीं जानता। वे कृपा करके मुझे आलिङ्गन करें अथवा चरणके नीचे मुझे मर्दन करके सुखी हों अथवा अदर्शन द्वारा मुझे मर्माहत करें। वे प्रेमलम्पट हैं। मुझे जिस प्रकार विधान करके वे सुख प्राप्त करें मुझे वही अवस्था स्वीकार है। कारण वे मेरे प्राणनाथ हैं दूसरे नहीं। प्रेमदशामें भक्तलोग कृष्णैकजीवन हो जाते हैं। उस समय भक्त तथा कृष्ण दोनोंके बीच आकर्षणरूप एक उभयसम्बन्धनिष्ठ परमधर्म उदय होता है। चुम्बक और लोहा जिस प्रकार परस्पर व्यवधानरहित रखे जानेपर लोहा चुम्बककी ओर दौड़ता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण-प्रति मार्जित चित्त विहित होता रहता है। यही जीव और कृष्णके बीचमें पूर्वसिद्ध धर्म है। जीवकी विमुखताके कारण यह धर्म लुप्तसा होकर विषय और आश्रयमें अवस्थित है। साम्मुख्य उदित होनेसे ही उस धर्मकी क्रियाका परिचय लक्षित होता है। वही धर्म साधन जीवका कार्य्य और उस धर्मके उदयको छोड़कर उसका और कोई फल नहीं है। श्रीकृष्णने गोपी लोगोंसे कहा है.—(भा: १०-३२-२२)

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जय-गेहशृङ्खलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना॥

इस शिक्षाष्टकमें श्रीमन्महाप्रभुने सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन-स्वरूप-ज्ञान-विज्ञान की सहायतासे साधनभावप्रेम-अनुसन्धानरूप परमतत्त्वकी आलोचनाका उपदेश दिया है,—हे जीव! यदि तुम्हारा भाग्योदय हुआ है, तब समस्त कर्मचेष्टा ज्ञानचेष्टा परित्याग करके तुम विशेष यत्नके साथ इस शिक्षाष्टक का अनुभव करो।

श्रीचैतन्यार्पणमस्तु।

दास

'दास' शब्द इस संसारमें अत्यन्त हेय और घृणित समझा जाता है किन्तु वैकुण्ठमें यह परमोपादेय है। वहां कृष्णही एक मात्र प्रभु हैं एवं उनकी कान्ता, पिता माता एवं बन्धु-बान्धव सभी उनके सेवक वा दास हैं। कृष्णही एकमात्र भोक्ता हैं, और उनके सिवाय सभी उनके भोग्य हैं। सभी एक साथ कृष्णेन्द्रिय तर्पणमें व्यस्त हैं। किन्तु इस संसारमें ठीक उसका उल्टा है। इस संसारके प्रभु-भृत्य, पिता-पुत्र, कान्त कान्ता सभी प्रभु अभिमानी हैं। इन लोगोंमें एक दूसरेका दासत्व करनेका दिखावा रहनेपर भी अन्तरमें प्रभु अभिमान ही प्रबल है। यहां कोई किसीके आधीन नहीं रहना चाहता, सभी अपना अपना सुख चाहते हैं। इसी लिये इस संसारमें परस्पर विवाद विसम्वाद और नाना प्रकारकी अशान्ति देखी जाती है। भगवानकी सेवामें कितना असीम सुख है यह हम लोगोंकी उपलब्धिका विषय नहीं होता। इसीलिये हम लोग दास्य सम्बन्धमें ऐसी विकृत धारणा पोषण करते हैं। शास्त्र कहते हैं—

"कृष्णदास अभिमाने जे आनन्द सिन्धु।
कोटी ब्रह्म-सुख नहे तार एक विन्दु॥"

भगवान् भोगकर जो सुख अनुभव करते हैं उससे अधिक आनन्द उनके सेवक सम्प्रदाय उनकी सेवा करके पाते हैं। कृष्ण दास्यकी इतनी महिमा है।

कृष्णके सिवाय सभी उनके भृत्य हैं इस कथा-का शास्त्रने तारस्वरसे कीर्त्तन किया है।

"एकला ईश्वर कृष्ण आर सब भृत्य।
जारे जैछे नाचाय से तैछे करे नृत्य॥"

सख्य, वात्सल्य, मधुरादि सभी रसमें पूर्णदास्य विराजमान है।

कृष्णेर प्रेयसी व्रजेर जत गोपीगण।
जार पदधूली करे उद्धव प्रार्थन॥
जा सबार उपरे कृष्णेर प्रिय नहीं आन।
तारा वो करेन कृष्णेर दासी अभिमान॥

श्रीकृष्णके द्वितीय देह सभी विष्णु तत्वके मूल शक्तिमत्तत्व श्रीबलदेव नित्यानन्द प्रभुभी अपनेको सर्वदा गौर-कृष्ण दासही समझते हैं।

आपनाके भृत्य करि कृष्णे प्रभु जाने।
कृष्णेर कलार कला आपनाके माने॥

यहां तक कि कृष्ण-दास्यमें इतना सुख है कि उस सुखका आस्वादन करनेके लिये भगवान कृष्ण भक्तभाव अङ्गीकार कर गौराङ्ग रूपसे इस संसारमें आये थे। कृष्ण दास्यकी इतनी महिमा है, कृष्ण दास्यमें इतना सुख है! अतः ऐसा मूढ़ कौन होगा जो ऐसा सेवासुखरूप परमानन्द प्राप्त करनेसे वञ्चित रहे? इसी लिये भक्तगण भूलसे भी कृष्णदास्यकी कथा विस्मृत नहीं करते।

बहुतसे लोग अज्ञतावश समझते हैं कि वैष्णव-का अर्थ है नौकर-नौकरानी या दास-दासी। क्योंकि वे इस जगत्‌में भी दास होना अर्थात् भगवान्‌के अधीन रहना चाहते हैं और उस जगत्‌में भी अधीन अवस्थाको ही पसंद करते हैं। यदि इस लोक और परलोक दोनोंमें ही अधीन रहना हुआ तो लाभ क्या हुआ? मूर्खोंका यह विचार चाञ्चल्य उन लोगोंकी अज्ञताका ही परिचायक है। वे इस जगत्‌की धारणाको उस जगत्‌में ले जाना चाहते हैं। इसीलिये उन लोगोंकी ऐसी अवस्था है। किन्तु भगवत्सेवासम्पन्न बुद्धिमान व्यक्ति ऐसी मूढ़ताको प्रश्रय नहीं देते।

कृष्ण दास्यके असमोर्द्ध महिमाकी कथा हम-लोग कृष्णसेवावञ्चित होनेसे नहीं जानते। किन्तु शास्त्र कहते हैं—

अल्प करि ना मानिह 'दास' हेन नाम।
अल्प भाग्ये दास नाहि करे भगवान॥
आगे हय मुक्ति तबे सब बन्ध नाश।
तबे से हइते पारे श्रीकृष्णेर दास॥

हम लोगोंमें अनेकों व्यक्ति स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिये व्यस्त हैं किन्तु प्रकृत स्वाधीनता किस प्रकार प्राप्त की जाती है इसका ज्ञान उन्हें नहीं है। इसीलिये हमलोगोंका परिश्रम और चीत्कारही सार होता है। इस संसारमें दास्य बन्धन और पराधीनता बड़ाही कष्टकर है। किन्तु उस जगत्‌में स्वराट् पुरुषका दास्यही पूर्णतम स्वाधीनता है, पूर्णतम आनन्द वा पूर्णतम मङ्गल है। उसमें दुःखकी कोई कथा नहीं है। यह दास्य कृष्णेन्द्रिय तर्पणपर है, निजेन्द्रिय तर्पणपर नहीं है। यहांके घृणित दास्यके साथ वहांके परमोपादेय दास्यका यही पार्थक्य है। वर्तमान श्री गौड़ीयमठही एकमात्र गुरुगौरानुगत्यमें कृष्णदास्यके असमोर्द्धत्व प्रचारमें दृढ़व्रत है।

हम लोगोंकी धारणा है कि इस संसारमें प्रभु होना ही वाञ्छनीय है, क्योंकि दास्य जीवनमें आज्ञाकारी कुत्तेके समान केवल कष्टही भोगना पड़ता है। सुतरां तारतम्य विचारसे दास्यकी अपेक्षा प्रभुत्वका ही आदर करना उचित है। भुक्तिवाञ्छित (मुक्तिहीन) दास्यहीन हमलोग वैकुण्ठ और मायिक जगत्‌का वैशिष्ट्य नहीं समझते हैं। इसीलिये इसके सम्बन्धमें हमलोगों के हृदयमें नाना प्रकारके चिन्तास्रोत उपस्थित होते हैं। भगवद्दास्यही जो आत्माकी एकमात्र वृत्ति है— इस बातके साधु मुखसे श्रवण न करनेके कारण ही अनादिकालसे हम लोग दुःखमिश्र सुख प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय जो भगवत्सेवा है, उससे उदासीन होकर भोग और त्यागमें सुखानुसन्धान करते हुए अकिञ्चन होते हैं।

भक्तगण सर्वदा सेवानन्दमें मत्त हैं। वे नित्य वैकुण्ठवासी हैं। कुण्ठाका लेश भी वहां नहीं है। वे परम दयालु और परदुःखदुःखी हैं। इसीलिये हमलोगोंको सेवासुख-प्रदानपूर्वक आनन्द समुद्रमें निमज्जन करानेके लिये वे इस जगतमें आगमन करते हैं। उन लोगोंके श्रीमुखसे हम लोग सुन पाते हैं,—आत्यन्तिकज्ञानसे भगवानकी सेवा विस्मृत होना उचित नहीं है। विष्णुदास्यमें लालसा ही जीव का मङ्गल उत्पादन करती है। साधु संगके प्रभावसे भगवानकी एकान्तिकी सेवा प्राप्त होनेसे जीवका परम मङ्गल होता है। भगवद्दास्यके बिना— भगवानके प्रीतिविधानके बिना—आनन्दमयके साथ नित्य सम्बन्धयुक्त न होने तक जीवको शान्ति प्राप्त करनेका और कोई उपाय नहीं। इसीलिये आज हमलोग हरिगुरुवैष्णवचरणमें उनका नित्यदास्य प्रार्थना कर रहे हैं एवं इसके लिये कर जोड़कर सभीको अनुरोध कर रहे हैं।—

प्रेमधन बिना व्यर्थ दरिद्र जीवन।
'दास करि' वेतन मोरे देह(दीजिये) प्रेमधन॥
(चै० च०)

'आददानस्तृणं दन्तैरिदं याचे पुनः पुनः।
श्रीमद्रूपपदाम्भोजधूलिस्स्यां जन्म जन्मनि॥
"भववन्धच्छिदे तस्मै स्पृहयामि न मुक्तये।
भवान् प्रभुरहं दास इति यत्र विलुप्यते॥"
"मज्जन्मनः फलमिदं मधुकैटभारे
मत्प्रार्थनीय मदनुग्रह एष एव।
त्वद्भृत्य-भृत्य-परिचारक भृत्य भृत्य-
भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ॥"

वैष्णव कौन पहचानेगा ?

श्री श्रीमन्महाप्रभुने वैष्णवका लक्षण इस प्रकार वर्णन किया है:—

श्रद्धावान् जन हय भक्ति अधिकारी।
'उत्तम,' 'मध्यम,' 'कनिष्ठ'—श्रद्धानुसारी॥
शास्त्रयुक्त्ये सुनिपुण दृढ़ा श्रद्धा याँर (जिसका)।
उत्तम अधिकारी सेइ तारये संसार॥
शास्त्र-युक्ति नाहि जाने दृढ़, श्रद्धावान्।
'मध्यम अधिकारी' सेइ महाभाग्यवान्
याहार कोमल श्रद्धा से कनिष्ठ जन।
क्रमे क्रमे तिहो भक्त होइबे उत्तम॥

पूर्वोक्तमतानुसार जिनके हृदयमें श्रद्धा हुई है, वे ही भक्तिके अधिकारी हैं। वही श्रद्धावान् व्यक्तिगण उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ भेदसे त्रिविध हैं। जो

शास्त्र और युक्तिमें दक्ष होकर दृढ़-श्रद्ध हुए हैं वे उत्तमाधिकारी हैं, जो दृढ़ शास्त्रयुक्ति नहीं जानते, किन्तु श्रद्धावान् हैं, वे मध्यमाधिकारी हैं, और जिनकी श्रद्धा दृढ़ नहीं हुई है, वे कनिष्ठाधिकारी हैं। इस त्रिविध विभागके द्वारा केवल भक्त लोगोंकाही विभाग हुआ ऐसा नहीं, शुद्धभक्तिके अधिकारी व्यक्तिका भी विभाग हुआ। कनिष्ठ-श्रद्ध केवल 'कृष्णभक्ति अच्छी है' इतना ही मात्र विश्वास करते हैं, किन्तु शुद्ध कृष्णभक्ति क्या है एवं भक्तिके तटस्थ लक्षण द्वारा सिद्ध-प्रक्रिया क्या है, उसको नहीं जानते। इसीलिये कोमल श्रद्धालुओंके हृदयमें ज्ञानकर्मका मिश्र भाव पाया जाता है। उसके तिरोहित होनेसे साधक मध्यमाधिकारी होते हैं। फिर वही मध्यमाधिकार-गत श्रद्धा शास्त्रयुक्ति द्वारा जब दृढ़ीकृत होगी तब वे उत्तमाधिकारी होंगे।

जो भक्त ईश्वरमें प्रेम, भक्तमें मैत्री, मूढ़लोगोंपर कृपा एवं विद्वेषी लोगोंके प्रति उपेक्षा करते हैं, वे मध्यम भक्त हैं। जो लौकिक एवं पारिवारिक प्रथाक्रमसे परम्परागत श्रद्धाके साथ अर्च्चा-मूर्त्तिमें हरिकी पूजा करते हैं, किन्तु शास्त्रानुशीलन द्वारा शुद्धभक्तितत्व अवगत न होनेके कारण हरिभक्तोंकी पूजा नहीं करते,—वे प्राकृत भक्त हैं अर्थात् उन्होंने केवल भक्तिपर्व मात्र आरम्भ किया है। वैसेलोगोंको भक्त-प्राय वा वैष्णवाभास प्रभृति शब्दोंमें वर्णन किया गया है।

तात्पर्य यह है कि जब वे ईश्वरके प्रति प्रेम, भक्तके प्रति मैत्री, मूढ़लोगोंके प्रति कृपा एवं भगवद्विद्वेषी और भक्तविद्वेषीको उपेक्षा करनेमें समर्थ होते हैं तब वे शुद्धभक्तरूपसे मध्यमभक्तके मध्यमें परिगणित होते हैं। इसके बाद भजन करते करते जब उनका सर्वभूतमें भगवद्भाव एवं सभी भगवत्पदार्थोंमें आत्मस्वरूपदृष्टि पड़ती है, उस समय उनका ईश्वर, तदधीन व्यक्ति, बालिश एवं विद्वेषीके प्रति भेदभाव नहीं रहता। उसी अवस्थामें वे भागवतोत्तम होते हैं।" (अमृतप्रवाहभाष्य) मध्यम-भक्त श्रद्धावान् होनेपर भी शास्त्रादिमें उतने कुशल नहीं होते। और कोमल श्रद्धाविशिष्ट कनिष्ठ भक्त शास्त्रज्ञान विहीन होते हैं, अतः इन दो श्रेणियोंके भक्त उत्तम भागवतका स्वरूप किस प्रकार समझेंगे?

जिसको उत्तम समझकर जाना गया है एवं उसके अनुरूप सम्मान किया गया है, उसको अकस्मात विना कारण अस्वीकार करनेसे वा लघु प्रतिपादन करनेकी चेष्टा होनेसे मध्यम और कनिष्ठके मध्यमें कोई गड़बड़ी आई है ऐसा समझना होगा। कनक, कामिनी वा प्रतिष्ठाकी वासना मनुष्यको अन्धा कर देती है; उस समय उसको और हिताहित ज्ञान नहीं रहता। अभक्त-सङ्ग उत्तमाधिकारीको श्रधाको कम नहीं कर सकता। किन्तु अभक्तगण यदि प्रपन्न हों तो उत्तमाधिकारीके सङ्गमें उत्तम हो सकते हैं; नहीं तो केला, मूलीकी चर्चा कर चले जानेसे कुछ लाभ नहीं होगा।

"आश्रय लइया भजे, तारे कृष्ण नाहि त्यजे, आर सब मरे अकारण"—इस महाजन-वाणीको भूलकर वा इसकी उपेक्षाकर स्वतन्त्रताके वशीभूत होना सर्वनाशका मूल है। कनिष्ठ वा मध्यम भक्तको सर्वदा उत्तम-भक्तका आश्रय आवश्यक है। किन्तु जहां अन्य प्रकारकी वासना है, वहां ही स्वतन्त्र होनेकी चेष्टा है। उत्तमभक्तके आश्रयमें रहनेसे अपनी स्वतन्त्रतावश स्वेच्छापूर्वक काम नहीं करने पायेंगे क्योंकि वे शासनके आधीन रखेंगे।

मनेर कथा गोरा जाने फाँकि केमने दिबे।
सरल होले गोरा शिक्षा बुझिया लोइबे॥

बाहरसे लोगोंको दिखलानेके लिये भगवद् भजनकी चेष्टा करनेसे क्या होगा, अन्तर्यामी रूपसे श्रीकृष्ण हमलोगोंका स्वरूप पहचान लेते हैं। अत शासन ग्रहण नहीं करनेसे 'स्वकर्मफलभुक् पुमान्'। यदि शुद्ध भागवतके मुखसे मनुष्य जन्मके सुदुर्लभत्वकी कथा सुनकर और 'काल विलम्ब न कर हरि भजन करो' यह वाणी सुनकर भी मेरी अन्य वासना जैसे भोगवासना, मोक्षकामना, सिद्धिकामना वा देशभ्रमणादि काम हृदयमें उदित हो, और मैं बाहरसे हरिभजन करनेकी छलना दिखलाकर हृदयमें इन सब कामनाओंको पोसनेकी चेष्टा करूं तो अन्याभिलापका प्रश्रय देना हुआ। अत शुद्धभक्तिसे बहुत दूर रहा।

सद्गुरुपदाश्रयकर भजन आरम्भ करनेसे अनर्थ निवृत्ति होनेके पहले साधककी कई अवस्थाएं हैं, उसके मध्यमें 'तरङ्गरङ्गिनी' नामक अवस्था आनेसे लोग मुझपर बहुत श्रद्धा करते हैं, मेरी कथासे बहुत लोग आकृष्ट हो रहे हैं एवं मेरी लाभ-पूजा प्रतिष्ठा बहुत हो रही है, सुतरां उत्तम भागवतसे मैं क्या किसी अंशमें कम हूं?—इस प्रकार अभिमान आकर हमलोगोंको और भी अनर्थके मध्यमें ले जाता है। मेरा यथेष्ट पाण्डित्य रह सकता है, मेरे वागाडम्बरसे आकृष्ट होकर बहुत लोग आ सकते हैं, किन्तु मेरी कितनी निष्ठा हुई है? मैं क्या रुचि, आसक्ति वा भावदशामें उपनीत हो सका हूँ? तब तो 'कृष्णेर चरणे जबे उपजय राग। कृष्ण विनु अन्यत्र तार नहे अनुराग।" इत्यादि बातें मुझमें पूर्णरूपसे देखी जायगी। किन्तु ऐसा न होकर यदि सचमुच ही अन्य वासनाएँ मेरे हृदयपर [illegible] कब्जा किये रहें, तो समझना होगा कि मेरी इतने दिनों की साधन भजन चेष्टा भस्ममें [illegible] समान निरर्थक हुई है; मेरे समान महा दुर्दैवग्रस्त अनर्थ-समुद्रमें निमज्जित व्यक्ति किस प्रकार उत्तम भक्तको पहचानेगा? गौरशक्ति गदाधरके समान व्यक्तिने भी एकदिन पुण्डरीक विद्यानिधिको न पहचाननेका अभिनय कर हमलोगोंके समान महामूर्खोंको अभिमान-पङ्कसे उद्धार करनेकी [illegible] है। किन्तु मैं किसी प्रकारसे भी वह नहीं [illegible]। इसीलिये कहता हूँ, हे दुष्ट मन! [illegible] ठाकुर-की यह वाणी श्रवण करो—

विषय-मदान्ध सब किछु [illegible] जाने।
विद्यामदे, धनमदे वैष्णव [illegible]॥
भागवत पड़िया वो कारो [illegible]।
नित्यानन्द निन्दा करे याइबेक नाश॥
प्रेम भक्ति हय प्रभु-चरणारविन्दे।
सेइ कृष्ण पाय जे वैष्णव नाहि निन्दे॥
निन्दाय नाहिक कार्य सबे पाप लाभ।
एतेके ना करे निन्दा यत महाभाग॥
अनिन्दुक हइ ये सकृत कृष्ण बले।
सत्य सत्य कृष्ण तारे उद्धारिबे हेले॥
वैष्णवेर पाय मोर एइ नमस्कार।
श्रीचैतन्य-नित्यानन्द हउक प्राण मोर॥

श्रवण और कीर्त्तन

भक्तिमार्गमें पहले ही साधुगुरु-मुखसे हरिकथा श्रवण एवं उसके बाद कीर्त्तन है। कीर्त्तन करने-वालोंके चेतनमय नहीं होनेसे अप्राकृतका कीर्त्तन नहीं होता। वैकुण्ठ वा वैकुण्ठशब्द के वक्ता अकिञ्चन हैं। वे शास्त्रयुक्तिपूर्ण चेतन्मयी वाणीके द्वारा श्रोताका चित्त निर्मलकर अर्थात् उसको सभी

धर्मकी किञ्चनता परित्याग कराकर उसको भी अकिञ्चन बना सकते हैं। कीर्त्तनकारीको भगवानका प्राणानुगत होना चाहिये—उन्हें भगवानका शुद्धभक्त होना चाहिये एवं श्रोताको भी श्रद्धालु होकर श्रवण करना चाहिये। ऐसा होनेसे चेतनका विकाश दिखलाई पड़ेगा। साधुमुखसे हरिकथा श्रवणकर उसको साधुसङ्गमें ही कीर्त्तन करना होगा। हमलोग यदि मनोयोगपूर्वक आकर्षक कृष्णकी कथा कीर्त्तन करें, तो हमलोग बहुत आसानीसे उनके प्रति आकृष्ट हो सकेंगे।

मैं क्या करूंगा, मेरा कर्त्तव्य क्या है, यह सब बात यदि मैं किसी अभिज्ञ व्यक्तिके निकट नहीं सुनूं, तो मेरा जीवन किस प्रकार नियमित होगा? यदि किसीके निकट न सुनकर स्वेच्छाचारिताके वश मुझे जो अच्छा लगे वही करनेकी चेष्टा करूं, तो मैं प्रेय पन्थी हुआ, मैंने अपना अमङ्गल आप ही किया। इसलिये श्रेयःपन्थी गुरुकी आवश्यकता है एवं उनके निकट श्रवण कर उसको ग्रहण करना आवश्यक है। साधुमुखसे मङ्गलोपदेश श्रवणकर उसको फिर साधुके निकट ही कीर्त्तन करना आवश्यक है। साधुलोग मेरे मङ्गलाकाङ्क्षी बन्धु हैं; मैं यदि उनके निकट श्रुत-विषयका कीर्त्तन करूं तो वे मेरी भूल संशोधन कर देंगे। इसके सिवा यदि हमलोग अकपट भावसे कीर्त्तन करें तो चैत्यगुरु (अन्तर्यामी) भी वह संशोधन कर देते हैं।

श्रवण और कीर्त्तन भक्तिके दो प्रधान अङ्ग हैं; एकको छोड़ देनेसे फल प्राप्त नहीं होता। पक्षी दोनों डैनोंकी सहायतासे उड़ते हैं। एक डैना काट देनेसे उसकी जो अवस्था होती है, श्रवण और कीर्त्तनमें भी एकको छोड़ देनेसे जीवकी वही अवस्था होती है। श्रवण और कीर्त्तन दोनोंही नित्य हैं। यह चिरकाल समभावसे चलेगा। भगवान बड़े ही दयालु हैं, सुतरां उन्होंने [illegible] एकमात्र मङ्गलका उपाय भगवत्कथा [illegible] सुयोग दिया है। भगवानकी [illegible] कि हमलोगोंके [illegible] होनेपर भी [illegible] भगवानको अनायास प्राप्त कर सकें। [illegible] निकट नहीं जानेसे पूर्ण मङ्गल प्राप्त नहीं होता। पूर्णके निकट खण्डानन्द वा परिमित [illegible] हमलोगोंकी आशा नहीं मिटती। श्री[illegible] पूर्ण वस्तु हैं। श्रीचैतन्यदेवने दयाकर सर्वदा [illegible] करनेके लिये—सर्वदा सभीको हरि[illegible] लिये आदेश किया है। जिन्होंने [illegible] उनकी [illegible] श्रवण किया है, वे सर्वदा पूर्ण[illegible] अर्थात् हरिकथा श्रवण-कीर्त्तन करते हैं। किस [illegible] हरिनाम कीर्त्तन नहीं करना होगा, ऐसा कोई सम[illegible] है—हरिः सदा कीर्त्तनीयः। कीर्त्तन श्रवण [illegible] कीर्त्तन आरम्भ होता है, [illegible] करनेसे स्मरण [illegible] है। कीर्त्तनकारी जब कीर्त्तन करते हैं, उस समय हरिकी कथा स्मरण होती है। सुतरां निरन्तर कीर्त्तनही निरन्तर कृष्णस्मृति प्राप्त करनेका सहज उपाय है, यह अनायास ही अनुमेय है। जो सुमेधा हैं वे ही कृष्ण कीर्त्तन करते हैं; और कुमेधागण अन्याभिलाषी हैं सुतरां उनकी कीर्त्तनमें रुचि नहीं है। श्रीवार्षभानवी सर्वदा ही कृष्णनाम उच्चारण करती हैं। वे साक्षात् कृष्ण भी नहीं हैं, फिर कृष्णके सिवाय दूसरा कोई नहीं है। श्रीवार्षभानवी सुमेधा लोगोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं; और श्रीगौरसुन्दर इन सुमेधालोगोंके मूलपुरुष हैं।

कृष्ण कौन वस्तु हैं, यह हमलोग नहीं जानते, इसीलिये कृष्ण अपनी सर्वशक्ति नाममें अर्पणकर श्रीनामरूपसे जगत्‌में अवतीर्ण हुए हैं। गौण और मुख्यभेदसे भगवानके नाम अनन्त हैं। गौणनाममें

शब्द और शब्दीमें कुछ भेद है, किन्तु मुख्य नाममें शब्द और शब्दी अभेद हैं। सवदाही कीर्त्तन करना होगा, नहीं तो इतर कथा हमलोगोंको ग्रस लेगी। यदि हमलोग हरिकथा श्रवण न करें तो अन्य कथा सुने बिना नहीं रह सकेंगे। बहुतेरे हरिकथा छोड़कर मौनधर्मावलम्बन करते हैं, यह कपटता और प्रतिष्ठा-कामना मात्र है। मौनी होनेसे श्रवण और स्मरणका द्वार भी रुद्ध हो जाता है। जो हरिस्मरणकी अवहेलना करते हैं, परममङ्गलमय हरिस्मृति अपेक्षा जिनको अन्य स्मृति अच्छी लगती है वे ही निर्जनता-प्रयासी और मौनी होकर श्रवण-कीर्त्तनका पथ रुद्ध करते हैं। यह बुद्धिमानका कार्य नहीं है। श्रीमद्भागवत का कथन है—

"शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम्।
नातिदीर्घेण कालेन भगवान् विशते हृदि॥"

हरिकथा-श्रवण कीर्त्तन ही साधुलोगोंका जीवन है। इसको छोड़कर वे लोग ठहर नहीं सकते। श्रवण-कीर्त्तन साक्षात भगवत्-सेवा है। सुतरां भक्त भगवत्-सेवा छोड़कर किस प्रकार रहेंगे? हमलोग बद्धजीव हैं, इसीलिये हमलोगोंकी हरिकथा श्रवण कीर्त्तनमें रुचि नहीं है। जिनलोगोंको हरिकथा श्रवण-कीर्त्तनमें रुचि है, उनलोगोंको इतर कथा श्रवण-कीर्त्तनमें रुचि नहीं होती। सुतरां साधुसङ्ग करना ही प्रयोजनीय है।

सन्यास ग्रहण-लीलाके बाद श्रील आचार्यदेव

लोकशिक्षकवर पतितपावनशिरोमणि श्रीश्रील आचार्यदेवने जो सन्यासलीला प्रकट की है, उसपर विचार करते हुए श्री श्रीरूपानुगशुद्धभक्त सम्प्रदायके हृदयमें बहुतसी बातें उदित हो रही हैं। नित्यसिद्ध आचार्यवर्गके सन्यासलीलाका वैशिष्टय आध्यक्षिक और निर्विशेषवादी सम्प्रदाय अनुभव नहीं कर सकता। निर्विशेषवादी सम्प्रदाय कहता है, श्रीरामानुजाचार्यने अपनी पत्नीसे विवाद कर सन्यास लिया था। यादवप्रकाश और कृमिकण्टके भयसे आत्म-गोपन किया था। श्रीमन्महाप्रभु कर्मफलवाध्य जीवके समान मायावादी-सम्प्रदायके सन्यासी हुए थे। क्योंकि, "आमित सन्यासी मायावादे भासि" प्रभृति महाप्रभुके स्वमुखसे निकली हुई उक्ति यह प्रमाण कर रही है। श्रील प्रभुपादने अपने स्वलिखित जीवनचरितमें लिखा है कि पुरीमें शुद्धभक्तिकी कथाका प्रचार आरम्भ करनेपर अन्याभिलाषी-सम्प्रदायने उनके ऊपर नाना प्रकारसे निर्यातन (शत्रुता) आरम्भ किया। उस समय ठाकुर भक्तिविनोद के आदेशसे श्रील प्रभुपादको पुरी परित्याग कर श्रीरामानुजाचार्यके तिरुनारायणपुरमें वास करनेके समान श्रीमायापुरमें निर्जन भजन करना पड़ा था। प्रतीप प्रियनाथ प्रभृतिने श्रीश्रील प्रभुपादकी सन्यासलीलाका तात्पर्य न समझकर उनके चरणोंमें और भी भीषण अपराध किया। उसी आध्यक्षिक निर्विशेषवादी प्रियनाथके प्रत्युत्तर ग्रन्थमें और 'श्रीसज्जनतोषणी' 'गौड़ीय,' 'नदिया प्रकाश' प्रभृति संवाद पत्रके स्तम्भमें यह असंख्यबार खण्डित हुआ है। निर्विशेषवादी श्री श्रीरूप-सनातन और श्रीरघुनाथकी वैराग्य लीलाको मायावादीके फल्गुत्याग और तपस्याको एक सा समझता है। क्योंकि, वे कृष्णभक्तिरसमयी विप्रलम्भ-लीलाकी कथा नहीं समझ सकते। परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवकी सन्यासलीलाके मध्यमें बहुत गूढ़ तात्पर्य भरा है, वह हमलोगोंके समान क्षुद्रवद्ध जीवकी समझ में नहीं आसकती है।

हमलोग कृतघ्न हैं, श्रील आचार्यदेव अहैतुक कृपामय हैं; हमलोग "कामुकाः पश्यन्ति कामिनीमय जगत्" मन्त्रमें दीक्षित हैं, श्रील आचार्यदेवने हमारे उसी जड़ काममें अन्धीभूत चक्षुको अप्राकृत प्रेमाञ्जनशलाकाके द्वारा निर्मल करनेके लिये सर्वदा चेष्टा की है; हमलोग इन्द्रियजज्ञानके विश्वासी हैं, वे अधोक्षज ज्ञानके शिक्षादाता हैं; हमलोग कनक कामिनी-प्रतिष्ठाको ही-हरिभजनाभिनयका उपेय-रूपसे वरण (ग्रहण) करनेके लिये कृतसङ्कल्प हैं, और वे अनुकूलकृष्णानुसन्धानको श्रील प्रभुपादका प्रदत्त सर्वश्रेष्ठ उत्तराधिकाररूपसे वरण करनेके आदर्श-प्रदर्शनकारी हैं।

परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवने हरि-शयन-कालमें अपनी सन्यासलीला प्रकट की है। आध्यात्मिक लोग हरि-शयन कालको कृष्णकार्त्तिकके प्रतिकूल समझते हैं। जिस समय हरि निद्रित हैं, उस समय हरिका अनुसन्धान करना वृथा है—यही उनलोगोंका विचार है। हरिके निद्रित होनेसे किम्वा गुरुगौराङ्गके इस संसारसे विदा ग्रहण करनेसे कनककामिनी-प्रतिष्ठाका भाग बँटवारा लेकर खूब प्रमत्त रहा जाता है। उस समय हरिके अनुसन्धानका क्या प्रयोजन है? हरिदास नामाचार्यके अस्तित्वको भी उस समय सहज ही लोप किया जाता है। कौशल और षड़यन्त्रका आश्रय ग्रहण किया जाता है। सनसर रामचन्द्रखाँके समान नामाचार्यके चरित्र कलङ्कित करनेके लिये अनेक प्रकार अवैध कौशल और षड्यन्त्रका आश्रय ग्रहण किया जाता है किन्तु हरिके दास इस समय जीवके जागरणकी गीति गान करते अधिकतर कृष्णानुसन्धान लीला प्रकट करते हैं।

पतितपावनवर श्रीश्रील आचार्यदेवने श्रील गोपालभट्ट गोस्वामी प्रभुकी विरहस्मृति तिथिमें सन्यास लेकर श्रील भट्टगोस्वामी प्रभुकी रचित और श्रील ठाकुर भक्तिविनोदकी आविष्कृत संस्कारदीपिका वा वैष्णवस्मृतिकी कथा रूपानुग साधु लोगोंके चित्तमें उद्दीप्त की है। हरिभक्तिविलासके उपक्रममें श्रीगोपालभट्टको श्रीगौरप्रिय प्रबोधानन्दके शिष्य और श्रीसनातन-रूप-रघुनाथके प्रियाचरण द्वारा एवं वैष्णवस्मृतिके सञ्चयिता बतलाये गये हैं। अतएव श्रील गोपालभट्टगोस्वामी प्रभुकी विरहस्मृतिके साथ ही साथ श्रीरूपकी धारामें जो विप्रलम्भकी स्मृति है एवं गौरवमार्गमें जो वैष्णव-स्मृतिके विचार हैं, उनका भी समावेश देखा जाता है, अर्थात् आचार्यदेवकी जो सन्यासलीला है वह श्रीश्रील गोपालभट्टके स्मृति-विधानसम्मत है, श्रीरूपकी उपदेशामृत धारामें निष्णात है एवं श्रीरूप-सनातन-रघुनाथके कथामृतके प्रवाहमें सर्वात्मस्नापन (सम्यक्रूपसे आत्माको शीतल करने वाला) मुकुन्दसेवनव्रत है।

कृष्ण पञ्चमीतिथि। ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके आविर्भावतिथिरूपसे धन्य हुई है। कृष्ण पञ्चमीतिथिके साथ श्रीश्रील प्रभुपादके आविर्भाव लीलाकी स्मृतिका समावेश (लगाव) है। श्रील प्रभुपादने इस तिथिमें आविर्भूत होकर अपने श्रेष्ठ निजजनको भक्ति प्रसाद वितरण किया है।

"श्रीमद्भक्तिप्रसाद" नामके मध्यमें श्रीभक्तिविनोद-गौरवाणीकी प्रसन्नता और कृपाकी कथा है। 'पुरी' नामके साथ प्रेमभक्तिके मध्यमूल माधवेन्द्रपुरीका सम्बन्ध और धाराकी कथा एवं गया क्षेत्रमें श्री श्री-ईश्वरपुरीसे भगवान श्रीगौरसुन्दरकी दीक्षालीलाके मध्यमें वही माधवेन्द्रकी सम्बन्धधारा वा ब्राह्ममाध्व गौड़ीयाम्नाय-धाराके प्रवाहकी कथा है।

गया धाममें गयासुर अर्थात आध्यक्षिकता और निर्विशेषवाद असुरका विनाश अधोक्षज विष्णुके पादपद्मके द्वारा साधित हुआ है। त्रिपुरासुरका पुत्र गयासुर है। यह असुर किस प्रकार आध्यक्षिक और निर्विशेषवादीका आदर्श था, वह शास्त्रमें कहा गया है। गयासुरने प्रस्तरत्वमें पारगत होनेका आदर्श प्रदर्शन किया था। इस स्थानमें श्रीगौरसुन्दरने कर्मकाण्डका खण्डन कर चिद्विलाससिद्धान्तके दिव्यज्ञानकी कथा प्रकाशकी थी। इसस्थानमें निरञ्जना वा विरजानदी निर्विशेषवादी बौद्धगणोंकी गति और चिद्विलाससिद्धान्तमें प्रतिष्ठित वैष्णवलोगोंके विचारका वैशिष्ट्य निर्देश कर रही है। गयाधाममें "अयि दीनदयार्द्रनाथ हे मथुरानाथ कदावलोक्यसे।" यह विप्रलम्भगीति कीर्त्तन करनेवाले श्रील माधवेन्द्रपुरीकी जो प्रेमामृतधारा, प्रवाहित हुई थी, वही विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य अष्टोत्तरशत श्री श्रील भक्तिप्रसाद पुरी गोस्वामी प्रभुसे प्रकाशित होकर भक्तिविनोदाम्नायका नित्यत्व संरक्षण कर रही है।

आचार्यदेवने अधोक्षज श्रीगदाधरपादपद्ममें आध्यक्षिकता और निर्विशेषवादको निराश करके भी अधोक्षज मुकुन्दसेवनव्रतमें दीक्षित होनेकी लीला प्रकट कर सम्बन्ध विज्ञान-क्षेत्र काशीमें वैराग्ययुक्ति भक्तिसम्प्रदाता श्री श्रील सनतनप्रभुकी कृपासे अभिषिक्त होनेकी लीला और उसके बाद अभिधेय विज्ञानक्षेत्र प्रयागके दशाश्वमेधमें श्रीरूपके श्री श्रीराधागोविन्दकी सेवामृतमें आत्माके निमज्जित होनेकी लीला प्रकटकर प्रयोजनक्षेत्र श्रीव्रजमण्डलमें अपने रूपानुगवरत्वका परिचय प्रकाश किया है।

उत्तर-पश्चिम प्रदेशके विभिन्न मठोंके सेवकोंने जो विवरण प्रेरण किया है, वह पाठ करनेसे पाषाणहृदयभी विगलित होता है। काशी श्रीसनातन गौड़ीयमठसे श्रीपाद-नवानन्द ब्रह्मचारी भक्तिसुन्दरप्रभुने लिखा है ;—

"परमाराध्यतम श्री श्रीलआचार्यदेवके गयामें सन्न्यासलीला प्रकट करनेके दूसरे दिन अर्थात २३ आषाढ़ शनिवार को १०½ बजे काशीधाममें शुभविजय करनेसे मठके सेवकवृन्द, रायबहादुर गुरुचरण दाविय, शेठ जयगोविन्दलाल, श्रीकृष्णचन्द्रदास अधिकारी प्रभृति बहु विशिष्ट सज्जनोंने श्रीलआचार्यदेवका श्रीपादपद्म अभिनन्दन किया। श्रील आचार्यदेव श्रीसनातनगौड़ीय मठमें उपस्थित होकर श्रीविग्रहके सम्मुख कटे हुए केलेके समान साष्टांग दर्शित हुए एवं उन्होंने वन्दनाकी। दोपहरको श्रीमठमें प्रसाद सेवाके लिये अनुरोध किये जाने पर श्रील आचार्यदेवने मधुकरीभिक्षा संग्रह करनेकी लीलाका आदर्श प्रदर्शन किया और भिन्न भिन्न सज्जनोंके गृहसे हरिकथा-कीर्त्तन कर भिक्षा संग्रह की। मठमें जो थोड़ी देर तक ठहरे उसमें सर्वथा समागत सज्जनवृन्दोंके निकट अविश्रान्तभावसे हरिकथा कीर्त्तन की। इसके बाद श्रीसनातन-शिक्षाक्षेत्र श्रीचैतन्यवट दर्शन करनेके लिये गये एवं रातके नव बजे तक निरन्तर हरिकीर्त्तन किया। कई सज्जन और मठसेवकगण उनकी इस सुगम्भीर जगन्मङ्गल-लीलाके दर्शनसे आनन्दित हुए; किन्तु उनकी आश्चर्यमय वैराग्य दर्शनसे महापाषण्डका हृदय भी विदीर्ण हो जाता है। केवलमात्र त्रिदण्ड और कौपीन बहिर्वासके सिवाय उनके साथ और कोई द्रव्य नहीं है। ठीक महाप्रभुके समान कृष्णप्रेममें उन्मत्त हैं; मुखमें केवल 'कहाँ कृष्ण' यही वाणी है। 'कृष्ण' प्राप्त करना ही होगा; कहाँ जानेसे कृष्ण पाऊँगा?" केवल इसी प्रकार कह रहे हैं, सभीको उपदेश कर

रहे हैं—'कृष्णको पुकारो, और कुछ न चाहो और न बोलो।' श्रील आचार्यदेवने काशीसे २४ आषाढ रविवारको इलाहाबाद शुभ विजय किया है।

इलाहाबादसे श्रीपाद अतुलानन्द ब्रह्मचारी भक्तिकङ्कण भक्तिशास्त्रीजीने एक पत्र लिखा है:—

"परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवने यहां शुभ विजय कर उसी दिन व्रजमण्डलकी ओर शुभ विजय किया है। उनकी यह लीला देखकर सभी अवाक् हुए हैं। यहां आकर मधुकरी-भिक्षा ग्रहणलीला प्रकाश कर कुछ प्रसाद ग्रहण करनेके बाद दशाश्वमेधघाटमें जाकर उन्होंने 'श्रीरूपमञ्जरीपद' प्रभृति सङ्गीत कीर्त्तन किया। उसी दिन पाँच बजे व्रजमण्डलकी ओर यात्रा की।"

श्रीधाम वृन्दावनके प्रेरित संवादसे जाना गया है कि श्रीश्रील आचार्यदेव किसीको साथ न ले अकेला ही व्रजमण्डलके विभिन्न वनोंमें कृष्णानुसन्धान लीला प्रकटकर विचरण कर रहे हैं। श्री श्रील आचार्यदेवका आदर्श देखनेसे ठाकुर श्रील नरोत्तमकी यह आर्त्तिमयी गीति हृदयमें मूर्त्तिमती हो उठती है—

हरि हरि, कबे मोर हइबे सुदिन
फल मूल वृन्दावने, खाइया दिवा अवसाने, (शेषमें)
भ्रमिबो हइया उदासीन॥
शीतल यमुनाजले, स्नान करि कुतुहले।
प्रेमावेशे आनन्दित हइया।
बाहुर उपर बाहु तुलि, वृन्दावने कुलि कुलि,
कृष्ण बोलि बेड़ाबो (भ्रमण करूँगा) कान्दिया॥
देखिबो सङ्केत स्थान जुड़ाबे तापित प्राण,
प्रेमावेशे गड़ागड़ी दिबो।
कहाँ राधा प्राणेश्वरी, कहाँ गिरिवरधारी,
कहाँ नाथ बोलिया डाकिबो॥
माधवीकुञ्जेर परि, सुखे वसि शुकसारी,
गाइबेक राधाकृष्ण रस
तरुमूले वसि ताहा, सुनि जुड़ाइबे हिया।
कबे सुखे गवाँबो दिवस॥
हरि हरि! कबे (कब) हब (होऊंगा) वृन्दावनवासी।
निरखिबो नयने युगल-रूपराशी॥
त्याजिया शयनसुख विचित्र पालङ्क।
कबे व्रजेर धूलाय धूसर हबे (होगा) अङ्ग॥
षड़ रस-भोजन दूरे परिहरि।
कबे व्रजे मागिया खाइबो माधुकरी॥
परिक्रमा करिया बेड़ाबो बने बने।
विश्राम करिब जाइ यमुनापुलिने॥

लोकशिक्षक श्री श्रील आचार्यदेवका यह लीलादर्श मेरे सदृश जड़सम्भोगवादी और आध्यात्मिक निर्विशेषवादीके स्पष्ट और प्रच्छन्न जड़सम्भोगबुद्धिको दण्डित कर उनके श्रीश्री पादपङ्कजमें सम्यक् प्रकारसे शरणागत करे।

श्री श्रील आचार्यदेवके उपदेश

(स्थान श्रीविद्या हरण नाट्यमंदिर (श्रीचैतन्यपीठ) काल १ मार्च १९३९ अपराह्न)

श्रीयुक्त व्रजेश्वरीबाबू—दीक्षागुरु और शिक्षागुरुमें क्या भेद है और क्या विशेषताएं हैं?

श्रील आचार्यदेव—शिक्षागुरु और दीक्षा गुरु दोनो एक अद्वयज्ञान हैं। दीक्षा गुरु मन्त्रदाता और सम्बन्ध ज्ञान दाता है।

गुरु तीन प्रकारके हैं श्रवण गुरु, शिक्षा गुरु और दीक्षा गुरु। श्रवण गुरु वर्त्म प्रदर्शक गुरु हैं दीक्षा गुरु एकही होते हैं दो नहीं हो सकते। श्रवण

गुरु और दीक्षा गुरु अनेक हो सकते हैं। श्रवण गुरु preliminary आरम्भिक बातें सिखलाकर प्रारम्भिक योग्यता देते हैं। जो मंत्र देते हैं वह दीक्षा गुरु हैं वेही सम्बन्ध ज्ञान भी देते हैं। श्री मूर्ति के प्रति क्या कर्तव्य है वे बतला देते हैं।

वे अर्थ पञ्चककी शिक्षा देते हैं संस्कार देते हैं।

शिक्षा गुरु हरिभजनकी बातें बतलाते हैं। किस प्रकार भजन किया जाता है इसकी शिक्षा देते हैं। शिक्षा गुरु और दीक्षा दोनों एक हो सकते हैं इसमें दोनोंमें से किसी एककी बड़ाई दूसरेकी छुटाईकी बात नहीं है।

दीक्षा गुरु और शिक्षा गुरुके बीच दुनीयवी बड़ाई छुटाई (Mundane Superiority and Inferiority) का विचार नहीं है।

(कारण वस्तु एक है) दोनो ही भगवत् प्रेष्ठ है। भगवत् प्रेष्ठोंमें बड़ाई छुटाईका भेद नही है। जिस प्रकार दीक्षा गुरु यदुनन्दन आचार्यके सम्बन्धमें श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी प्रभुने कहा था:—

नामश्रेष्ठं मनुमपि शचीपुत्रमत्र स्वरूपम्।
रूपंतस्याग्रजमुरुपुरीम् माथुरीम् गोष्ठ वाटीम्॥
राधाकुण्डं गिरिवर महा राधिका माधवा शाम्।
प्राप्तो यस्य प्रथित कृपया श्रीगुरुं तं नतोऽस्मि॥

श्रील यदुनन्दनाचार्य श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीके शिक्षा गुरु थे। दीक्षा गुरुने इन्हीं तीनोंकी पता बतलाई है ये ही तीनों आराध्य वस्तु हैं।

श्रील दास गोस्वामी प्रभु, गोष्ठ वाटी राधाकुण्ड, गिरिराज गोवर्धन और राधामाधवकी सेवा पाकर भी "सेवाशाके लिए" क्यों कहा है? सेवा पाकर और "सेवाशा" अर्थात विरह क्यों? वे कृष्णके प्रियतम है तौभी "पालिया" ऐसा अभिमान नहीं करते बल्कि कहते हैं कि "पावेंगे" यही आशा, है।

'पालिया' यह बात सम्भोग है।

दीक्षा गुरु शिक्षा गुरु हो सकते हैं। शिक्षा गुरु अभिधेय दाता है अनर्थ निवृत्तिके बाद अभिधेयके देनेवाले हैं।

शिक्षा गुरु नाम भजनकी शिक्षा देते हैं। दीक्षा गुरु दिव्य ज्ञान वा सम्बन्ध ज्ञानके देनेवाले हैं। वे मंत्र देकर संसार मोचन करते हैं वे मंत्र द्वारा (Tendency to measure the universe) विश्वको नाप लेनेकी प्रवृत्ति और (Predominating mood) भोक्तृत्वाभिमानका नाश करते हैं।

मंत्र है भगवत् शब्द वा भगवन्नाम। मन्त्रमें नमः वा स्वाहा शब्द चतुर्थि विभक्तिमें है।

केवल भगवन्नाम (भजनकी बात) जो विशुद्ध अभिधेय है उसे अनर्थ निवृतिके बाद शिक्षा गुरु बतलाते हैं। अभिधेय और प्रयोजन, शिक्षा गुरु देते हैं। भागवत परम्परा ही शिक्षा गुरु परम्परा है यह दीक्षा गुरु परम्परा नहीं है।

श्रील कृष्णदासके प्रियतम नरोत्तम थे नरोत्तमके दीक्षा गुरु लोकनाथ थे। नरोत्तमके प्रिय थे विश्वनाथ। गंगानारायण प्रभृति तीन पुरुषोंके बाद विश्वनाथ थे। यह पाञ्चरात्रिक परम्परा नहीं है यह शिक्षा गुरु परम्परा है।

ठाकुर भक्ति विनोद श्रील जगन्नाथ दासके पाञ्चरात्रिक शिष्य नहीं थे वे वेदान्त स्यमन्तकके रचियता श्रीराधादामोदरके शिष्य थे। वे राधादामोदरजी वलदेवके दीक्षा गुरु थे। श्रील वलदेव श्री विश्वनाथके अनुगत थे।

सम्बन्ध ज्ञान दीक्षा गुरु देते हैं। नाम भजनकी शिक्षा देते हैं शिक्षा गुरु मन्त्र दीक्षा और भजन शिक्षाके बाद और एक शिक्षा है।

स्वरूप सिद्धिके बाद यदि सौभाग्यसे लीला प्रवेश हो अर्थात् वस्तु सिद्धि हो तब भी शिक्षा गुरुके साथ संग करनेकी आवश्यकता रहती है।

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है । प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है । हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रवालीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं ।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगत्‌की अवस्था, समसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व तथ्य और प्रमाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भावमें साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है । ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं । सुन्दर जिल्द भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा । भिक्षा १) । प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ पो० बागबाजार, कलकत्ता । श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वोयारी, ढाका ।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवनके मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है । निर्मत्सर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे । वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें एन्टिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें । विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं । भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणोंका गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुमण्डित होकर प्रकाशित हुई है । श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा ||) आना ।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित । भिक्षा |||) मात्र । प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ ।

अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ । बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण । पहले प्रति अध्यायके प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्यविरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपादका सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्त्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है । इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्रभी संयोजित हुआ है । भिक्षा २) मात्र ।

Printed by :—Mukunda Madhab Das Brahmachari, at the Ramesh Printing Works
and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

Regd No. P. 468.

वर्ष ५] श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः संख्या १०]

भागवत

एकमात्र
पारमार्थिक
मासिक पत्र

५ दामोदर
गौराब्द
४५३

कार्तिक कृष्ण ५
संवत्
१९९६ वि०

प्रति संख्या ~)॥	स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे । अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥	वार्षिक १)

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि-लक्षणा फलाभिसन्धान-रहिता ऐकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होता है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है—उसी भक्तिके बलसे अनर्थ शमन होनेपर आत्मा प्रसन्नता लाभ करता है।

सम्पादक—उपदेशक पं० श्री रूपविलास ब्रह्मचारी भक्ति शास्त्री बी० ए०।

Editor :—Upadeshak Pandit Sree Rupvilas Brahmachari, Bhaktishastri B A.

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

विषय सूची

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

भागवत

वर्ष ५ — श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना) — संख्या १०

कार्तिक कृष्ण ४, ४५३ म० १९९६ वि०, २ नवम्बर सन् १९३९ ई०

श्रीमद्भागवत

(ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद)

श्रीमद्भागवत ग्रन्थमें कृष्णकथा वर्णन की गयी है। उस कृष्णकथाकीर्त्तनके कानसे प्रवेश करनेसे साक्षात् कृष्णकी स्फूर्ति होती है, उस समय जड़कथाके प्रवेशरूपी मधुकैटभ नामक असुर का विनाश होता है। यही कर्णवेध संस्कार है। चिन्मय कर्ण जड़से आवृत है। विचार करनेपर समझमें आता है कि भोगसम्बन्धी बातें हमारे हृदयको चञ्चल कर देती हैं। ऐसी अवस्थामें कृष्णसे भिन्न विषय ही हमलोगोंका लक्ष्य होता है। श्रद्धा-पूर्वक श्रीमद्भागवतका श्रवण करनेसे जीवके शुद्ध और निर्मल हृदयमें भगवानके वैकुंठ नाम ग्रहण करने, वैकुंठ रूप और गुण श्रवण करने, वैकुंठ-परिकर कीर्त्तन श्रवण करने और वैकुंठलीला कथा श्रवण करनेकी योग्यता पैदा होती है। उस समय उसका हृदय वृन्दावन हो जाता है। वहांपर कृष्णचन्द्रकी अवस्थिति होती है।

जो व्यक्ति मूल छोड़कर शाखा पकड़नेकी नीति-का अवलम्बन करके अनेक कलाओंका ज्ञान प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है वह श्रीमद्भागवतको अनेक शास्त्रोंमेंसे एक शास्त्र समझता है, अतः वह धर्मच्युत (पथभ्रष्ट) होजाता है और इसी कारण श्रीमद्भागवत का तात्पर्य और श्रीभगवान्की लीलाको किसी प्रकार नहीं समझ सकता। उसकी जन्म-जन्मान्तरवाली वासना भागवतके तात्पर्यको समझने नहीं देती। वह भागवत पाठ करके भी कृष्णसे भिन्न वासनाके कारण भक्तिहीन दोषसे दूषित रहता है।

भागवतके तात्पर्यमें प्रवेश न पाकर केवल शब्दोद्दिष्ट व्यापारों द्वारा जड़वासनामें आबद्ध होकर जो समझनेकी चेष्टा करते हैं, वे भगवत् सम्बन्धी कथामें किसी प्रकार प्रवेश नहीं पा सकते।

सारे वेदशास्त्र श्रीमद्भागवतकी 'प्रेम' रूप प्रयोजनतत्व कहते हैं। प्रयोजनमें साधारण भोगीसम्प्रदाय धर्मार्थकामको समझते हैं, त्यागी-सम्प्रदाय मोक्षको पुरुषार्थ कहते हैं, किन्तु भोगी और त्यागी सम्प्रदायको छोड़कर अन्य सुनिर्मल आत्मार्थ भगवद्भजनमें पारङ्गत होकर चारोंवेदोंमसे धर्मार्थ-काम-मोक्ष प्रभृति चतुर्वर्गोंका विचार छोड़कर श्रीमद्भागवतके कृष्णप्रेमको ही प्रयोजन समझते हैं। कर्म, ज्ञान, योग, स्वाध्याय प्रभृति अभिधेय समूह यदि सचमुच पुरुषार्थ संग्रह करनेके लिये उत्कंठित हों तो वे अपना अस्तित्व त्यागकर भक्तिमे ही लीन हो जाते हैं।

वेदशास्त्रकी दधिके साथ उपमा दी गयी है। शुकदेव उसी दधिके मथने वाले हैं, उससे वेद-तात्पर्य मक्खन श्रीमद्भागवतरूपमें उदित हुआ। श्रीपरीक्षितने विपत्तोंसे निवृत्त होकर सारे वेदोंका तात्पर्य श्रीशुकदेवके उपदेशों द्वारा ही प्राप्त किया था।

मेरठ जिलेकी सीमापर हस्तिनापुर है। आधुनिक मोजफ्फरनगर जिलेकी सीमापर भोपा थानेके अन्दर भुखाड़हेड़ी स्थानके निकटवर्ती शुकरतल ग्राममें गङ्गातटपर ही श्रीपरीक्षित महाराजने अनशनव्रत धारणकर श्रीशुकदेवजीसे समग्र वेद-तात्पर्य एक सप्ताहके अन्दर प्राप्त किया था। दधिके मथनेसे जिस प्रकार सारांश मक्खन निकलता है, उसी प्रकार वेदके कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्डके असार अंशोंकी तुच्छता दिखलाते हुए प्रेम-भक्ति साररूपमें प्रतिपादित हुई थी। परीक्षितने और सब कथा छोड़कर वही सार ग्रहण किया था इसीलिये सकल भागवतगण सारग्राही हैं। विद्ध भागवतगणने असत् संसर्गसे फल-भोगवाद और फलत्यागवादके विचारमें लगकर भारवाहीरूपमें अपना अधःपतन ला उपस्थित किया है। असारमिश्रित किञ्चित सारकी अपेक्षा असार-रहित विशुद्ध सार या निचोड़ही ग्रहण करना चाहिये। वही आत्मविद् लोगोंका श्रेय और प्रेय है। असारग्राहीगण फलभोगवादके कारण सरलभावसे भारवाही एवं फलत्यागवादके कारण बाहरसे 'सारग्रहीत' होनेका अनुभव करतेहुए भी सूक्ष्मभावसे गुरुभारवाही हैं। दोनोंही सार-ग्रहण करनेसे पराङ्मुख हैं।

भगवान् तथा भक्तमें भेदबुद्धि रखनेके कारण जो विष्णु-वैष्णव-तत्त्व नहीं जानते, वे इस प्रकार अपने अमङ्गलका ही आवाहन करते हैं। लीलामेंप्रविष्ट नहीं होनेतक भगवानकी पूर्ण कथा सुन्दररूपसे कही नहीं जा सकती। भगवत्कथामय भागवत शुकदेव ही जानते हैं, और कोई नहीं जानता। एक कहावत है कि महादेवने एक समय कहा था —मैं भागवत जानता हूं और शुकदेव भागवत जानते हैं। लेखक श्रीव्यासदेवने गुरुपदाश्रय करके विशुद्ध गुरुसेवाके अभावके कारण कुछ दिनोंतक धर्मार्थ-काम मोक्षके सेवकोंके उपकारार्थ शास्त्र ग्रन्थादि रचनाकी थी; किन्तु सच्छास्त्र-समूहका एकमात्र तात्पर्य श्रीमद्भागवतकी रचना करनेके समय उन्होंने धर्मार्थ-काम-मोक्षाधिकारी बुद्धिका आश्रय करके कृष्णलीलाका वर्णन किया था, तौभी चूंकि उन्होंने साधारण लोगोंकी अयोग्यताका ध्यान रखकर श्रीवार्षभानवीदेवीकी कथाकी प्रधानता नहीं और इसीलिये अपने वर्णनमें जो सार्वहितचित्तता प्रकाश किया है उससे उन्होंने ऐसा जतलाया है मानो कुछ वे जानते और कुछ नहीं जानते थे

किन्तु नृसिंहोपासक त्रिदण्डीस्वामी श्रीधरने भगवत्-कृपासे सेवोन्मुख होकर भागवतका तात्पर्य सुन्दररूपसे जाना था इसीमें गोपीजनवल्लभकी सेवाकी कथा उन्होंने खूब समझी थी। भक्तिके एक-मात्र रक्षक श्रीधर और उनके सहोदर भाई लक्ष्मीधर ने नाम भजनके प्रभावसे भगवानके रूप, गुण, परिकर-वैशिष्ट्य तथा लीलामें जो अधिकार दिखलाया है, उसे श्रीधर विरोधी पर श्रीधरटीकापाठकारी भोगी तथा मोक्षकामी सम्प्रदाय अभक्त होनेके कारण नहीं पा सका है और उनकी उस कृपासे सदा वञ्चित रहगया है। कनिष्ठाधिकारियोंकी चेष्टामें भगवानके कुछ परिचयकी बात रहनेपर भी भक्तोंका निरादर करनेके कारण वे भगवत्सेवाके कनिष्ठाधिकारसे भी वञ्चित हो जाते हैं। इसलिये परिकर-वैशिष्ट्य तथा विषय-आश्रय-विचारसे जिनलोगोंके भीतर भेदज्ञान-जनित अमङ्गल प्रवेश कर गया है, वे प्रेमभक्तिको पूर्ण प्रयोजनीय नहीं समझते। अतएव वे मानव-जीवन प्राप्त करके भी केवल आत्मघातीही हैं।

जहांपर अद्वयज्ञान ब्रह्म ज्ञानियोंके जाननेकी वस्तु है वहांपर ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता इन्हीं तीनों अवस्थाओंका निर्वैशिष्ट्य प्राप्त करना ही चरम आराध्य व्यापार है। योगी गर्भोदकशायी विष्णुमें संयुक्त होनेका प्रयास करते हुए कैवल्य प्राप्त करनेके लिये यत्न करते हैं। भगवद्भक्त वैसा नहीं करते। श्रीमद्भागवत ग्रन्थमें भगवानकी लीला, परिकर वैशिष्ट्य, अखिल सद्गुण भगवद् रूप एवं भगवानके नामादिका उल्लेख है। नित्यमुक्त भगवद्भक्त एवं साधनसिद्ध भक्तगण तथा भक्तिपरायण सेवकगण भगवानकी नित्यकाल सेवाको छोड़कर और कुछ प्रयोजनीय नहीं समझते। सुतरां नित्य सेवकके लिये सेवा विचार छोड़कर और कोई बात भागवतमें नहीं है। जो भागवतमें भगवानकी नित्यसेवाको छोड़कर और कुछ खोजते हैं उन्हें नितान्त मूर्ख समझना चाहिये। जो भक्त नहीं हैं वे सेवा धर्मसे हटकर अन्याभिलाष, कर्म-फल-लाभ, निर्भेदब्रह्मानुसन्धान, प्रभृति भागवतमें ढूंढने और उसके प्रचार करनेकी चेष्टाकरते हैं किन्तु असल उद्देश्यसे भ्रष्ट होकर भागवतके असली उद्देश्यको ग्रहण करनेसे वञ्चित हो जाते हैं। श्रीमन्महाप्रभुने भागवतकी अभक्तियुक्त व्याख्या सुनकर कहा था, कि जिस भागवतसे पाठकोंके हृदयमें अभक्ति पैदा होती है वञ्चनाके भावसे परिपूर्ण उस भागवतका कोई प्रयोजन नहीं। अतः उस भागवत ग्रन्थको भगवद्विग्रह नहीं समझना चाहिये और उसे पार्थिव पदार्थ और नश्वर समझकर फाड़कर फेंक देना चाहिये। श्रीमद्भागवतको भोग्य वस्तु समझकर जो उसका दर्शन करते हैं उनके उस दर्शनसे उनकी उत्तरोत्तर कामवृद्धि ही होती है। इसलिये भोगबुद्धिसे विषयी लोगोंको भागवत पाठसे हटानाही भगवानका उद्देश्य है।

सभी शास्त्रोंसे प्रमाणित होता है कि भोग और त्याग बुद्धि बनी रहने तक श्रीमद्भागवतका विचार कभी किसीको समझमें नहीं आसकता। इसीलिये जड़विद्या जड़तपस्या, जड़वस्तुमें प्रतिष्ठाकी आशा जबतक रहेगी तबतक चिन्तासे परेवाले राज्यमें अवस्थित भगवत्कथाके समझनेकी किसीको भी सम्भावना नहीं होती। जोलोग भागवतको भोग्य वस्तुओंमेंसे एक समझकर उसमें अधिकार प्राप्त कर लिया है ऐसा समझते हैं वे भागवतके किसी अंशको नहीं समझ सकते। श्रीमद्भागवत जिस वस्तुको प्रतिपादित करनेके लिये लिखा गया है, वह प्रमेय वस्तु कभी जड़ इन्द्रियोंके अधिकारकी वस्तु नहीं हो सकती। जो श्रीमद्भागवतके कीर्त्तनको साक्षात्

भगवद्विग्रह समझते हैं और उसे केवल प्राकृत ग्रन्थ मात्र नहीं समझते और श्रीमद्भागवतके विचारके द्वारा अपने जड़ाश्रित बुद्धि-दोषको निर्यामित करते हैं, वे श्रीमद्भागवतका एकमात्र प्रयोजन सर्वसार भगवद्भजनक ही है यह समझ सकते हैं। अतिशय प्रतिभा सम्पन्न, सर्वगुणान्वित, ज्ञानवान पण्डित होकर भी श्रीमद्भागवतके अर्थ ग्रहण करनेमें भूल कर सकते हैं; ऐसे पण्डितोंके गौरवको बढ़ानेके लिये जो प्रयत्नशील हैं, न्याय तथा अन्यायके विचारकर्ता वा पुरस्कार तिरस्कार-दाता यम उसको दण्ड देते हैं। भक्तिरहित पण्डित "हमने भागवतमें अधिकार प्राप्त कर लिया है" ऐसा मनमें समझते हैं पर भक्तिके मूल आश्रयवस्तुकी निन्दा करनेके कारण वे कभी भागवतके अधिकारी नहीं हो सकते।

श्रीमद्भागवत ग्रन्थ भगवत्कथामय है अतः दूसरे दूसरे ग्रन्थोंसे पूर्ण भिन्न है। ऋक् मन्त्रमें हमलोग 'भग' नामक प्रकाशमय देवताकी बात देखते हैं। भगवत् शब्दसे हमारा भी उसी भगदेवतासे मतलब है कि नहीं यह सोचनेकी बात है। अर्यमा, विवस्वान, सविता प्रमुख देवगण-सदृश भगदेव देवश्रेणीमें गणने योग्य हैं एवं ऐसे भगवानकी कथाने ही श्रीमद्भागवत ग्रन्थमें स्थान पाये हैं, ऐसा मनमें विचार हो सकता है। किन्तु वर्तमान श्रीमद्भागवत-ग्रन्थमें उस प्रकारके आंशिक प्रतीतिपूर्ण भजनीय वस्तुका ईश्वरत्व सम्पादित नहीं हुआ है।

पाठकोंके मनमें ऐसी भावना भी उठ सकती है कि भगवद्वस्तु जानने योग्य प्राकृत वस्तुओंमेंसे एक है। किन्तु श्रीमद्भागवतके प्रतिपाद्य स्वयंरूप भगवद्वस्तु अप्राकृत, अतीन्द्रिय तथा अधोक्षज हैं पाठकके **मनमें** पुनः ऐसा भी विचार आ सकता है कि 'अपरा' विद्याकी श्रेणीमें उल्लिखित ऋक्, साम, यजुः अथर्व एवं शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष प्रभृति वेदाङ्ग भी वेदतुल्य वेदानुगशास्त्र हैं। वस्तुतः ऐसी बात नहीं। ये क्षरज्ञानमय अर्थात् परिवर्तनशील हैं; किन्तु भगवद्वस्तु कालक्षेपसे नाश होने वाली नहीं हैं। क्षरज्ञानके अन्तर्गत नहीं हैं। अक्षर और अच्युत वस्तुकी आलोचना वा व्याख्या या वर्णन जिस शास्त्रमें होती है वह शास्त्र पराविद्याके अन्तर्गत है। यह श्रीमद्भागवत ग्रन्थ उन पराविद्या शास्त्रसमूहोंमें शिरोमणि हैं। आधुनिक तार्किक मनमें सोच सकते हैं कि मानव सभ्यताका आदि ग्रन्थ भारतीय ऋग्वेदसंहिता ही है। उस सर्वप्राचीन आदि ग्रन्थके पीछे जो सब ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं वे अपेक्षाकृत नये तथा आधुनिक ग्रन्थ हैं। उनलोगोंमेंसे कोई ऐसा भी कह सकते हैं कि यह पौराणिक ग्रन्थोंकी कोटिमें गिनाजाने वाला एक शास्त्र है और यह भी कि जब इसमें बौद्धादि अन्य शास्त्रोंकी समालोचना की गयी है तब उनके पीछे यह ग्रन्थ लिखा गया होगा। कुछ लोग ऐसा भी समझ सकते हैं कि ताम्रपर्णी, कृतमाला वा पयस्विनी नदी तीरवासी किसी लेखकने अपने देशकी महिमा गान करनेकी इच्छासे श्रीमद्भागवतकी रचना की है। फिर दूसरे दूसरे पुराणोंकी प्राचीनता तथा उनकी लेखन प्रणालीसे इसकी प्रणालीका मिलान करके यहभी कहा जा सकता है कि दूसरे पुराणोंकी अपेक्षा यह पीछेका रचा हुआ है। जो हो अश्रौत-पन्थी ऐसेही असंख्य विवाद पूर्ण युक्तियोंके बलपर श्रीमद्भागवतको अन्य पुराणोंकी अपेक्षा आधुनिक वा मध्ययुगीय समझ सकते हैं किन्तु वास्तवमें ऐसी धारणाओंके विरुद्ध नीचे लिखी हुई कई बातोंपर ध्यान देनेपर दूसरे निर्णयपर पहुंचना होगा।

श्रीमद्भागवतमें जिस विषयका वर्णन किया गया

है, उसकी प्रतिपादनप्रणालीसे हमें ज्ञान होता है कि मानव सभ्यताकालके भीतर जिन ग्रन्थोंका निर्माण हुआ है उनमें सर्व प्राचीन ग्रन्थके प्रतिपाद्य देवगण इन्द्रिय-ग्राह्य द्वितियाभिनिवेशके जाज्वल्यमान दृष्टान्त मात्र हैं। ऋगादि-संहिता प्रतिपाद्य-विषयमें अलौकिकताका अधिक अवकाश नहीं है। उसके बादके सूत्र इत्यादिने भी जो आधुनिक संस्कृत भाषामें लिखे गये हैं उन्हींकी बातोंके सारका वर्णन मध्ययुगीय संस्कृत भाषामें विस्तारपूर्वक किया है। दर्शन ग्रंथोंके सूत्र, श्रौत, गृह्यसूत्र और बौद्धादि सम्प्रदायके सूत्र-ग्रंथ प्रत्यक्ष विचारसे भगवदितर द्वितियाभिनिवेशका प्रकृष्ट परिचय देते हैं, परन्तु अपरोक्ष, अधोक्षज वा अप्राकृत विचार तथा अलौकिक ऐतिह्यका कोई परिचय नहीं देते। श्रीमद्भागवतके आलोच्य विषयमें द्वितीयाभिनिवेशसे पैदा होनेवाली युक्ति, तर्क तथा विचारादिको विनाश करनेके लिये जो इतिहासादिका वर्णन किया गया है उनमें भी मानव जातिकी इन्द्रिय-लौल्य-विरोधी और प्रत्यक्ष ज्ञानादिअतीत कथा ही अत्यन्त विस्तार पूर्वक कही गयी है। यद्यपि संस्कृत भाषामें लिखित ग्रन्थोंकी भाषा और संहिता कालके ग्रन्थोंकी भाषामें विषमता देख पड़ती है तौभी विषय विचारसे श्रीमद्भागवतमें वर्णन किये गये भाव विचारयुगसे पहलेके और अलौकिक सत्यके सहज आवाहन ही प्रमाणित होते है। उस समयके ऐतिह्य श्रीमद्भागवतप्रमुख पुराणादिमें सन्निविष्ट हैं, उसीका सामान्य निर्देश वैदिक संहितादि ग्रन्थमें संक्षिप्त-रूपसे देखनेमें आता है। जिन ग्रंथोंके आधारपर पुराण लिखे गये वे जिस भाषामें लिखे गये हों पर वे सब वैदिक ग्रंथ कालवश लुप्त हो गये। बाद वाले कालमें चूंकि वे सब मूल ग्रन्थ लुप्त और अलभ्य हो गये इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि पुराणोंमें वर्णित विषय आधुनिक हैं। हम कहनेके लिये बाध्य होते हैं कि पुराणमें लिखी हुई विष्णु सम्बन्धीय प्राचीन आख्यायिकायें जो कथा रूपमें अवतीर्ण हुई हैं उपान्यासके सदृश्य आधुनिक वा काल्पनिक नहीं हैं। श्रीमन्महाभारत और श्रीमद्भागवतादि पुराण ग्रंथोंके प्रतिपाद्य विषय ऋक्-संहिताप्रकाशकालके बहुत पहलेकी बातें हैं, इसलिये संहिताके पीछेके लिखे हुए पुराणादि वैदिक कालसे पहलेके विषयकी आलोचनासे परिपूर्ण हैं। सूत्र ग्रंथोंके बीच हम शाण्डिल्य और भरद्वाजादि ऋषि-प्रणीत कई सूत्र ग्रंथोंका संधान पाते हैं। भिक्षुसूत्र कर्मन्दी, पाराशरीयसूत्र, व्याससूत्रसे बहुत पहले रचे गये थे। भक्ति सूत्रोंने सात्वत-पञ्चरात्र-रचनाकालमें विस्तृति• लाभ की थी। गृह्य-सूत्रोंने कर्मकाण्डी स्मार्तलोगोंके हाथमें जिस प्रकार २० धर्मशास्त्रोंके रूपमें स्थान पाया है, उसी प्रकार सूत्र ग्रंथादिनेभी पंचरात्रादि सात्वतशास्त्रोंमें संस्कृत भाषामें स्थान लाभ किया है। सात्वतसूत्र राजस तथा तामस सूत्रकी प्रणालीसे भिन्न प्रणालीमें रचे गये हैं। भागवत, वैष्णव, नैष्कर्म, वैखानस, पाञ्चरात्रिक प्रभृति विचारधारा प्रागवैदिक युगमें प्रबल थी। उसके उपरान्त जड़विचारसे परिपूर्ण और तर्कदर्शनोंमें भगवद्भक्तिका विचार मन्द हो जानेपरभी और यौग-गिक रचना कालमें पूर्वके रहते हुए भी पुनः प्रकाशित हुए हैं। भागवत पाठके पहले बुद्धिमान निष्पक्ष पाठक वेदरूपी कल्पतरुसे गिरेहुए रसीले भागवतरूपी फलकी सर्वश्रेष्ठता जानकर तर्कयुक्त विचारपर निर्भर करनेसे अन्धकार रहित सहज सत्यकोप्राप्त करनेमें असमर्थ होंगे। आनुगत्यरूप भक्तिधर्मही श्रौत विचारकी सर्वश्रेष्ठताको बतलाता है। उसके अभावमें कर्म और ज्ञान मार्ग दोनों प्रकृत सत्यप्राप्तिके प्रतिबन्धक

हो जायगें।

अन्तमें हमलोगोंका कहना यह है कि इस श्रीमद्भागवत ग्रंथको ही कलियुगपावनावतारी श्री मन्महाप्रभुने अमल प्रमाण-शिरोमणि कहकर स्वीकार किया है। अतः प्रत्येक कोविदोके लिये चिद्धर्मानुगत्य अनिवार्य है। श्रीमद्भागवत-विरोधी दलको हम उससे अधिक बुद्धिमान कहकर आदर नहीं कर सकते।

श्री श्रील आचार्यदेवके उपदेश

श्रीरूपविलास प्रभु—शिक्षागुरु क्या जीवतत्व हैं?

श्रील आचार्यदेव—नहीं। गुरु जीवतत्व नहीं हैं। जब गुरुज्ञान हो जाता है, तब जीवतत्व-दर्शन वा तटस्थ-दर्शन नहीं रहता; मुक्त जीवरूपसे भी दर्शन नहीं होता है। गुरुमें कृष्ण प्रिय—भागवानकी स्वरूप-शक्ति वा पराशक्तिका दर्शन होता है विभिन्नांश दर्शन नहीं। तटस्थजीव मुक्त होनेपर भी विभिन्नांश रहेंगे। तटस्थजीव भावोदयके पहलेतक माया कवलित हैं। गुरु कहकर उनका मुक्तजीवरूपसे—विभिन्नांश दर्शन करना नहीं होगा। गुरु विष्णु तत्व हैं। वे भगवानसे अभिन्न हैं—सेवक भगवान हैं। श्रीगुरुदेव Enjoyer Absolute नहीं हैं, वे Enjoyed Absolute हैं। कृष्ण और गुरु—भोक्तृ भगवान और भोग्य भगवान हैं—सम्भोक्ता और सम्भोग्य हैं। सम्भोक्ता भगवान—कृष्ण, और सम्भोग्य—भगवान—लक्ष्मी वा गुरुदेव हैं। श्रीगुरुदेव भगवानके प्रियतम सेवक हैं। भगवानके साथ उनका अविच्छेद्य (नित्य) सम्बन्ध है। किन्तु वे सम्भोक्ता नहीं हैं। शिक्षागुरुगण सभी भगवतश्रेष्ठ हैं। शुद्ध—भगवद्भक्त शिव और गुरुको भगवानके साथ अभिन्न समझते हैं। 'भगवत-प्रिय तमत्वेनैव दृश्यते' सदाशिव भगवानके साथ अभिन्न हैं। रुद्र जो गुणके द्वारा संसारका ध्वंश करते हैं, और जो मायासङ्गी हैं वे वह शिव नहीं हैं। जगतकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा हमलोगोंके गुरु नहीं हैं। मेरे गुरुके साथ जगतसृष्टि वा मायाशक्तिके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। वे भगवानका सबसे अधिक सुख विधान करते हैं। जो भगवानको सबसे अधिक सुख देते हैं, वे ही मेरे गुरुदेव हैं।

मुक्त जीव वैष्णव हैं। बद्ध, तटस्थ और मुक्त एक नहीं। गुरुदर्शन जीवरूपका दर्शन नहीं है। 'आचार्य मां बिजानीयान।' यहां जीवरूपसे दर्शन करनेसे अपराध होगा। नित्यसिद्ध पार्षद जीव-जातीय नहीं हैं। उनलोगोंको जीव नहीं कहा जा सकता। तटस्थ अवस्थामें ब्रह्म—परमात्म ज्ञान होता है, और मुक्त अवस्थामें भगवदनुभूति होती है।

व्रजेश्वरी बाबू—गुरुका ज्ञान कौन करेगा? वह कब होगा?

आचार्यदेव—शिष्य आचार्यको गुरु समझेगा।

किंवा विप्र किंवा न्यासी शूद्र केने नय।
येई कृष्णतत्ववेत्ता सेइ गुरु हय॥

वर्णाश्रम बद्ध जीवके लिये है; भगवान् वा परमहंसके लिये वर्णाश्रम नहीं है। श्रीगुरुदेव विप्रकुलमें उत्पन्न हुए हों, वा जिस किसी वर्ण वा आश्रममें रहें वा शूद्र वर्णमें आविर्भूत हों, उससे कुछ आता जाता नहीं। जो कृष्णतत्ववेत्ता हैं वे ही गुरु हैं।

श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुके "सिद्धान्तरत्नमें" और ठाकुर भक्तिविनोदके "जैवधर्ममें" ये सब

बातें हैं; वह कृष्णतत्ववेत्ता (कृष्णतत्वको जाननेवाला) कृष्णको छोड़कर दूसरा नहीं होता। कृष्णको कृष्ण ही जानते हैं। वहां जीव वा तटस्थ वा विभिन्नांश दर्शन नहीं हो सकता। मुक्त जीव दो प्रकारके हैं—नित्यमुक्त और बद्धमुक्त।

ब्रजेश्वरी बाबू—तब तो मुक्त जीवोंको गुरु नहीं कहा जायगा ?

आचार्यदेव—जीव कहनेसे 'गुरु' नहीं कहा जायगा। और 'गुरु' कहनेसे जीव नहीं कहा जायगा। पार्षद और जीव एक नहीं हैं। पार्षद वा परिकर ही 'गुरु' हैं। उन्हें जीव कहनेसे काम नहीं चलेगा।

श्रीपाद भक्तिबान्धव प्रभु—गुरुको वैष्णव कहनेसे कौनसा दोष होता है ?

आचार्यदेव—वैष्णव दो प्रकारके हैं—विभिन्नांश जीव और आश्रय विग्रहगण। मुक्त जीव ही वैष्णव हैं। मधुररसमें—वार्षभानवी, वात्सल्यरसमें—नन्द यशोदा—ये स्वांश हैं—स्वरूपशक्ति हैं। गुरुको केवल वैष्णव न कहकर 'भक्तश्रेष्ठ' वा 'वैष्णवराज' कहा जाता है। महाभागवत वा वैष्णव एक तत्व हैं। महाभागवत-श्रेष्ठ—गुरुदेव हैं। 'महाभागवतवर श्रीगौरकिशोरवर, मुक्तजीव—वैष्णव हैं। स्वरूपशक्ति वा परिकरगण ठीक मुक्त जीव नहीं हैं। वे चिच्छक्तिके विलास हैं। विभिन्नांश जीव कारणार्णवशायीसे प्रकट हैं। वे तटस्थ हैं। सङ्कर्षणसे प्रकटित जीव नित्यसिद्ध हैं। सन्धिनी-शक्तिमद्-विग्रह बलदेव—सङ्कर्षण-प्रकटित नित्य-सिद्ध पार्षदगण कारणार्णवशायीसे प्रकटित जीवके ठीक एक समान नहीं हैं, उनसे श्रेष्ठ हैं। बलदेव ही नन्दादिरूपसे कृष्णकी सेवा कर रहे हैं। सन्धिनी-शक्ति-प्रकटित धाम और नित्यानन्द एक समान हैं। वे बहुरूपसे गौरसेवा कर रहे हैं।

श्रीभक्तिबान्धव—विलास कहनेसे क्या समझा जाता है ?

आचार्यदेव—विलासमें जहां जीव हैं, वहां जड़-विलास है। वह बन्धन है। चिद्विलास—परममोक्ष मोक्षकी पराकाष्ठा है। कृष्णका जितना विलास है सब पूर्णज्ञान-घनानन्दरूप है। वह अविद्याद्वारा अभिभूत (मुग्ध) कोई पदार्थ नहीं है। वहां बन्धन वा क्लेश नहीं है, वहां केवल निरवच्छिन्न (अप्रतिहत) आनन्द है। वहां सब एक ही तात्पर्यके बोधक है—All Harmony एक सुरपर है। वहां विरोध नहीं है—Parallel नहीं है। वह प्रेमभूमि है, वहां विलास हो रहा है, संघका अर्थ मिशन वा यूथ है। वही संघ यहां अवतीर्ण होते हैं।

अभिधेय भक्ति विशुद्ध वस्तु है। श्रद्धासे भक्ति आरम्भ होती है।

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान जीव।
गुरु कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति लतावीज ॥

यहां बीज है—वहां बीज नहीं है, सभी प्रस्फुटित हैं। यहां पहले बीज आरम्भ होता है। भक्ति लताका पहला बीज श्रद्धा है, उसके बाद मुकुलित अवस्था होती है। अप्रस्फुटित विकाश वा स्वल्पतम प्रकाश ही बीज है। वृक्षका प्रथम आरम्भ है—Seed (बीज), embroic stage (अङ्कुरित अवस्था), slightest manifestation (कुछ विकसितावस्था)।

विलास और प्रकाश एक ही वस्तु है। एक ही वस्तु जहां बहुरूपसे प्रकाशित होती है, वह प्रकाश है। जैसे द्वारकेश कृष्णने बहुरूप धारणकर षोड़श सहस्र महिषियोंका पाणिग्रहण किया था—वहां प्रकाश था और जहां मूर्तिके आकारमें भेद है, वह विलास

है। बलदेव, नारायण—कृष्णके विलास हैं। रासमें कृष्णका प्रकाश है। शक्तिका विलास-विचित्रता वा वैशिष्ट्य Excellent diversity हैं। प्रभुपाद ने इनको 'Relative worlds' कहा है।

श्रीभक्ति बान्धव—गुरुदेवको बलदेवाभिन्न विग्रह कहनेसे क्या विषय विग्रहत्व नहीं रहता ?

आचार्यदेव—श्री गुरुदेव रोहिणी-नन्दन वा रौहिण्यराम नहीं हैं। बलदेवका जो राम है उसमें कृष्णने ही बलदेवके अङ्गमें राम किया है। भोग किया है। बलदेवमें कृष्णसुखपरताके सिवाय और कुछ नहीं है। उन्होंने चार रससे कृष्ण सेवाकी है। रासमें उन्होंने अपने अङ्गसे कृष्णको भोग कराया है।

चतुर्व्यूहमें जो बलदेव हैं उनमें ईश्वरत्व है। Quadrant Diversity जहां तहां विषय विग्रहकी प्रबलता है। ह्लादिनी (श्री राधारानी)का आनुगत्य करनेसे अप्राकृत प्रकृति होना ही होगा। शक्तिविलासकी कथा ही सेवाकी कथा—आश्रयकी कथा है। श्री गुरुदेव शक्तिमान नहीं हैं, वे कृष्णकी शक्ति हैं—स्वरूप शक्ति हैं—आश्रयविग्रह हैं।

सन्धिनीके प्रकाश-धाम, चित्तवृत्ति वा भाव और रूप—Entity हैं। सम्विदसे कृष्णकी अनुभूति होती है, और ह्लादिनी शक्तिका कार्य—रसका उदय कराना वा आनन्द देना है।

श्रीभक्ति बान्धव—साधुसङ्ग किस प्रकारसे प्राप्त होता है ?

आचार्यदेव—'कोन भाग्ये, कोन जीवेर श्रद्धा यदि हय। तबे सेइ जीव साधुसङ्ग करय।'

श्रद्धा और साधुसङ्ग दोनों एक साथ होना है। जब संसार क्षयोन्मुख होता है, Prison gate के खुलनेका समय आता है तब High Court Judgeने release order दिया है ऐसा समझना होगा, क्योंकि दोनों एक साथ होता है।

जहां कृष्णको अपना ज्ञान है, वहां पूर्ण शरणागति समझनी होगी। जहां शरणागति, आकिञ्चनत्व वा दीनताकी उपलब्धि है वहां गुरु और वैष्णव ठाकुरका सङ्ग है। वहां मायाधर्म, पुरुषाभिमान वा प्रभुत्वस्पृहा कम होती जाती है—सुखवाञ्छाका ह्रास होता है, वहां बन्धन भी कटता जाता है।

अज्ञातभक्त्युन्मुखी सुकृति ही भाग्य है। संसारके क्षयोन्मुख नहीं होनेसे श्रद्धा नहीं होती। बड़े सौभाग्यवान् जीव ही गुरु कृष्ण कृपासे श्रद्धा प्राप्त करते हैं। जिसको श्रद्धा नहीं होती उसके भाग्यका उदय नहीं हुआ।

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवे-
ज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः।
सत् सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ
परावरेशे त्वयि जायते रतिः॥

हे अच्युत, संसार भ्रमण करते करते जब संसारसे उत्तीर्ण होनेका समय उपस्थित होता है, तब जीवका यदि सत्सङ्ग हो तभी सद्गति और परावरेश्वर स्वरूप आपमें रति होती है।

साधुसङ्ग विशेष रूपसे आवश्यक है। साधु सङ्ग करते करते बन्धन खुल जायगा। सब असुविधा मिट जायगी। कृष्ण ग्रहण (accept) करेंगे। A pencil of ray from the sun of mercy आनेसे प्रकृतिके ऊपर प्रभुत्व करनेकी स्पृहा कम हो जायगी। वर्ण वा आश्रमके प्रति उस समय आसक्ति नहीं रहेगी। जागतिक अभिमान वा भोग त्यागकी प्रवृत्ति कम हो जायगी। इस जगत्के साथ केवल देहका सम्बन्ध है। इस जगत्के साथ सम्बन्ध वा देहात्म बुद्धि उस समय शिथिल हो पड़ेगी।

सङ्गका इतना प्रभाव है। कृपाकी इतनी शक्ति है!

साधुसङ्ग करते करते आत्माभिमान वा सेवकाभिमान जागता है इसलिये वैष्णवके प्रति उसका अभिनिवेश होता है। आत्मानुभूतिमें अप्राकृत वस्तुके प्रति—साधु गुरुके प्रति जो अभिनिवेश (आसक्ति) होता है वही राग है। 'रन्ज्' धातुसे 'राग' शब्द निष्पन्न हुआ है। यही राग वा अभिनिवेश (आसक्ति) अनात्म वस्तुमें वा प्राकृत वस्तुमें होनेसे रजोगुण युक्त वा बन्धनका कारण होता है, और आत्मवस्तुमें होनेसे—अच्युत वस्तुमें होनेसे—गुरु वैष्णवमें होनेसे सम्बन्ध वा बन्धुत्व होता है। वहां बन्धन नहीं है। यही आवश्यक है। प्रीति नहीं होनेसे सङ्ग नहीं होता।

कृष्णके अनुकरण करनेका नाम प्रभुत्व इच्छा है। वही बन्धन है। जहां तटस्थ जीव अनुमानके द्वारा अपनेको अनित्य देह और मन समझ लेता है, और एकमात्र भोक्ता भगवानका अनुकरण करते हुए विवर्त्त बुद्धिद्वारा कृष्णके प्रति मत्सरी हो जाता है वहीं उसका सर्वनाश है। Enjoyment is the eternal function of Krishna. Krishna—minus enjoyment—निर्विशेष ब्रह्म है, और जहां कृष्णका अनुकरण है, वहां जड़विलास है। बद्ध जीव Perverted shadow भोग करता है। जीवके स्वरूपमें पुरुषाभिमान (भोक्ताभिमान) नहीं है। पुरुषाभिमान बुरा है, स्वरूपमें ग्रहण वा त्यागकी कोई बात नहीं है।

श्रीभक्तिबान्धव—साधुसङ्ग क्या है?

श्रीआचार्यदेव—साधु कृष्णकी चिच्छक्ति हैं—प्रकृतिके अतीत वस्तु हैं। कृष्णके सेवोपकरणका नाम साधु है। साधु दर्शन होनेसे बाहरका दर्शन नहीं रहता। जहां देहके प्रति दृष्टि है, वहां आत्मदर्शन नहीं है। आत्म दर्शन होनेसे देहकी ओर दृष्टि नहीं रहती। शरीर रक्षाके लिये पोशाक की आवश्यकता है। अज्ञानक्रमसे अप्राकृत वस्तुके सुखके लिये यदि कुछ किया जाय एवं वह फल यदि अप्राकृत वस्तुको मिले, तो सुकृति होती है। जहां सम्बन्ध नहीं हुआ वहां सुकृति है। साधुसङ्गके पहले यह अज्ञातक्रमसे होता है और जहां सम्बन्ध-ज्ञान है वहां भक्ति होती है। वही प्रकृत सेवा है।

घरमें आग लग गयी है। कोई बन्धु घरसे बाहर आनेके लिये कह रहे हैं। द्वार खोलने वा बन्द करनेकी शक्ति वा अधिकार गृहवासीका है। यदि उस समय स्वतन्त्रताका सद्व्यवहार हो अर्थात् श्रौतवाणीमें—आत्मीयके पुकारसे यदि उत्तर दे तभी बचेगा और यदि सोया रहा तो वञ्चित हुआ अथवा मर गया। सूर्य उठा है, समय हुआ है। बन्धु दरवाजा पर धक्का दे रहा है। किन्तु मैं यदि दरवाजा न खोलूं, तो प्रकाश किस प्रकार पाऊँगा? साधुसङ्ग करनेसे बन्धुके पुकारसे उत्तर देनेसे अवश्य मङ्गल होगा। ग्रहण करना ही स्वतन्त्रताका सद्व्यवहार है। इसलिये बुद्धिमान उसका ही आदर करते हैं; मोहको कोई आदर नहीं करता।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्त्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

सेवामें जगे हुए विद्वत्समाजकी प्रशंसा करूंगा; नहीं तो पुरुषाभिमानसे बन्धन होगा। जहां चेतनके पुकारसे उत्तर नहीं, वहां ही पुरुषाभिमान है—वहां ही बन्धन है।

संसारे आसिया, प्रकृति भजिया,
पुरुषाभिमाने मरि।

जीव जब प्रकृतिका भजन करता है, उस समय जड़ प्रकृतिके अधीन होता है। प्रपन्न वा शरणागत

होकर मुक्त जीव जिस भावसे भजन करते हैं—जिस भावसे मेरे साथ विलास करते हैं, उसी भावसे वा उसी रससे मैं (भगवान्) उनको सुख देता हूँ। कृष्ण कहते हैं- "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।" तटस्थको पुरुषाभिमान है—बन्धन है। पुरुषोत्तम—तुरीय हैं। पुरुषावतार तीन हैं—कारणार्णवशायी, गर्भोदकशायी और क्षीरोदकशायी। प्रकृति वा जीवके साथ इन लोगोंका कार्य है। जीवके कारण वा आश्रय हुए कारणार्णवशायी विष्णु। समष्टि-अन्तर्यामी वा आधार हुए गर्भोदकशायी विष्णु, और प्रत्येक जीवके अन्तर्यामी हुए क्षीरोदकशायी विष्णु। वे पुरुष हैं, क्लीव (नपुंसक) नहीं हैं। पुरुष—विलासी हैं। वे चित्‌शक्तिके साथ विलास करते हैं। जीवको मुक्तकर बलदेवकी कृपा तुरीय पहुंचाती है। 'मां'—मुझको—मेरे विग्रहको। स्थायी-भाव रति उदय होनेके पहले विग्रह दर्शन नहीं होता।

देवता— अचिदावृत्त तटस्थ हैं। सत्वगुणप्रधान तटस्थ जीव देवता हैं। उनके भजनमें Bartering system है। देवताओंमें jealousy है। एक देवताको भजन करनेमे दूसरे रंज होते हैं। किन्तु Absolute की सेवा करनेमें Bartering system नहीं है।

> यथा तरोर्मूलनिषेचनेन
> तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
> प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां
> तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥

जिस प्रकार वृक्षके मूलमें जल पटानेसे, उसके स्कन्ध, शाखा, उपशाखा प्रभृति सभी सञ्जीवित होते हैं, और प्राणमें आहार प्रदान करनेसे (अर्थात् भोजन करनेसे) जिस प्रकार सभी इन्द्रियोंकी तृप्ति होती है, उसी प्रकार एकमात्र श्रीकृष्णकी पूजा द्वारा सभी देव-पित्रादिकी पूजा होती है।

प्रथम वैभव

सम्बन्धतत्त्व और श्रीभक्तिविनोद

१ प्रश्नः—सम्बन्धतत्त्व तथा सम्बन्धज्ञान किनको कहते हैं?

उत्तर—सम्बन्धतत्त्वमें तीन वस्तुओंकी पृथक पृथक शिक्षायें हैं—जड़जगत वा मायिक तत्त्व, जीव वा अधीनतत्त्व एवं भगवान वा प्रभुतत्व की। भगवान एक और अद्वितीय, सर्वशक्ति सम्पन्न, सबोंको अपनी ओर खींचने वाले, ऐश्वर्य और माधुर्यके एकमात्र निलय तथा माया और जीव-शक्तिके एकमात्र आश्रय हैं। वे माया और जीवके एकमात्र आश्रय होकर भी सर्वदा सुन्दररूपमें एक स्वतन्त्र स्वरूप हैं। उनके अङ्गोंकी कान्ति अति-दूरस्थ हो निर्विशेष ब्रह्मके रूपमें लक्षित होती है। उनकी ऐशी शक्ति संसार और जीवोंकी सृष्टि कर एक अंशसे (परमात्म-रूपसे) जगतमें प्रविष्ट ईश्वर-तत्त्व है। ऐश्वर्य-प्रधान प्रकाशावस्थामें वे परम व्योममें विराजमान नारायण हैं; माधुर्य-प्रकाशकालमें वे गोलोक वृन्दावन वासी गोपीजनवल्लभ श्रीश्रीकृष्णचन्द्र हैं। उनके प्रकाश और विलास नित्य तथा अनन्त हैं। उनके समान कोई और कुछ भी नहीं है, उनसे अधिककी तो बात ही नहीं। समस्त प्रकाश और विलास उनकी परा शक्तिसे ही उत्पन्न हुए हैं। उनकी परा शक्तिके अनेक विक्रमोंमेंसे तीन ही विक्रमोंका जीवको पता है—एकका नाम चिद्विक्रम है, जिसके द्वारा उनकी सम्पूर्ण लीलायें सुचारुरूपसे संपन्न होती हैं; दूसरेका नाम है जीवविक्रम वा

तटस्थविक्रम—जिसके द्वारा अनन्त जीवोंका उदय तथा अवस्थिति होती है; तीसरे विक्रमका नाम मायाविक्रम है, जिसकेद्वारा सकल मायिक वस्तुओं, काल तथा कर्मकी रचना होती है। जीवके साथ भगवानका जो सम्बन्ध, भगवानके साथ जीव और जड़का जो सम्बन्ध, एवं जड़के साथ जो भगवान् और जीवका सम्बन्ध है—इन्हीं सम्बन्धोंका नाम है सम्बन्धतत्त्व। सम्बन्धतत्त्वके अच्छीतरह जानलेने से ही 'सम्बन्धज्ञान' होता है। सम्बन्धज्ञानसे हीन व्यक्ति किसी प्रकार शुद्ध वैष्णव नहीं कहा जा सकता।"

—जै० ध० ४थं अ०

२ प्रश्न:—सम्बन्ध-ज्ञानयुक्त 'अहन्ता ममता' क्या कोई निकृष्ट वस्तु है?

उत्तर:—श्रील ठाकुर भक्तिविनोद कहते हैं—वास्तविक श्री कृष्ण-सम्बन्ध-अभिमानमें अहंता ममताका भाव नहीं है। कृष्णेतर प्राकृत वस्तुओंमें जो मेरा अहंता और ममताका भाव है वह श्रीकृष्ण-की सेवाके साथ सम्बन्ध रखते हुए ही है।

—यामुन भावावली, गीतमाला

द्वितीय वैभव

१ 'आम्नाय' क्या है?

"संसार-रचयिता ब्रह्माके निकटसे गुरुशिष्य-परम्परा द्वारा प्राप्त 'ब्रह्मविद्या' नामक वेद-समूहको 'आम्नाय' कहते हैं।"

—श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा २य परिच्छेद।

२ श्री चैतन्यदेवकी मूलशिक्षा क्या है?

"आम्नाय: प्राह तत्त्वं हरिमिह परमं सर्वशक्तिं रसाब्धिं
तद्भिन्नांशांश्च जीवान् प्रकृतिकवलितानां तद्वि-मुक्तांश्च भावात्।
भेदाभेदप्रकाशं सकलमपि हरे: साधनं शुद्धभक्तिं
साध्यं प्रीतिमेवेत्युपदिशति जनान् गौरचन्द्र: स्वयं स: ॥"

—'दशमूलनिर्यास,' सज्जनतोषिनी ९।९।

३ दशमूल क्या है?

दशमूलमें एक तो प्रमाण और नव प्रमेय हैं। प्रमाण है आम्नाय वाक्य, और प्रमेय ये हैं—

(१) हरिही पर तत्त्व हैं; (२) वे (श्यामसुन्दर) सर्वशक्तिमान हैं; (३) वही श्यामसुन्दर परमरसमय हैं, सद्व्योम या परव्योममें ही उनका धाम है; (४) जीव अनन्त, चित्परमाणु तथा कृष्णके विभिन्नांश हैं; और नित्यबद्ध तथा नित्यमुक्त भेदोंसे दो प्रकारके हैं। (५) कृष्णबहिर्मुख जीव मायासे बन्धे हुए हैं; (६) शुद्ध भक्तगण माया से मुक्त हैं; (७) जीव और जड़मय समस्त जगत उनकी अचिन्त्य शक्तिसे उत्पन्न उनका नित्य-भेदाभेद प्रकाश है; (८) नव प्रकारकी कृष्ण भक्ति ही अभिधेय तत्त्व है; (९) कृष्ण-प्रेम ही प्रयोजन तत्त्व है।"

—श्रुति शास्त्रनिन्दा ह: चि:।

४ तत्त्ववस्तु एक है वा अनेक?

"तत्त्वमेकमेवाद्वितीयम्
तत्त्ववस्तु एक ही है दो नहीं।"

—शक्तिमत्तत्व प्रकरण आ: सू: २।

५ श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षायें किन ग्रन्थोंमें लिखित हैं?

"श्रीमहाप्रभुकी शिक्षायें दो ग्रन्थोंमें अच्छीतरह लिखी हुई हैं; तत्त्वशिक्षा—'श्रीब्रह्मसंहिता' में तथा भजनशिक्षा—'श्रीकृष्ण कर्णामृत' ग्रन्थमें।"

—'विज्ञप्ति' कृ: क:।

६ एकमात्र प्रमाण क्या है? वेदोंका प्रतिपाद्य —विषय-वस्तु क्या है?

"वेदशास्त्रोंमें विशुद्ध भक्ति ही की शिक्षा दी गई है। वेद-वादियोंके प्रकृति-दोषसे अनेक प्रकारके मतों, तथा अनेक प्रकारके कर्मों और ज्ञानोंकी व्यवस्था प्रचलित है। वास्तवमें तो केवल वेद ही मनुष्योंके एकमात्र प्रमाण तथा शिक्षागुरु हैं। वेदोंमें मतमतान्तर प्रवेश कराकर शुद्धभक्तिसे पृथक्, भिन्न भिन्न मतोंका प्रचार हुआ है।"

—प्रमाणनिर्देश, भा: म: १.६।

७ सच्छास्त्र क्या है?

"एक अन्धा मनुष्य यदि दूसरे अन्धेको पथ-प्रदर्शन करे तो दोनों जाकर कुएँमें गिर पड़ें; उसी तरह असत् शास्त्रके बनाने वाले तथा उनके अनुसरण करने वाले अज्ञ लोग कुमार्गमें चले जाकर शोचनीय होते हैं। वेद और वेदानुगत शास्त्र ही 'सच्छास्त्र' हैं।

—चै: शि: १।२।

८, वेद क्या है?—

"जिस किसी स्थानमें कोई एक वेदग्रंथ पा लेनेसेही जो वह ग्रंथ सब जगह माननीय होगा यह बात नहीं है। समय समयपर मतसम्प्रदायोंके आचार्योंने जिनको स्वीकार किया है वेही 'वेद' हैं और जिनको प्रक्षिप्त कह परित्याग किया है वे 'वेद' नहीं हैं, अतएव हमारे माननीय नहीं हैं।"

—जै: ध: १३श अ:।

९, गीता, भागवत, सात्वत-पञ्चरात्रादि शास्त्र, वेद और श्रीचैतन्यदेवकी वाणी—इनमें पार्थक्य क्या है?

"गीताको श्रीमुखसे उच्चरित वाक्य होनेके कारण 'गीतोपनिषद्' कहा जाता है अतएव वह 'वेद' है। श्रीचैतन्य महाप्रभुका शिक्षित दशमूलतत्त्व भी श्रीमुखवाक्य है सुतरां वह भी 'वेद' है। समस्त वेदार्थोंके सार संग्रहरूप श्रीमद्भागवत ही प्रमाण चूड़ामणि हैं। और अन्यान्य स्मृतिशास्त्रोंके वचन भी यदि वेदानुगत हों तो वे भी प्रमाण ही हैं। तन्त्र शास्त्र तीन प्रकारके हैं—सात्त्विक, राजस और तामस। उनमें 'पञ्चरात्र' प्रभृति सात्त्विक तन्त्र सब वेदोंके गूढ़ अर्थोंका विस्तार करनेके कारण वे भी प्रमाणोंके मध्य माने गये हैं।

जै० ध० १३श अ:

१०, आम्नाय-धाराओंके नित्यत्वका क्या प्रयोजन है?

"No book is without its errors. God's Revelation is Absolute Truth, but it is scarcely received and preserved in its natural purity * * * Truth when revealed is Absolute, but it gets the tincture of the nature of the receiver in course of time and is converted into error by continual exchange of hands from age to age. Now Revelation, therefore, are continually necessary in order to keep Truth in its original purity."

The Bhagawat Its Philosophy, Its Ethics and Its-Theology.

अर्थात—"कोई भी ग्रन्थ पूर्णतया दोषरहित

नहीं होता है। स्वयं भगवान् अपने भक्तके हृदयमें जिस सत्यका प्रकाश करते हैं वह परम सत्य है किन्तु अपनी स्वाभाविक पवित्रताके साथ वह मनुष्योंमें प्रायः गृहीत तथा रक्षित नहीं ही होता है। सत्य जब प्रकाशित होता है परम सत्य रहता है, किन्तु समयवशात् वह ग्राहकके स्वभावकी झलक ग्रहण कर लेता है और एक हाथसे दूसरे हाथोंमें जाते रहनेके कारण दिनोंदिन दोष रूपमें परिवर्तित होता जाता है। अतएव सत्यके स्वाभाविक पवित्रतावस्थामें रखनेके लिये आम्नाय नित्य आवश्यक हैं।"

दी भागवत इट्स फिलोसोफी, इट्स एथिक्स, एण्ड इट्स थिओलोजी।

तृतीय वैभव

१, सद्गुरुका लक्षण क्या है? कुलगुरुके स्वीकार करनेपर क्या सद्गुरुका आश्रय-लाभ नहीं होता?

"समयके दोषसे गुरुके सम्बन्धमें मनुष्योंके विचार अत्यन्त दोषपूर्ण हो गये हैं। इन दिनों कुलगुरुके निकट अथवा जिसी किसी साधारण व्यक्तिके निकट उपदेश ग्रहण किया जाता है, इससे परमाराध्य गुरुदेवका आश्रय प्राप्त नहीं होता। शास्त्रों में कहा गया है कि जो गुरु शब्दब्रह्म और परब्रह्ममें निष्णात हैं उनके निकट आत्म-धर्मके जिज्ञासु व्यक्ति गमन करें तथा उनकी शरणागति स्वीकार करें।"

पञ्चसंस्कार, स: तो: २।१

२, 'गुरु' पदके योग्य कौन हैं?

"परमार्थ-विषयमें जो पारंगत हैं वे ही गुरु होनेके योग्य हैं।"

'गुर्व्ववज्ञा' ह: चि:।

३, उच्चवर्णका विचार कर क्या गुरु करना उचित नहीं है? 'हरिभक्ति विलास'में ब्राह्मण तथा गृहस्थको गुरु स्वीकार करनेकी कथा क्यों कही गयी है?

कृष्ण तत्त्वका ज्ञान ही सब जीवोंका परमार्थ है। इस तत्वज्ञानके गुरु होनेके अधिकारके सम्बन्धमें यह सिद्धान्त है कि कृष्णतत्त्वके ज्ञाता चाहे ब्राह्मण हों या शूद्र; चाहे गृहस्थ या संन्यासी हों गुरु हो सकते हैं। श्री 'हरिभक्ति विलास'में जो उच्चवर्णके योग्यपुरुषके रहते हीनवर्णके व्यक्तिके निकट कृष्णमन्त्र दीक्षा लेनी उचित नहीं है—ऐसी कथा है वह लोकापेक्षी वैष्णवके सम्बन्धकी है; अर्थात् यह कथा उस वैष्णवके सम्बन्धकी है जो संसार पचलित विधिमार्गमें रहता हुआ कथञ्चित् परमार्थ विषयक इच्छा रखता है। परन्तु जो वैधी और रागानुगा भक्तियोंके तात्पर्य को जानकर विशुद्ध कृष्णभक्ति पानेकी इच्छा करते हैं उनके सम्बन्धमें उपयुक्त कृष्णतत्त्व ज्ञाता जिस वर्णमें वा जिस आश्रममें प्राप्त हों उन्हें ही गुरु स्वीकार करनेकी विधि कही गयी है।"

—श्रः प्रः भाः म ८।१२७।

४ ब्राह्मणत्व और गृहस्थत्व—ये दोनों क्या गुरुके मुख्य लक्षण नहीं हैं?

"किबा विप्र किबा न्यासी शूद्र केने नय।
जेई कृष्णतत्त्ववेत्ता सेइ गुरु हय॥"

(क्या ब्राह्मण, क्या सन्यासी, अथवा शूद्र ही क्यों न हो जो व्यक्ति कृष्णतत्त्वके ज्ञाता हैं वे ही गुरु हो सकते हैं।) जिनमें यह गुरुत्व का स्वरूप-लक्षण मौजूद है उनको यदि एक या दो तटस्थलक्षण नहीं भी हैं तो वे गुरु होनेके योग्य हैं। ब्राह्मणत्व और गृहस्थत्व—ये ही दो गुरुके तटस्थलक्षण गिने जाते हैं। गुरुकी स्वरूपयोग्यतासे युक्त व्यक्तिमें

यदि ये दोनों तटस्थलक्षण मौजूद हैं तो अच्छा ही है। परन्तु जिनको कृष्णतत्त्ववेत्तृत्वरूप स्वरूप योग्यताही नहीं है उनको इन दो तटस्थलक्षणोंसे गुरु होनेकी योग्यता नहीं हो सकती।

—तत्त्वकर्म प्रवत्तन, सःतोः ११।८

४ दुष्टगुरु और सद्गुरुके चरणाश्रय क्या है?

"गुरु दो प्रकारके होते हैं-अर्थात् अन्तरङ्ग और वहिरङ्ग। समाधिस्थ आत्मा ही आत्माका अन्तरङ्ग गुरु है। जो युक्तियोंको 'गुरु' कह उनके निकट उपासना सीखता है उसने दुष्ट गुरुका आश्रय लिया। नित्यधर्मके पोषक रूपमें युक्तियोंके छलनेकी पूतनाके छलनेसे तुलना की जासकती है। राग-मार्गके उपासकगण परमार्थतत्त्वमें युक्तियोंका विसर्जनकर आत्मसमाधिका आश्रय लेते हैं। जिस मनुष्यके निकट उपासनातत्त्वकी शिक्षा ली जाती है वे वहिरङ्ग गुरु हैं। जो रागमार्गको जानकर शिष्यों-के अधिकारानुसार परमार्थका उपदेश करते हैं वे सद्गुरु हैं।"

—कृः सं ८।२४

लोकशिक्षक ठाकुर भक्तिविनोद

नदिया जिलेके वीरनगर ग्राममें एक धनाढ्य व्यक्तिके घरमें श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर अवतीर्ण हुए थे। बचपनसे ही उनकी धीशक्ति (बुद्धिशक्ति), धर्मप्रियता, सदाचार-वैशिष्ट्य और वैष्णव शास्त्रमें विशेष रुचिका परिचय मिलता था। विभिन्न मतवाद और धर्मशास्त्रादिके आलोचना एवं तुलनामूलक विचारसे वैष्णवधर्म और शास्त्रका असमोर्द्धत्व और पूर्णताके विषयमें उनकी बहुत निष्ठा देखी जाती थी।

महाप्रभु और उनके अनुग गोस्वमीगणोंके तिरोभावके बाद शुद्धभक्तिधर्मके योग्य प्रचारकोंके अभावसे कर्म, ज्ञान और योगादिके द्वारा जीवके चित्तमें मलिनताका समावेश हो गया था।

सकल संसार मत्त व्यवहार-रसे।
कृष्णपूजा, कृष्णभक्ति कारो नाहि वासे॥

चैः भाः आः २।८६

कलियुगकी ऐसी अवस्थामें अबसे ठीक एक सौ वर्ष पहले ठाकुर भक्तिविनोदका आविर्भाव हुआ था। वैष्णवोंका जन्म वा मृत्यु नहीं होती। इसीलिये, ठाकुर भक्तिविनोदके संबंधमें आविर्भाव और तिरोभाव ये दो शब्द प्रयुक्त हुए हैं। बचपनसे ही वे भक्तिपथके पथिक थे। भक्ति-प्रचार करनेके लिये यत्नशील रहकर विभिन्न भाषामें सौ से अधिक ग्रन्थोंकी रचना उन्होंने की है।

श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा, उनके शिष्य छः गोस्वामियोंके बनाये हुए कठिन संस्कृत ग्रंथोंमें लिखे रहनेके कारण संस्कृत नहीं जाननेवालोंका उसमें प्रवेश नहीं हो पाता था अतः वे उस ओर आकृष्ट नहीं होते थे। इसलिये ठाकुर भक्तिविनोद जीवोंके ऊपर बड़ी कृपा करके गोस्वामीशास्त्र समुद्रका मथन करके बङ्ग भाषामें जो नवनीत (मक्खन) संग्रहकर रख गये हैं, उससे आज भाग्यवान जीवात्माका प्रचुर आहारका संस्थान हुआ है। ठाकुर भक्तिविनोदके इस संसारमें आविर्भूत नहीं होनेपर महाप्रभुके शिक्षामृतकी उपलब्धि करनेका भाग्य कितने लोगोंको होता, यह कहना कठिन है। यह उनका एक बड़ा अवदान है।

ठाकुर भक्तिविनोदने ग्रन्थ-रचनाके सिवाय १८८० ख्रृष्टाब्दसे १८९८ ख्रृष्टाब्द तक पारमार्थिक पत्रिका "सज्जनतोषणी" में इन सब शिक्षाकी कथाओं-को अनेक सरल प्रबन्धों और निबन्धोंमें प्रचार किया है। महाप्रभुके प्रचारित प्रेमधर्मके मूलमें श्रीनामसंकीर्त्तन और श्रीनाम और श्रीनामका अभिन्नत्व विचार है। ठाकुर महोदयने अपने आचार और प्रचारके द्वारा हमलोगोंको उसकी शिक्षा दी है। उनकी शिक्षा केवल ग्रन्थोंके पृष्ठोंमें ही नहीं। उन्होंने अपनेको श्रीनामहट्टका झाड़ूदार बतलाया है। इस समय शुद्ध भक्तिपथमें वे हमलोगोंके प्रथम बन्धु, वर्त्मप्रदर्शक गुरु और सहायक हैं।

षड्गोस्वामियोंमें से एक, श्रील जीवगोस्वामी पादने विश्व-वैष्णवधर्मके प्रकृष्ट प्रचार और क्रमोन्नतिके सहायकरूपसे आजसे प्रायः चार सौ वर्ष पहले "श्रीश्रीविश्ववैष्णवराजसभा" नामक सभा स्थापित की थी। श्रील श्रीजीवगोस्वामीपादके अप्रकट होनेके बाद वह सभा लुप्त होगई थी। गत १८७२ ख्रृष्टाब्दमें ठाकुर भक्तिविनोदने उसी "श्रीश्रीविश्व-वैष्णव राजसभा" को पुनः जगाकर बहुत दिनों तक सभापतिके रूपमें प्रेमधर्मका प्रचार किया था।

श्रीमन्महाप्रभुके अप्रकट होनेके बाद उनका आविर्भावस्थल श्रीधाम मायापुर बहुत दिनों तक सर्वसाधारणके लिये अज्ञात रूपमें था। ठाकुर भक्तिविनोदने महाप्रभुके आदेश और वैष्णवसार्वभौम श्रील जगन्नाथदास बाबाजी महाराजके निर्देशसे उसको खोजकर संसारके लोगोंका महाकल्याण किया है। वर्तमान युगमें ठाकुर भक्तिविनोद ही महाप्रभुके प्रचारित शुद्ध वैष्णवधर्म वा प्रेमधर्मके संस्थापक हैं।

उन्होंने सांसारिक लोगोंकी लीलाका अभिनय करके भी मुक्तपुरुषकी लीलाका प्रदर्शन किया है। कृष्णका संसार (बद्धजीवका संसार नहीं) किस प्रकार किया जाता है उसका आदर्श उन्होंने अपने जीवनमें प्रतिफलित किया है। जीवनके शेषकालमें परमहंसवेष धारणकर नवद्वीपान्तर्गत श्रीगोद्रुममें अपने भजनस्थल स्वानन्दसुखदकुञ्जमें भजनानिरत रहकर उन्होंने अपनी तिरोभाव लीलाका प्रकाश किया (१९१४ ख्रृः)। वहां उनके भजनगृह और समाधि मन्दिर अबतक पूजित होते आ रहे हैं।

उनके तिरोभावके बाद उनकी असम्पादित कार्यावलीका उनके बाद होनेवाले आचार्यवर्य ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरने सम्पादित किया और उनके अप्रकट होनेपर श्रीश्रीविश्ववैष्णवराजसभाकी कार्यावली वर्तमान गौड़ीय वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् भक्ति प्रमोद पुरी गोस्वामी महाराजके द्वारा भलि-भाँति होती आरही है।

ठाकुर भक्तिविनोदके इस संसारमें नहीं आनेसे आज भारतसे सुदूर पाश्चात्य जगतमें रहनेवाले महाप्रभुकी प्रचारित विशुद्ध प्रेम-धर्मकी कथा भली-भाँति नहीं जान पाते। बुरे सम्प्रदायोंके आचरणके कारण जो वैष्णवधर्म लोगोंकी दृष्टिमें घृणित समझा जाने लगा था, ठाकुर भक्तिविनोदकी कृपासे उसीका माधुर्य और सौवासौगन्ध आज विश्वमें चतुर्दिक प्रसारित हो गया है।

श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका अवदान

• श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु स्वराट्, लीलापुरुषोत्तम, और असमोर्द्ध तत्व हैं। ठाकुर भक्तिविनोद उनके ही मनोभीष्ट संस्थापक हैं। वेदका उद्दिष्ट (कृष्ण)

सम्बन्ध, अभिधेय (भक्ति) और प्रयोजन ही (कृष्ण-प्रेम ही) महाप्रभुका प्रचार्य विषय हैं। ठाकुर भक्तिविनोदने इन विषयोंको अपने आचार और प्रचारके द्वारा और भक्तिग्रंथोंकी रचना करके जगतमें स्थापित किया है।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्गने विश्ववासियोंको अपनी ओर आकृष्ट किया है, किंतु पञ्चमपुरुषार्थ 'कृष्णप्रेम' सम्बन्धमें सभी नीरव हैं। धर्मार्थ-कामियोंको किसी कालमें शान्ति नहीं। एकमात्र भगवद्भक्त ही निष्काम और शान्त हैं। जीवको जहां कर्तृत्वाभिमान (Egotism) होता है, वहीं उसको सत्व, रजः और तमोरूप गुणत्रयका बन्धन भी होता है। इसीलिये महाप्रभुने कहा है

मायामुग्ध जीवेर नाहि कृष्णस्मृति ज्ञान।
जीवेर कृपाय प्रभु कैल वेद पुराण॥
(चै: च: म ०।१२२)

इस वेद-पुराणमें स्वराट् पुरुषोत्तम कृष्ण ही एकमात्र उपास्य हैं। श्रीमहाप्रभु उसी कृष्णके प्रच्छन्न-मूर्त्ति हैं। वेद-पुराणके जो वक्ता हैं, वे ही आचार्य, जगद्‌गुरु और महाभागवत हैं। जगतके लोग अपने अपने इन्द्रिय तोषणमें व्यस्त हैं। किन्तु महाप्रभुके प्रचारित वैष्णवधर्म वा प्रेमधर्ममें एकमात्र कृष्णेन्द्रिय प्रीतिवांछा ही उद्दिष्ट है। वही प्रेम है और उसीमें जीवकी सर्वसिद्धि है। चेतनमात्रको ही कृष्णेन्द्रियतोषणरूप सेवाके सिवाय अन्य कार्य नहीं है। यही महाप्रभुके शिक्षानुसार ठाकुर भक्तिविनोदका अवदान है।

भक्तिराज्यमें प्रवेश करनेमें अनेक बाधायें (Impediments) हैं। जीवके अनर्थ भी चार प्रकारके हैं, यथा,—स्वरूपभ्रम, हृद्दौर्बल्य असत्तृष्णा और अपराध। इन सब बाधाओंको हटानेके लिये आचार्य-पादपद्म स्वीकार करना आवश्यक है। आचार्य शरणापत्तिके बिना इन सब बाधाओंसे छुटकारा पानेका कोई उपाय नहीं। भगवदिच्छासे ही ठाकुर भक्तिविनोद ऐसे आचार्य पृथ्वीमें आविर्भूत हुए थे।

मनुष्यका मनः कल्पित मतवाद वा धर्म जीवका नित्य धर्म नहीं हो सकता। जीव नित्य वस्तु है। इस चेतन आत्माका धर्म ही वैष्णवधर्म, भागवतधर्म, जैवधर्म, सनातनधर्म वा प्रेम-धर्म नामसे कथित है। यह धर्म नित्य है। यह मानव कल्पित नहीं है। यह तो साक्षात भगवतप्रणीत है। यह वैष्णवधर्म वा शुद्ध-प्रेमधर्म ही महाप्रभुकी शिक्षाका एवं ठाकुर भक्तिविनोदके प्रचारका विषय रहा है।

भक्तिके दो मार्ग हैं—विधिमार्ग और रागमार्ग। विधिमार्गमें शास्त्रशासनके द्वारा चालित होकर साधक क्रमोन्नति प्राप्त करते हैं। और, रागमार्गमें स्वाभाविक प्रीतिके वशसे जीव कृष्ण भजनमें अग्रसर होते हैं। 'राग' कहनेसे अनुराग वा स्वाभाविक प्रीतिको ही लक्ष्य किया जाता है।

धर्मार्थ-कामोमोक्षको कपटता बतलाया गया है। इन सबोंके द्वारा जीवके आत्यन्तिक मङ्गल होनेकी कोई सम्भावना नहीं। श्रीमद्भागवत-शास्त्रने इस धर्मार्थकाममोक्षरूप कपटतासे रहित प्रेमधर्मकी कथा विस्तृतरूपसे बतलाई है। श्रीमहाप्रभुके अनुसरणमें ठाकुर भक्तिविनोद उसी कैतववर्जित धर्मके ही विशिष्ट प्रचारक हैं। इस कपटहीन जीवके धर्मके प्रचारमें श्रीमहाप्रभुकी महावदान्यता प्रचारित और महाप्रभुके भक्तगणोंकी महा-महावदान्यता प्रकटित हुई है। ठाकुर भक्तिविनोदके समान आचार्यके अभ्युदयसे उसी बदान्यताका अवदान हमलोग देख पाते हैं।

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है । प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है । हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रवालीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं ।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, शिक्षा, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगत्की अवस्था, समसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व ... और प्रामाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भावमें साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है । ...में अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं । सुन्दर जिल्द भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा । भिक्षा ३) । प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकत्ता । श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वोयारी, ढाका ।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवनके मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है । निर्मत्सर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे । वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें एण्टिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें । विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं । भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणोंकी गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुमण्डित होकर प्रकाशित हुई है । श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा ।।) आना ।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहक मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित । भिक्षा ।।।) मात्र । प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ ।

अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ । बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण । पहले प्रति अध्यायके प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्यविरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपादका सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्त्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है । इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्रभी संयोजित हुआ है । भिक्षा २) मात्र ।

Printed by :—Mukunda Madhab Das Brahmachari, at the Ramesh Printing Works
and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

Regd No P. 458

वर्ष ५] श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः संख्या १०]

भागवत

एकमात्र
पारमार्थिक
मासिक पत्र

५ केशव
गौराब्द
४५३

अग्रहण कृष्ण ५
संवत
१९९६ वि०

अग्रिम मूल्य [illegible]) [illegible]

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥६॥

जिसमें इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें [illegible] फलाभिसन्धान-रहित ऐकान्तिकी स्वाभाविक निर्विघ्न भक्ति उदय होता है, [illegible] मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है [illegible] भक्तिके बलसे आत्मा प्रसन्न [illegible] आत्मा प्रसन्नता लाभ करता है।

सम्पादक—उपदेशक पं० श्री रूपविलास ब्रह्मचारी भक्तिशास्त्री बी० ए०

Editor :—Upadeshak Pandit Sree Rupvilas Brahmachari, Bhaktishastri B. A.

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

विषय सूची

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

वर्ष ५ | श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना) | संख्या ११

अग्रहण कृष्ण ५, ४५२ स० १९९६ वि०, १ दिसम्बर सन् १९३९ ई०

जय हरिनाम

जय जय जय हरिनाम,
चिदानन्दा-मृतधामा ।
जय जय जय परतत्त्व,
सदा जगजन विश्रामा ॥
करि जीवन पर दया,
अहो अक्षर आकारा ।
निज जन पर करि कृपा,
नाम रूप ही अवतारा ॥
जय जय जय हरि कृष्णनाम,
सब जन मन रञ्जन ।
हे प्रभु नाम तुम्हारे बिनु,
को है भवभञ्जन ॥
होइ अकिञ्चन, दीन जब हो,
जो तुम ही पुकारे ।
तीन हु ताप विनाश किए,
तुम तिन ही उधारे ॥
लिङ्गभङ्ग छनमाहि होत,
तुम्हरी परतापा ।
जय जय हरिनाम,
हरण संसृत संतापा ॥

(कृष्ण)

श्री हरिनाम

परमेश्वरकी कृपाके बिना इस दुस्तर भव समुद्र-को पार करनेका दूसरा कोई उपाय नहीं है।

उद्देश्य श्रेष्ठ होनेपरभी जीव स्वभावसे ही दुर्वल और अधीन है, एक मात्र भगवान ही इस जीवके नियन्ता पाता और त्राता है।

जीव अणुचैतन्य है अतएव परमचैतन्यके अधीन और उसका सेवक है। परमचैतन्यरूप भगवान ही जीवके आश्रय है। जड़जगतमें जीवकी अवस्थिति केवल दण्ड पाने योग्य लोगोंके कारावास के तरह है।

भगवानसे विमुखताके कारणही जीव मायाके बंधनमें पड़ जाता है। भगवानके सम्मुख हुए बिना जीवका मायासे उद्धार होना सम्भव नहीं है। भगवानसे बहिमुर्ख जीवही मायाबद्ध हैं माया और भगवदनुगत जीवही मुक्त है।

बद्धजीवगण साधनके द्वारा भगवत कृपा प्राप्त करके मायाके सुदृढ़ बंधनको काटनेमें समर्थ होते हैं। महर्षियोंने खूब विचारकर कर्म्म ज्ञान और भक्ति ये तीन प्रकारके साधन निर्णय किए हैं। वर्णा-श्रमधर्म्म, यज्ञ, तपस्या, दान, व्रत, इत्यादि नाना प्रकारके कर्म्माङ्ग शास्त्रोंमें कहे गए हैं। इन समस्त कर्म्मोंके भिन्न २ फल उन शास्त्रोंमें वर्णित है।

फलोंका पृथक पृथक विचार करनेसे देखाजायगा कि फलोंमें स्वर्गभोग, मर्त्यसुखभोग, सामर्थ्य, रोग-शान्ति, उच्चकार्य्य करनेका अवकाश यही सब प्रधान फल है।

उच्चकार्य करनेके अवकाशरूप फलको यदि अलग कर दे तो बाकी फल सब केवल मायिक प्रतीत होंगे स्वर्गभोग, मर्त्यसुखभोग ऐश्वर्य्यादि सामर्थ्य जो कर्म्म द्वारा जीव लाभ करते हैं वे सभी नश्वर है।

भगवानके कालचक्रके द्वारा ये सभी बिनष्ट हो जाते हैं। इन सब फलों के द्वारा मायाके बन्धनका बिनाश होना तो दूर रहे और उल्टे ये समय पाकर और वासनाका साथ पाकर बंधन, को और भी दृढ़ कर देते हैं।

यदि अवकाश पाकर उच्चकार्य नहीं किया जाय तो उच्चकार्य्य करनेका अवकाश भी निरर्थक ही हो जाता है। जैसा कि भागवत में कहा है।

धर्म्मः स्वनुष्ठितः पुंसां बिष्वक्सेन कथासुयः।
नोत्पादयेद्यदि रतिं, श्रम एव ही केवलम्॥

वर्णाश्रमरूप धर्म्मका मूल तात्पर्य्य यही है कि स्वभावके अनुसार सांसारिक और शारीरिक कर्म्म विभागके द्वारा अनायास ही मनुष्यका संसार और शरीरयात्रा निर्वाह होवे। इससे हरिकथा की आलो-चनाके लिए बहुत कुछ अवकाश प्राप्त होगा। यदि कोई मनुष्य उत्तम रूपसे वर्णाश्रम धर्मका अनुष्ठान करके भी हरिचर्चा द्वारा हरिकथा में प्रीति नहीं प्राप्त करे तो उसका धर्म्मानुष्ठान काम केवल परिश्रम मात्र है। कर्म्म द्वारा भवसिन्धु पार नहीं हो सकता है यह निश्चित है। यह बात सक्षेपमें कहे देता हूँ।

अब रही ज्ञान चर्चाकी बात तो यह जीवके लिए उच्चगति प्राप्त करने का साधन रूप कहा गया है। ज्ञानका फल आत्मशुद्धि है। आत्मा जड़ातीत वस्तु है इसके भूल जानेसे जीव जड़ाश्रित होकर कर्म्म मार्गमें घूमता रहता है।

ज्ञान चर्चाके द्वारा विदित हो जाता है कि मैं जड़ नहीं बल्कि चिद्वस्तु हूँ इस प्रकारका ज्ञान स्वभावतः "नैषकर्म्म" के नाम से विख्यात है क्योंकि

चिद्वस्तुका नित्यधर्म्म जो चिदास्वादन है वह इस ज्ञानके इस अवस्थासे आरम्भ नहीं होता।

इस अवस्थामें मनुष्य आत्माराम रहता है किन्तु जिस समय चिदास्वादन रूप चित्क्रिया आरम्भ होता है उस समय फिर नैष्कर्म्म बाकी नहीं रह जाता।

इसीलिये नारदजी कहते है :—

नैष्कर्म्यमप्यच्युत भाव वर्जितम् ।
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ॥

नैष्कर्म रूप निरञ्जन ज्ञान जब तक अच्युतभाव विहीन रहता है तब तक उस ज्ञानकी शोभा नहीं होती।

यदि कहो कि तो होता क्या है तो सुनो भागवत में कहा है :—

आत्मारामश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्व्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूत गुणो हरिः ॥

परमचैतन्य हरिमें इस प्रकार का एक असाधारण गुण है कि वे समस्त जड़मुक्त आत्माराम लोगोंको आकर्षण करके अपनी भक्ति रूप कार्य्यमें नियुक्त कर लेते हैं।

अतएव कर्म्म सदवकाश देकर और ज्ञान स्वयं नैष्कर्मस्वरूप परित्याग करके जिस समय भक्तिके साधन करनेमें नियुक्त होते हैं उसी समय ज्ञान और कर्म्मको साधनाङ्ग कहा जाता है। उनमें अपनी कोई साधनाङ्गता की क्षमता नहीं है। इसीलिये भक्तिकोही साधन कहा गया है। कर्म्म और ज्ञान भक्तिके साथ होनेसे कभी कभी साधन हो जाते हैं किन्तु भक्ति स्वभावसे ही साधन रूपा है जैसा भागवतके एकादश स्कन्धमें कहा है :—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म्म उद्धव ।
न स्वध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥

हे उद्धव कर्मयोग, सांख्ययोग, वर्णाश्रमधर्म्म, वेदपाठ तपस्या या वैराग मुझ को प्रसन्न नहीं कर-सकते हैं किन्तु तीव्रभक्ति ही केवल मुझे प्रसन्न कर सकती है।

भगवान की प्रसन्नता लाभ करनेके लिए भक्तिके सिवा और कोई दूसरा उपाय नहीं है। साधनभक्ति श्रवण कीर्तनादि लेकर नव प्रकारकी है। उनमेंसे श्रवण, कीर्तन और स्मरण ही प्रधान साधनाङ्ग हैं। भगवानके नाम, रूप, गुण और लीला इन्हीं चार विषयों का श्रवण कीर्तन और स्मरण होता है। इनमेंसे भी नाम ही आदि और सर्वबीजस्वरूप है। अतएव हरिनाम ही सभी उपासनाओं का मूल है। इसके विषयमें शास्त्रमें कहा गया है कि—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

कलिकालमें हरिनाम को छोड़ कर जीव की दूसरी गति नहीं है। कलिकाल शब्द द्वारा केवल कलिकालही नहीं समझना चाहिए। सर्वकालमें हरिनामके सिवा दूसरे उपायसे जीवकी गति नहीं है। विशेषतः कलिकालमें अन्यमंत्रादिके साधन दुरूह होनेके कारण एकमात्र केवल हरिनाम ही अवलम्बनीय है। इसका कारण यह है कि हरिनाम सबसे अधिक वीर्य्यवान है। हरिनाम क्या पदार्थ है यह पद्मपुरानमें इस प्रकार लिखा गया है :

नाम चिन्तामणिः कृष्ण चैतन्यरसविग्रहः ।
पूर्ण शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नाम नामिनोः ॥

इस श्लोक की व्याख्या श्रील जीवगोस्वामीने यों की है:—एक मेव सच्चिदानन्द रसादिरूपं तत्वं द्विधाविर्भूतमित्यर्थः ॥

श्रीकृष्ण तत्व अद्वय सच्चिदानन्दस्वरूप है उनका आविर्भाव दो प्रकार का है अर्थात् नामीरूपसे श्रीकृष्ण

विग्रह और 'नाम' रूपमें श्रीकृष्णनाम। इसका असली अर्थ यह है कि श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान हैं। शक्तिमान पुरुष का समस्त प्रकाश ही उसकी शक्ति का प्रकाशनमात्र है। शक्तिही अपने आधाररूप [illegible]

[illegible] श्रीकृष्ण-स्वरूप और [illegible] नाम पूर्णस्वरूप अर्थात् [illegible] कृष्ण [illegible] नहीं है।

कृष्ण नाम के कहने मात्रसे ही कृष्णरस चित्त में सहसा उदित होजाता है। नाम सदा विशुद्ध है अर्थात् जड़ीय अक्षरोंके ऐसा जड़ाश्रित नहीं है। नाम केवल चैतन्यरस मात्र है। नाम सदाही मुक्त अतएव नित्य मुक्त है कभी भी यह जड़रूप उद्भूत नहीं होता है। जिन्होंने नामरसका पान किया है वेही इस व्याख्या को समझ सकते जो नाममें जड़त्व आरोप करते हैं, जो स्वयं नामके चैतन्यरसके आस्वादनसे असमर्थ हैं वे इस व्याख्याके सुननेमें आनन्द लाभ नहीं कर सकते।

यदि कहो कि सदा ही हमलोग जिस नाम का उच्चारण करते हैं वह जड़ीय अक्षरों का आश्रय किये रहता है तो ऐसा माननेसे नामको जड़जात कहना होगा इसको नित्य मुक्त नहीं कह सकते हैं।

इस बहिर्मुखतर्क को काटनेके लिए श्रीरूप गोस्वामी लिखते हैं:—

अतः श्रीकृष्णनामादिन भवेद्ग्राह्यमिन्द्रियैः।
सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः॥

प्राकृत वस्तुही इन्द्रिय ग्राह्य है। कृष्णनामादि अप्राकृत है वे कभी भी इन्द्रिय ग्राह्य नहीं हैं। इसलिए जो नाम जिह्वासे प्रकाशित होता है वह केवल [illegible] अप्राकृत [illegible] है और उसके अनुसार [illegible]

आनन्द [illegible] जिस प्रकार [illegible] होता है [illegible] कृष्णनाम [illegible]

प्राकृत [illegible] जो नाम प्राकृत [illegible] कहते हैं। नामाभासके द्वारा [illegible], विधिक्रमके द्वारा अनेक स्थानों पर अप्राकृत नाममें रुचि पैदा होता है ऐसा देखा गया है। वाल्मीकि और अजामिलके जीवन चरित्र की आलोचना करनेसे यह बात मालूम हो जायगी।

जीव को अपराधोंके कारण नाम में रुचि नहीं होती है। अपराध शून्य होकर जो कृष्णनाम ग्रहण करते हैं उनके हृदयमें चैतन्यरस विग्रह रूप अप्राकृत हरिनाम उदय होता है। अप्राकृत नामादयके होनेसे हृदयकी उत्फुल्लता चक्षुओंमें जलधारा और देहमें सात्विक विकार देखे जाते हैं। अतएव भागवतमें इस प्रकार लिखा है --

तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलंगात्र रुहेषु हर्षः॥

जीव जिस समय हरिनाम ग्रहण करता है उस समय उसका हृदय अवश्य ही विकृत अर्थात् सात्विक [illegible] होगा नेत्रसे जलधारा बहेगी एवं रोमांच

होगा। जो कृष्णनाम उच्चारण करकेभी इस प्रकारका विकार लाभ नहीं करते उनके हृदय अपराध द्वारा अत्यन्त कठिन हो गये है।

निरपराध नाम लेनाही साधकका नितान्त कर्त्तव्य है अतएव अपराध वर्जन करने के पहले अपराध कै प्रकारका है जान लेना आवश्यक है।

शास्त्रोंमें हरिनामके सम्बन्धमें दस प्रकारके अपराध बतलाए गये हैं।

(१) साधु निन्दा।

(२) शिवादि देवताओंको भगवानसे भिन्न भगवत बुद्धि।

(३) गुरुअवज्ञा।

(४) सत शास्त्र निन्दा।

(५) हरिनाम की महिमा को प्रशंसा मानना

(६) हरिनाममें अर्थ कल्पना।

(७) नामके बल पर पापाचरण करना।

(८) अन्य शुभ कर्म्मोंके साथ नामकी समानता।

(९) अश्रद्धान व्यक्तियोंको हरिनाम उपदेश करना

(१०) नामका महात्म्य सुनकर उसमें अविश्वास

साधुभक्तों के प्रति अश्रद्धा प्रकाश, साधु-चरित्र और अच्छेलोगकी निन्दा करनेसे हरिनामके प्रति अपराध होता है। अतएव जो नामका आश्रय करना चाहते हैं उनके लिए वैष्णवों की अवज्ञाकी प्रवृति सर्वतोभाव से छोड़ना चाहिये।

वैष्णव के कार्य्योंके प्रति सन्देह होनेसे उनकी निन्दा नहीं करके उनके तात्पर्य का अनुसन्धान करना चाहिये। इसलिये साधुओंके प्रति श्रद्धा करनाही नितान्त आवश्यक है।

भगवान से शिवादि देवताओंको भिन्न समझना एक हरिनाम अपराध में है। भागवततत्व एक और अद्वितीय है। भगवान विष्णु से भिन्न शिवादि देवताओं की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है।

शिवादि देवताओं को भगवान का गुणावतार अथवा भगवद्भक्त समझकर सम्मान करनेसे भेद ज्ञान नहीं रहता। जो लोग महादेव को एक पृथक देवता मानकर शिव और विष्णुकी पूजा करते हैं वे महादेव की भगवत्ता नहीं करते हैं इसलिए वे विष्णु और शिव दोनोंके प्रति अपराधी होते है। जो हरिनाम का आश्रय करते हैं उनके लिए इस प्रकार के भेद ज्ञानको पूरे तरहसे त्याग करना कर्त्तव्य है।

गुरुकी अवज्ञा करना एक प्रकारका नाम अपराध है। जिनके द्वारा भगवत्तत्व मालूम हो जाय वेही आचार्य रूपी भगवान है, उनमें दृढ़भक्ति करके हरिनाम में अचला श्रद्धा करना कर्त्तव्य है।

सतशास्त्र निन्दन अवश्य छोड़ना चाहिए अनादि वेदशास्त्र और उनके अनुगत स्मृतिशास्त्र जिन से भागवत धर्म्म जाना जाता है उनकी निन्दा करनेसे हरिनाम अपराध होता है। वेदादि शास्त्रोंमें सदा ही हरिनाम महात्म्य कीर्तित हुआ है। जैसा कि कहा गया है :—

> वेदे रामयणे चैव पुराणे भारते तथा।
> आदावन्ते च मध्ये च हरि सर्वत्र गीयते॥

इस प्रकार सब शास्त्रोंकी निन्दा करनेसे हरिनाम में कैसे प्रेम होगा? बहुत लोग सोचते हैं कि वेदादि शास्त्रोंमें हरिनामका जो महात्म्य गाया गया है वह ज्ञानका प्रशंसामात्र है। जिनकी ऐसी बुद्धि है वे नामापराधी है। उनका नाममें फलोदय नहीं हुआ। अन्यान्य कर्मकाण्डमें जिस प्रकार रुचि उत्पन्न करनेके लिये फलों का वर्णन किया गया है वैसेही हरिनामको फल श्रुतिको भी जो लोग समझते हैं

जो सावधान हैं वे इस प्रकारके अर्थवादमें विश्वास नहीं करते।

एतन्निर्विद्यमानानां मिच्छताम् कुतोभयम् ।
योगिनां नृप निर्णीतम् हरेर्नामानु कीर्तनम्॥

निर्विद्यमान, अकुतोभयके अभिलाषी योगियोंके लिए हरिनाम कीर्तनही एकमात्र कर्तव्य निर्णीत हुआ है। इस प्रकार का जिसका विश्वास है उन्हींको हरिनाममें फलोदय हुआ है।

नामाभास और नामका भेद नहीं जानकर बहुत लोग समझते हैं कि नाम अक्षरमय है अतएव श्रद्धा नहीं करके भी नामादि ग्रहण करनेसे फल होगा।

वे लोग अजामिल आदिका इतिहास "साङ्केत्यम् परिहास्यम् वा" इत्यादि शास्त्र वचनोंका उदाहरण देते हैं। पहले ही कहा जा चुका है कि नाम चैतन्य रस विग्रह है और इन्द्रिय ग्राह्य नहीं है।

ऐसे स्थान में निरपराध होकर नाम का आश्रय नहीं करने से फलोदय सम्भव नहीं है।

श्रद्धाविहीन लोगोंको नाम उच्चारण करनेका यही फल है कि कुछ दिन के बाद उनमें श्रद्धा होगी और श्रद्धाके साथ वे नाम ले सकेंगे।

अतएव दुष्ट रूप से अर्थवाद करके जो लोग नामको जड़ात्मक अक्षर स्वरूप ज्ञानसे कर्म्मकाण्डका अङ्ग समझकर उसकी व्याख्या करते हैं वे अत्यन्तही वहिर्मुख हैं और नामापराधी हैं।

वैष्णवलोग इस नामापराधको यत्नपूर्वक वर्जन करें?

बहुतेरे लोग नामका आश्रय करके सोचते हैं कि मुझे समस्त पाप व्याधियोंकी एक औषधी मिल गई और इस विश्वासके साथ वे लोग प्रवंचना मिथ्याचार, लाम्पट्य इत्यादि नव पापोंका आचरण करने लगते हैं और फिर नाम उच्चारण कर इन समस्त पापोंको काटनेकी चेष्टा करते हैं। ऐसे व्यक्ति नामापराधी हैं।

जो नामका आश्रय करते हैं वे **चिद्रसका** आस्वादन करके फिर जड़ीय असद् वस्तुमें **प्रेम** नहीं करते उनके द्वारा पापाचरण सम्भव नहीं है। पुनः पुनः पाप करके नाम लेना शठता मात्र है। यह अपराध अत्यन्त गुरुतर है और सदा परिहार्य्य है।

बहुत लोग सोचते हैं कि यज्ञादि **कर्म्म दानादि** धर्म्म, तीर्थ, यात्रादि चेष्टाएं जिस प्रकार शुभकर हैं वैसेही नामभी है। जिनकी ऐसी बुद्धि है वे नामापराधी है। नाम सदाही चिद्रस स्वरूप है। अन्यान्य सभी सतकर्म्मही जड़मय हैं अतएव वे सभी नामके विजातीय हैं। जो नामके साथ और शुभ कर्म्मों की समताकी विवेचना करते हैं उनलोगोंने प्राकृत नामरसका आस्वादन नहीं किया है। हीरा और कांचमें जिस प्रकारका भेद है वैसेही हरिनाम और दूसरे २ शुभ कर्म्मोंमेंभी वस्तुगत भेद है।

जो श्रद्धाहीन व्यक्तियोंके प्रति हरिनामका उपदेश करते हैं वे भी नामापराधी हैं। शूकरको जैसे मुक्ताफल देनेसे कुछ फल नहीं होता केवल अपमानही होता है वैसेही नामके प्रति जिनकी उपयुक्त श्रद्धा उत्पन्न नहीं हुई है उनको नाम उपदेश करना नितान्त अन्याय है।

दूसरे जीवोंको जिस कामसे हरिनाममें श्रद्धा हो वही करना कर्त्तव्य है। जब श्रद्धा हो जाय तब नाम उपदेश लेना चाहिये।

जो सब लोग अपनेको गुरु समझकर और अभिमानकर अपात्रको हरिनामका उपदेश करते हैं वे नामापराधके द्वारा गिर जाते हैं।

नामका महात्म्य सुनकरभी जो नाम में एकान्तिक

श्रद्धा नहीं करते वे भी नामापराधी हैं।

इस प्रकार दस प्रकारके नामापराधोंके छोड़े विना हरिनाम उदित नहीं होता है। हां, वर्जन मात्र ही से नामाभास होने लगता है। नामाभास से पापक्षय होता है। पापक्षय होने से श्रद्धा होती है। श्रद्धा होनेसे यथार्थ नामरस का उदय होता है। इसीलिये शास्त्रोंमें नामाभासका महात्म्य कहा गया है।

कलिके लोगोंके निस्तार करने वाले श्रीश्री महाप्रभु चैतन्यदेव जगतके जीवोंके नानाप्रकारके क्लेशों को देखकर दयार्द्र चित्तसे इस इस प्रकारका उपदेश किया है :—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

तृणसे भी अपनेको नीचा समझकर और वृक्षके समान सहिष्णु होकर स्वयं अभिमान शून्य और दूसरेको सम्मान करते हुए जीव हरिकीर्तनका अधिकारी होता है।

अपराध शून्य होकर हरिनाम ग्रहण करनेकी व्यवस्था ही इस वचनका मुख्य तातपर्य है। जो अपनेको सबसे हीन समझते हैं वे कभी भी साधु निन्दा नहीं करते हैं, शिवादि देवताको भेदबुद्धि द्वारा अपमान नहीं करते, गुरुके प्रति किसी प्रकारकी अवज्ञा नहीं करते, सतशास्त्रकी निन्दा नहीं करते हरिनामके महातम्यको यथार्थ जान कर हरिनाममें अर्थवाद नहीं करते अर्थात् शुष्कज्ञान जनित तर्कके द्वारा हरिशब्दमें निगुर्ण ब्रह्मवादकी कल्पना नहीं करते, नामबल पर पाप आचरण नहीं करते दूसरे सत्कर्मों के साथ हरिनामकी समानता स्थापन नहीं करते अश्रधान व्यक्ति को हरिनाम देकर नाम के प्रति उपहास की उत्पति नहीं करते एवं नाम में अविश्वास नहीं करते वे स्वभावतः इन दस नामापराधों को बचा कर नाम लेते हैं।

किसीके उपहास वा अपकार करनेसे वे उसका उपकार करने से विमुख नहीं होते। वे जगतका समस्त कार्य्य करते हुए स्वयं कर्ता वा भोक्ता बनकर कभी भी अभिमान नहीं करते। वे अपने को जगत का दास जानकर सदा जगत की सेवा में व्रती रहते हैं।

इस प्रकार अधिकारी व्यक्ति के मुख से जिस समय हरिनाम उच्चारित होता है उस समय वह नाम अन्तः स्थित चित्तगत से विद्युदाग्निके ऐसा चित्तलोकमें व्याप्त होकर जगज्जीवके मायाविकार रूप अन्धकार को शान्त कर देता है।

अतएव हे महात्मगण! आपलोग अपराधशून्य होकर सर्वदा हरिनाम ग्रहण करें—

हरिनाम के अलावे जीव का दूसरा कोई आधार नहीं है। इसके बिना जीव के कोई दूसरा सम्बल नहीं। इस दुस्तर भव समुद्र में आकर ज्ञान, कर्म्मादियोंका आश्रयग्रहण केवल तृण के सहारे महासागरके पार करनेकी अभिलाषाके समान नितान्त निरर्थक है। हरिनामरूप महानौकाका आश्रय करके उस दुस्तर समुद्रको पार किजिए।

श्री कृष्णार्पणमस्तु।

उपदेशामृत

श्रीश्रील आचार्यदेव की उपदेशामृत की सम्पूर्ण व्याख्या और उपदेशामृत का तात्पर्य

(स्थान सारस्वत श्रवण सदन, श्री गौड़ीयमठ काल १४ कार्तिक १३४५ ४ ठी नवम्बर १९३८)

श्री राधाभावद्युति सुवलित श्रीगौर सुन्दरके प्रिय स्वरूप, दयित स्वरूप, उनके द्वितीय विग्रह श्रील स्वरूप गोस्वामी प्रभुके अभिन्न स्वरूप श्री मद्रूपगोस्वामी प्रभु ही श्री गौर सुन्दर की शिक्षाओं अर्थात शिक्षाष्टक को उपदेशरूपमें जगत को दान करनेमें समर्थ हैं।

श्रीरूप गोस्वामी प्रभुके अनुगत सूत्रमें जो उनके साथ एक चित्त वा एक आशय विशिष्ट हैं वेही अनुगताभिमानी समहृदय विशिष्ट सुहृद वा मित्रवर्ग भी उपदेशामृत को जगतमें वितरण कर सकते हैं। वे रूपानुगवर्य्य हैं।

रूपानुगवर श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने जगतके आपामर जीवोंमें वितरण करनेके लिए उपदेशामृत को भाषान्तरित करके विस्तार किया है। और श्रील प्रभुपादने ठाकुर भक्तिविनोदके अभिन्न स्वरूपसे अनुवृत्ति भाष्य किया है।

(१)

श्रीरूप गोस्वामी प्रभुने प्रथम श्लोकमें अन्वयभावसे उपदेशामृत वितरण कारी लोगों का परिचय दिया है। गौरानुग, उपदेशक गुरु वा आचार्य्य धीर है।

वाक्यवेग, क्रोधवेग, मनोवेग, उदरवेग और उपस्थवेग को धीरपुरुष विशेषभावसे सहन करते हैं। सहिष्णुताके साथ इनसब वेगों को धारण करते हैं। ये सब बातें श्रीरूप गोस्वामी की अपनी कपोल कल्पित नहीं है। शास्त्रोंमें भी हमलोग इन बातों को पाते हैं।

महाभारतके अन्तर्गत हंसगीतामें 'वाचावेगम" इत्यादि की बातें लिखी है। श्रीरूप गोस्वामी प्रभुने हंसगीताके उपदेश को अवलम्बन करके परमहंस गीता का दान जगत को दिया है।

वर्णाश्रमके अन्तर्गत सन्यास आश्रममें कुटिचक, बहुदक, अवस्थाके बाद हंस अवस्था लाभ होता है। हंस असार वस्तु को त्यागकर सार वस्तु का ग्रहण कर सकता है नीर और क्षीर को एक साथ मिलादेने पर भी हंस नीर को छोड़ कर क्षीर ग्रहण कर सकता है। इसी प्रकार जो सार और असार वस्तुके एकत्र रहने पर भी सार वस्तु का ग्रहण कर सकते हैं वेही सारग्राही हंस अर्थात "सारासार विवेक चतुर," हैं।

इसी हंस गीता की कथा को परमहंस कुल चूड़ामणि श्री मद्रूप गोस्वामी प्रभुने वर्णाश्रमी, वर्णाश्रम धर्म्म त्यागी, वर्णाश्रमातीत अर्थात वर्णाश्रमके बाहर अन्त्यज जाति इत्यादि सब किसीके उपकार के लिए और भी सुन्दर और विस्तृत भावसे विश्लेषण करके कहा है।

उपदेशामृतमें हंस गीतासे भी उच्च स्तर की बातें कही गई है। हंसोंके उपास्य ध्येय और भजनीय की बातें उपदेशामृत कहता है। परमहंस ही हंसोंके आश्रय, उपास्य और भजनीय है। उसी परमहंस धर्म्मके सोपान अर्थात परमहंसावस्था लाभ करनेके क्रम, साधन भक्ति वा उपाय तथा परमहंस अवस्था लाभ करनेके बाद क्या २ कृत्य है अर्थात परमहंस गण क्या क्या करते हैं यही सब बातें इसमें खोलकर कही गई है।

परमहंश मुकुटमौलि श्री मद्रूप गोस्वामी प्रभुके अनुगतजन किस प्रकार आचारणशील है ? उनके प्रति किस प्रकार का आचार करना चाहिए ?

वे षड्वेगविजयी और दूसरोंके षड्वेग को दमन कराते हैं। आश्रितों की षड्वेगवशवर्तिता देख कर भी उनके प्रति असहिष्णु नहीं होते, उनको उपदेश देते शिक्षा देते और शासन करते है। इसी प्रकार आचरण करते हैं।

यहां पर "शिष्यात्में विधिलिङ्ग का प्रयोग है। इन्ही षड्वेगविजयी पुरुष को धीर" वा गोस्वामी समझ कर उनके उपदेश वा शासन को ग्रहण करना होगा।

"वाचोवेगम" इत्यादि वाले श्लोकमें तीन प्रकारके वेगों की अर्थात् कायिक, मानसिक, और वाचिक वेगों की बातें आई है। इन्हीं तीन प्रकारके वेगों को धीर पुरुष सहन करते हैं"

शुष्कवैराग्यके द्वारा वा इन्द्रियनिरोध की चेष्टाके द्वारा नहीं। इन छवोंको 'वेग' कहा है, केवल इच्छामात्र नहीं कहा है। इन छवोंमें पराक्रम है वेग अर्थात धीरात्म्य आदि को जो सहन करते हैं वे इन तीन प्रकारसे छववेगों की गति की दिशा को फेर कर उनको कृष्णसेवाके अनुकूल कर लेते हैं।

ये छः वेग तीन भागोंमे विभक्त है जिह्वावेग, उदरवेग, उपस्थवेग ये है कायिकवेग, मनकेवेग और क्रोधके वेग मानसिकवेग है और वाचोवेग ही वाचिकवेग हैं।

जिह्वाके द्वारा शब्द उच्चारण एवं आस्वादन ये दो क्रियामें होती है। जिह्वा की शब्दोच्चारण स्पृहा वाक्यवेगके और आस्वादन स्पृहा कायिवेगके अन्तर्गत है। वाक्योच्चारण करने वाले का भगवद्विमुख विषयमें प्रजल्प हीं वाक्यवेग का रूप है।

श्रीरूपानुगोंमें श्रेष्ठ श्रीदासगोस्वामी प्रभु इस प्रजल्प को "असद्वार्ता" कहते हैं। ठाकुर भक्तिविनोद इसके अनुवादमें, कहते हैं

"कृष्णवार्ता बिना आन असद्वार्ता बलिजान"

कृष्ण ही 'सत्' है और उनको छोड़ और सब कुछ "असत" है "वार्ता" शब्द का अर्थ "संवाद" है।

'असत्" विषय का 'वार्ता' ही असद्वार्ता है यही वाक्यवेग है।

कृष्णके संवादको वहन करनेके लिए यदि वाक्यको नियुक्त किया जाय तो वाक्यका मल जो जीवके प्रति द्रोह रूप प्रकाश करता है वह सम्पूर्ण रूपसे दूर हो जायगा और वह शान्ति और अमृत दान करेगा।

ऐसा नहीं होनेसे वाक्य असद्वार्ता वहन करनेवालेकी मृत्युका कारण हो जायगा।

कृष्ण विस्मृति ही मृत्यु है, कृष्णस्मृति ही अमृत है। कृष्ण कहनेसे केवल कृष्ण विग्रह ही नहीं समझना चाहिए बल्कि उससे कृष्ण और कृष्णसम्बन्धीय वस्तुओंको भी समझना चाहिए। कृष्णके विलासके सभी प्रकारके उपकरणों का मेल समझकर उसकी महिमा आदरके सहित कीर्तन करने ही से जिह्वावेग दमन होता है।

मन सदा रूप रसादिका आधार है और मायाके प्रलोभनके क्षेत्ररूप विश्वमें दौड़ लगानेमें व्यस्त है। सर्वदा इन्द्रियसुख वा भोगके अनुसन्धानमें चञ्चल है। ऐसे मनसे अर्थात् ऐसे मनन वा चिन्ताधारासे छुट्टी पानेके लिए दीक्षा गुरुके आश्रयानुगत्य, भूतशुद्धिके साथ मंत्रका आनुगत्य करना होगा।

मंत्र असद्विषयके मननसे छुट्टी करानेमें वा

कृष्ण विमुख मनको दण्ड देनेमें समर्थ है।

मन्त्रकी परिभाषा है—

"मननात् त्रायते यस्मात् तस्मान्मन्त्रः प्रकीर्तितः।"

हरिनाम महामन्त्र वा मन्त्रभजन शिक्षागुरु वा श्रवणगुरुके द्वारा प्राप्त करनेसे चित्त शुद्ध होकर बसुदेव और धाम स्वरूप होता है यही शुद्ध रूप जीवका नित्य स्वरूप है। इसी स्वरूपमें गुरुवैष्णवों-की कृपासे धामेश्वरकी सेवामें जीव नियुक्त हो सकता है।

'आस्वादन' दो प्रकारका है:—महाप्रसाद आस्वादन और नामामृत आस्वादन। श्री नामाष्टकमें श्रीरूप प्रभु कहते हैं "रसने रसने सदा" नामके साथ रसना रसमयभावसे संयुक्त है। हरिनाम उच्चारणके समय रसना नये नये भावोंसे रस युक्त होती है।

प्रश्न है कौन रसना ? सेवोन्मुख रसना ही रस-मयभावसे नाम की लीला भूमि हो सकती है।

परन्तु अविद्यापित्तोपतप्त रसना नहीं।

श्रीमन महाप्रभु रसमयविग्रह हैं उनके अनुगत होकर उन की कृपा का वरण करके सेवोन्मुख होना होगा। सेवोन्मुख होनेसे ही श्रीनाम प्रभुके 'उपद्रव' अर्थात् निरंकुश प्रभुत्वके सहन करने का सौभाग्य होगा। नाम प्रभु उन्मत्त और पागल बना कर छोड़ते हैं।

प्रभु उपद्रव करके क्या करते हैं? उत्तर सुनो "करि एत उपद्रव, चिते वर्षे सुधाद्रव" वह उपद्रव उसका मधुर है अत्यन्त मधुर है। जो नाम सब घड़ी रस उदय कराता है, रसकी बाढ़ बहा ले आता है, सुधारस की झड़ी लगा देता है—वह सेवोन्मुख रसनाके साथ रसमय रूपसे ही संयुक्त है। उस समय रसमयके सेवारसके आस्वादन का विरोधीवेग वास्तविक जीता जाता है।

उच्चारणके साथ ही साथ रसनाके आस्वादन की विरोधनी अरुचि का दमन होता है। अरुचि जितना-ही दबेगी उतनाही रसनासे नाम प्रभु का आस्वादन सुष्ठुतर और मधुरतर होगा।

आस्वादन दो प्रकार का है कृष्ण कथा रूपी शब्दका आस्वादन और हरि सम्बन्धी वस्तु और उसके अनुग्रह रूपी महाप्रसाद का आस्वादन।

भगवानके प्रसाद चार प्रकारके हैं, वे सुस्वादु हैं। जिह्वाके दोनोंही कार्योंके विषय स्वादु हैं। श्रीलरूप प्रभुने इसी लिए बार बार रसना शब्दका व्यवहार किया है।

"अनर्पितचरीं चिरात करुणयावतीर्णः कलौ।
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्ति श्रियम"
हरिः पुरट सुन्दर द्युति कदम्ब सन्दीपितः।
सदा हृदय कन्दरे स्फुरतुवः शचीनन्दनः॥

श्रीमन्महाप्रभुकी जो इतनी बड़ी दया है उस दया के द्वारा प्रेरित होकर उन्होंने अनर्पितचरी निज भक्ति का वितरण किया है। वह दया अनर्पितचरी है अर्थात् इसके पहले कभी भी किसी के द्वारा प्रका-शित नहीं हुई थी। स्वयंरूप अपनी सेव्य शोभा को दान करनेको प्रस्तुत है। वह सेवा उन्नतोज्ज्वल-रसमयी है, वही चरम और परमरस है। उसी रसको वे आपामर सर्वसाधारणको यहां तक कि पामर पर्यन्तको—देने के लिए प्रस्तुत हैं।

केवल मात्र तीन प्रकारके व्यक्तियोंको उन्होंने वह रस नहीं दिया है। पहले तो कृष्ण अभक्तों को नहीं दिया।

"उछलिल प्रेमवन्या चौदिके बेड़ाय।
स्त्री, वृद्ध, बालक युवा सकलई डुबाय॥"

चै० च० आ०—१-२-२५।

"किन्तु सबे एड़ाइल काशीर मायावादी"। काशी के मायावादी बड़े कठिन होते हैं, मरुभूमिसे भी अधिक नीरस होते हैं, वहां पर विलासका विरोध अपनेको पूर्णरूप से प्रकाश किया है। अन्यान्य मायावादीगण जड़ विलासके विरोधी हैं। किन्तु काशीके मायावादी चिद् विलासके विरोधी हैं। वे गौर प्रेमामृतमें डूबना तो दूर रहे उसका स्पर्शभी नहीं कर सकते हैं। वे निर्भेद ज्ञानी हैं।

भोगीका श्री महाप्रभुने इस रसको नहीं दिया है। ये भी दो प्रकार के हैं :—

जिह्वार लालसे येई इतिउति धाय॥
शिश्नोदर परायण कृष्ण नाही पाय।

चै० च० अ०—६-२-२१

जिह्वा लम्पट कृष्ण है। जिह्वा की लम्पटता उन्हींकी एक मात्र monopoly है जहां पर जितना ही नवनीत है जितनीही रसमयी, प्रेममयी अराधना के सार हैं वे वहीं उसको चुराकर खाते हैं वे "नवनीत तस्कर सुन्दर नन्दगोपाल" हैं। यही उनका स्वभाव है। दूधके साथ प्रेसकी उपमा दी जाती है। उस के मथनसे जो सार वस्तु निकलती है वही नवनीत है।

वे माखन चोर हैं। व्रजवासियोंकी प्रेमसेवा मन्थन करते २ जो सार वस्तु निकलती हैं—अर्थात प्रेम, स्नेह, मान, प्रणयराग, अनुराग प्रभृति ही नवनीत हैं। उस मखनके भोग करनेवाले मालिक एक मात्र वही हैं।

अतएव वे इधर उधर दौड़ते रहते हैं, वे चंचल और चपल हैं। चोर को कभी आलस्य नहीं आता। चंचलता चपलता वस्तु व्रजेन्द्रनन्दन की ही वस्तु तो है, अन्य की नहीं।

उनकी चोरीकी लीला कहां होती है? उनके ही गठनसे गठित सच्चिदानन्द सेवकगणोंके धाममें, जहां पर वे सेवकोंके द्वारा पराजित रहते हैं। ऐसेही सेवकोंके निकट वे इधर उधर दौड़ते हैं।

उनका अनुकरण करके मायाका दासत्व करनेके लिए जो जाते हैं उनको परिणामरूपमें शास्ति, दण्ड और बन्धन मिलता है। वे कृष्णको नहीं पाते।

श्री गौर सुन्दरने जो इतनी दया करके अपनी भक्तिकी शोभा दान दी वह नहीं मिली इन्हीं तीन प्रकारके जीवोंको।

जिह्वा लम्पट कृष्णको नहीं पा सकते, स्वयं कृष्णने ही इसको कहा है। जिन लोगोंने प्रतिज्ञा की है कि उदर उपस्थवेगको नहीं छोड़ेंगे उनके लिए श्री मन्महाप्रभुने अपनी भक्ति शोभा दान नहींकी है

"शिश्नोदर परायण"—यहां पर "परायण" शब्दका विशेष अर्थ किया है क्योंकि वेग तो सबका है।

लोके व्यवायामिष मद्य सेवा,
नित्यास्तु जन्तोर्नहितत्र चोदना।
व्यवस्थितिस्तेषु विवाह यज्ञ
सुरा ग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा॥

वेग, बद्ध दशा प्राप्त मायाके प्रभुत्वकी कामना करनेवाले जीवोंका नैसर्गिक शासन विशेष है। यह उनका second nature हो पड़ा है।

आठ प्रकारकी स्त्रीसंगलिप्सा एवं आमिष ग्रहण वा मद्यपान राजसिक और तामसिक व्यापार है। बद्धजीवके लिए रजोगुण स्वाभाविक है। उसमें मांस और मदिरा खाने पीनेकी जो प्रवृति है वह तामसिक है। इन सबोंसे निवृत्ति प्राप्त करना ही उचित है। विरजा वा रजोगुणका अतिक्रमण करना ही निवृत्ति है; यह सदा 'इष्टा'—शुभ देनेवाला है।

नैसर्गिक अवस्थामें पुरुष अभिमान रहनेके

कारण किसीको चाहे बाह्य आकारमें वह स्त्री हो वा पुरुष पुरुषोत्तमके अनुकरण करनेकी इच्छा प्रबल रहती है।

"संसारे आसिया, प्रकृति भजिया
पुरुषाभिमाने मरि ॥"

जीवको जो शिवत्व वा ब्रह्मत्व लाभ करनेकी दुराशा है वह महामायाके पदके नीचे पड़कर चूर्ण हो जाती है। जीव तो स्वभावतः ब्रह्मजातीय वस्तु है ही, और स्वरूपको प्राप्त किया हुआ जीव मायाजयी ही है। किन्तु उस स्वभाव के विपर्य होनेसे वह मायाके पैरके नीचे पड़ा हुआ है। उस समय उसको रुद्र अभिमान भवानीके भर्ता होनेका अभिमान होता है। यह अवस्था अत्यन्त खराब है। स्त्रीसंभोग और सत्यसेवा अप्राकृत कामदेवका ही केवल अधिकार अर्थात monopoly है। इस बातको जो अस्वीकार करते हैं; जो शिष्णोदर परायण हैं अर्थात इन चीजों ही को जो परम आश्रय समझते हैं उन लोगोंने गौर सुन्दरकी कृपा नहीं पाई है।

स्त्री सम्भोगके सम्भोगके प्रति बद्धजीवकी नैसर्गिक प्रवृत्ति रहती ही है। सब उपर जो बातें कही गई हैं वह शिष्णोदर परायण जिनको उसके छोड़ने की इच्छा नहीं है उनकी ही बातें हैं। बद्धजीवको इन सब भोगोंकी स्पृहा रहने पर भी उसके छोड़नेकी चेष्टा नहीं तो कम से कम लालसा रहनेकी आवश्यकता है। जिन लोगोंने इसको छोड़ दिया है वेही वैष्णव हैं। स्वयं गौरकृष्ण कहते हैं कि इस प्रकार जिह्वा शिष्णोदर लम्पट होनेसे कृष्णको नहीं पावेंगे।

जो लोग कामको चरम आश्रय बनाना नहीं चाहते वे लोग क्रमशः अच्छे होते जाते हैं। किन्तु 'शिष्णोदर परायण' अर्थात सम्भोगको नित्य चलाता ही रहूंगा ऐसा इच्छा करने वाले उन्नति नहीं करते। इसका कारण यह है कि चौर्य्य; लाम्पट्य, चंचलता अप्राकृत कामदेव का ही केवल अधिकार अर्थात् monopoly है। अतएव ये सब गुण और किसी का हो नहीं सकता। इस अप्राकृत कामदेवका दूसरा कोई प्रतिद्वन्दी हो नहीं सकता है। जो कृष्ण का प्रतिद्वन्द्वी होनेकी चेष्टा करेगा वह प्रकृतिका दास होकर नरकगामी होगा। चौर्य, लाम्पट्य इत्यादि कार्य्य जगतके लिए हेय और जघन्य हैं। किन्तु जो इन सब व्यापारोंके मूलआकर वा बिम्ब हैं वह अप्राकृत परम चमत्कार और उपादेय हैं। वह अद्वयज्ञानके स्वरूपकी अनुबंधी होनेके कारण हेय नहीं हैं, इसीलिए वह अद्वज्ञान वस्तु निर्दोष हैं; निर्दोषका आकर विधि निषेधके अतीत हैं। वह उनके सम्बंधमें अच्छे और बुरे होने का कोई प्रश्न नहीं आता।

ये षड्वेग जिनके वश हो गए हैं वे ही धीर वा धैर्य्यशील हैं। धीर ही कवि, पण्डित, सुखी, भक्त और साधु होते हैं। उनका ऐसा सामर्थ्य है कि वे समस्त पृथ्वी को शिष्य कर सकते हैं।

जो लोग लीला पुरुषोत्तम गोविन्द वा गौरकृष्णके नाम धाम और कामकी सेवामें निरत और संरत हैं वे ही श्रीरूप गोस्वामी प्रभुके अभिन्न और उनके अनुगत वृन्द हैं। उपदेशमात्रके पानेकी इच्छा होनेसे इन षड्वेगोंको कृष्णोन्मुख करके उनके सेवा बिलासके वर्धनके लिए उनका नियोग करके उनको कृष्णाभिमुख करनेकी आवश्यकता है। जो ऐसा करते हैं वे ही गोस्वामी और गुरु हैं। गो, पृथ्वी, इन्द्रिय, श्रुति अथवा गो का अर्थ कृष्णेन्द्रिय सुखवांछा है, जिसको वह है वे ही गोस्वामी हैं। यही

उपदेशामृतकी परमहंस गीता है। इस गीताके प्रथम श्लोकमें भी यही बात है। सारासार और विवेकीगणों की बातें भीष्म ने कही है। परमहंसों की कथा जीवात्मा के स्वभाविक धर्म्मकी बातें, क्या करनेसे जीव सर्वोतम कृष्णसेवा प्राप्त कर सकता है इन्हीं सब बातोंकी शिक्षा श्रीरूप गोस्वामी प्रभुने दी है।

(२)

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः ।
जनसंगश्च लौल्यञ्च षड्भिर्भक्ति विनश्यति ॥

जो लोग पारमार्थिक पथके पथिक हैं उनके लिए पहले विधि फिर राग यही पथक्रम है। छः दोषोंसे छुट्टि पाना होगा। श्री भक्तिविनोद वाणी वैभवमें इसकी विस्तृत आलोचना की गई है। इसके विषयमें मैं कुछ अधिक नहीं कहना चाहता हूं।

पहले श्लोकमें गुरु, प्रकृत साधु, त्रिदण्डी और गोस्वामियोंका निर्देश किया है।

इसके बाद छः दोष ऋण जातिय है। धन जातिय वस्तुओंका निर्देश नीचे लिखे श्लोकमें किया है—

(३)

उत्साहान्निश्चयाद्धैर्य्यात्
तत्तत् कर्म्म प्रवर्तनात् ।
सङ्ग त्यागात् सतोवृतेः
षड्भिर्भक्ति प्रसिध्यति ॥

ये Positive गुण हैं केवल ऋणपरिशोधसे ही नहीं होगा धन भी इकट्ठा करना होगा। श्री भक्ति विनोदवाणी वैभव ग्रन्थमें इसकी विस्तृत व्याख्या पाई जायगी।

छः प्रकार की प्रीति का नाम संग है केवल बाहर-से मिलने जुलने को संग नहीं कहते। आसक्ति नहीं होनेसे संग नहीं होता। गाड़ी, सवारी अतिथिशा-लाओंमें परस्पर साक्षात होता है इस समय यदि प्रीति आसक्ति वा रुचिपैदा होवे तभी संग हो सकता है नहीं तो नहीं। प्रीति किस तरह का होता है?

(४)

ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति ।
भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधम् प्रीति लक्षणम् ॥

प्रतिगृह्णाति का अर्थ वसूल करना। देना और लेना गोपनीय बातें कहना और जिज्ञासा करना, भोजन करना और कराना यही छः प्रकार का क्रिया-ओंमें आसक्ति रहने से संग होता है। साधुके साथ यदि यह छः प्रकार की क्रिया हो तबतो मंगल, नहीं तो नरक प्राप्त होता है। जनसंग वा बहिर्मुख संग करनेसे मृत्यु और साधुके सङ्ग करनेसे अशोक अभय, अमृताधार गौर कृष्ण वा श्रीरूपके पाद पद्मोंका आश्रय लाभ होता है। क्रमपंथाको अवलम्बन करनेसे वैष्णव पदवी तक किस प्रकार पहुंच सकते हैं?

(५)

कृष्णेति यस्य गिरितं मनसा द्रियेत ।
दीक्षास्ति चेत् प्रणति भिश्च भजन्तमीशम् ॥
शुश्रूषया भजन विज्ञमनन्य मन्य ।
निन्दादि शून्य हृदयमाप्सित संग लब्ध्या ॥

साधु कितने प्रकारके हैं? साधु कौन हैं? उनके प्रति किस प्रकार का व्यवहार करना उचित है?

जिसके मुखमें "कृष्ण इति" एकबार कृष्णनाम बिराजमान होते हैं वही कनिष्ठ अधिकारी है। "दीक्षास्ति चेत" अर्थात यदि उनकी दीक्षा हुई है दीक्षा क्या है?

दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्य्यात् पापस्य संक्षयम् ।
तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता देशिकैस्तत्व कोविदैः ॥

गुरु प्राप्त होनेसे कृष्णनामही का आश्रय करना कर्त्तव्य है उसको वे समझ सकते हैं किन्तु उनका नाम ग्रहण निरन्तर नहीं होता ।

कीर्त्तनकारी वैष्णवकी किस प्रकारकी अवस्था होती है वे नहीं जानते । ऐसों को कनिष्ठ-अधिकारी कहते हैं । कनिष्ठ अधिकारी का भजन नहीं होता पूजा तक हो सकती है । अर्थात् विलासोपकरणके साथ अपराध विलासी वस्तुका भजन नहीं है । उसका सम्बन्ध ज्ञान अभी ठीक नहीं हुआ है ।

कनिष्ठ अधिकारीका [illegible] वे क्रमशः अनर्हद् हो जायेंगे [illegible] विचारकी ओर उनकी दृष्टि [illegible] मध्यम अधिकारी हो जायेंगे ।

तदीयगण तत्त्वकी धारणा उन्हें नहीं है, परन्तु वे नामाश्रित और अर्चाश्रित कनिष्ठ वैष्णव हैं । जहां पर विलासोपकरण तत्त्वविहीन केवल विष्णु तत्त्वज्ञान हैं वहां पर तदीय का विचार नहीं है । वह असम्पूर्ण है । वे साधुता या भक्तिके तारतम्यको नहीं समझते और उनके व्यवहारमें भी गलतियां हैं ।

जिसको लेकर विष्णुका विलास है उसको निकाल देनेसे केवल ब्रह्मत्व बाकी रह जाता है । जो विष्णुको विलास कराते हैं वे ही साधु हैं । इस विषयमें जिनको विचार प्राप्त नहीं है वे कनिष्ठ हैं । वे यदि तदीय विचार, नाम कीर्त्तनकारी के विचार अथवा अनुकरण को बाद देकर केवल अर्चानिष्ठ हो जायं तो वे तुरन्तही दाम्भिक हो जायगें, और उनका पतन [illegible] होकर वे एक जगह ठहर नहीं सकेंगे ।

वे पञ्चोपासक स्मार्त हो जायेंगे नहीं तो पहले संशययुक्त होकर नास्तिक हो जायेंगे या सगुन फिर निर्गुण ब्राह्म वा मायावादी हो जायंगे ।

मंगल वा भगवत कृपा लाभ होनेसे क्रमशः तटस्थ वा निर्गुण होते हुए क्लीव, पुरुष, मिथुन, स्वकीय, परकीय, बहुवल्लभ [illegible] प्रतिष्ठित हो जाते हैं । यही है भक्ति की उन्नति वा अवनतिके स्तर । यदि तदीयका विचार नहीं है तो क्रमशः दाम्भिक होकर विलास विरोधी हो पतित हो जायंगे ।

विग्रहको विशेषरूपसे ग्रहण करनेका विचार जिसको नहीं है वे विग्रहके विलासके विरोधी होकर पहले संशयवादी फिर नास्तिक हो जायंगे । साधु सावधान !

फिर कहा है ''भजन्तमीशप'' सपरिकर इशं भजन्तप'' विग्रह विलासी है । वे क्या ग्रहण करते हैं ? उत्तर है 'रस' । जो उसके सामान ठीक कर देने वाले हैं वे तदीय हैं ।

जो उसके है उनमें निरन्तरता है उनको प्रणति करनी चाहिए ।

परीक्षा

यदि हरिजनमें कपटता रहे, तो बाहरसे अतिशय अनासक्ति, विरक्ति और अन्य सात्विद प्रकाश करे भी तो वह प्रकृत भाव वा वैराग्य नहीं है । हरि-भजनमें यदि अकपट मतिगति रहे, तो हरि भक्तिके प्रतिकूलवस्तुके प्रति अनासक्ति, विरक्ति प्रभृति आपसे आप आ जाती हैं । जिसमें हरिभजनमें अनुराग वृद्धि हो ऐसी चेष्टा करनी चाहिये । हम-लोग जो कोई सेवा कार्य करें, उसमें हमें देखना

चाहिये हरि, गुरु और वैष्णवमें अनुराग दिनोंदिन वृद्धि हो रही है कि नहीं। यदि ऐसा ज्ञात हो कि गुरुवैष्णव, और भगवानके चरणोंमें अनुरागकी उत्तरोत्तर वृद्धि होनेके बदले उनका ह्रास हो रहा है, अपनी दीनता, और अयोग्यताके कारण गुरुवैष्णव-सेवा प्राप्त करनेके लिये पिपासा वर्द्धित न होकर पहलेकी तरह सुखमें आराममें दिन बीतता जा रहा है, अयोग्य सेवकाभिमानके बदले कर्त्ताभिमान हृदयमें जाग रहा है। ऐसी हालतमें समझना होगा कि मेरे भीतर अनर्थ बढ़ रहा है, मेरा आचरण शिथिल होता जा रहा है। मैं जो कर रहा हूँ, उससे गुरुवैष्णवको सुख हो रहा है कि नहीं इसकी प्रत्येक मुहूर्त्तमें परीक्षा करनी आवश्यक है। यदि गुरुवैष्णवको सुख नहीं हुआ तो कहां त्रुटी हुई है उसकी तीव्र दृष्टिसे परीक्षा करनी होगी। उसमें उदासीन होनेसे मङ्गल प्राप्त नहीं होगा। जगतके विचारमें प्रसन्न होकर मूल उद्देश्य श्रीगुरुवैष्णवकी सुखानुसन्धान स्पृहाको विपथ भूल जानेसे सुविधा नहीं होगी। रज और तमोगुणको चेतनता बहुत देर तक नहीं रहती। श्रीगुरुवैष्णव भगवानकी अहैतुकी कृपासे हमलोगोंमें बहुतेरे सर्वोत्तम श्रेय-पथकी कथा थोड़ा बहुत जान सके हैं। अनेक अन्याय, अत्याचारों बाधाओं, और विपत्तियोंमें भी अभीतक सद्गुरुपादपद्म नहीं छोड़ा या छोड़नेकी वासना एकबार भी हृदयमें उदय नहीं हुई। यही भगवानकी अपार करुणा है। किन्तु मुझ कृपार्थीकी यही तो शेष कथा नहीं—करुणा प्राप्त करनेका यहीं तो अन्त नहीं है। करुणामयकी करुणा सर्वदा करुणाकांक्षी लोगोंके ऊपर बरसा करती है। गुरु वैष्णव-भगवान की ओरसे मेरे ऊपर यथेष्ट कृपा बरस रही है; किन्तु मैं उस कृपाको प्राप्त करनेके लिये कितना यत्न कर रहा हूं? वर्त्तमान विषम समस्यामें भी गुरुपादपद्म नहीं छोड़ा यह सत्य है, किन्तु वह हृदयमें धारण करनेकी—गुरुतत्व उपलब्धि करनेके लिये क्या यत्न करता हूं? यदि गुरुतत्व की उपलब्धि होती, गुरुदेव ही एकमात्र रक्षाकर्त्ता पालनकर्त्ता हैं इस तरह हृदयमें उसकी उपलब्धि कर सकता, तब फिर मुझे कोई भय नहीं रहता, विपद देख कर आकुल नहीं होता। श्रीगुरुपादपद्म प्रदत्त औषधि, सुपथ्य और व्यवस्थाको अकपट होकर पालन करनेसे ग्रहण कर सकनेसे अनर्थरोग निश्चय ही दूर होता है। किन्तु मैं वह सम्पूर्णरूपसे क्या ग्रहण कर सका हूं? उनका आदेश है—"सभी एक हरिभजनके उद्देश्यसे इस दो दिनके अनित्य संसारमें किसी प्रकारसे जीवन निर्वाह कर चलेंगे। सैकड़ों बाधा विपत्तिओंमें भी हरिभजन नहीं छोड़ेंगे। संसारके अधिकांश व्यक्ति अकैतव कृष्णसेवाकी कथा ग्रहण नहीं कर रहे हैं यह देखकर निरुत्साहित नहीं होंगे, निज-भजन, निज-सर्वस्व कृष्णकथा श्रवण कीर्त्तन नहीं छोड़ेंगे। तृणसे भी सुनीच और तरुके समान सहिष्णु होकर सर्वदा हरिकीर्त्तन करेंगे।" किन्तु मेरी हरिकथा-श्रवण-कीर्त्तनमें रुचि कहां है? उनका आदेश है—एकमात्र हरिकथा श्रवण कीर्त्तन करना। किन्तु मैं चौबीस घण्टोंमें के घण्टे हरिकथा-श्रवणकीर्त्तन करता हूं यह एक बार विचार करके देखना क्या उचित नहीं है? मठमें रहकर गुरुके अनुगत रहकर, यदि गुरुपादपद्मका आदेश जिस आदेशमें मेरा परममङ्गल है, वह आदेश पालन नहीं किया, तब मेरा मङ्गल किस प्रकारहोगा? उनका आदेश-उपदेश पालनमें सभी प्रकारसे यत्नवान नहीं रहनेसे हमें अनर्थके प्रबल आक्रमणसे वे क्यों बचावेंगे? हमलोग निजभजन, निज-सर्वस्व हरिकथा

श्रवणकीर्त्तन छोड़ देते हैं अतः गुरुपादपद्मके आदेश उपदेशके प्रति उदासीन होकर अपने मनगढ़े (मनमाना) हरिभजनके पथमें चलना आरम्भ करते हैं। इसलिये गुरुवैष्णव लोगोंके सङ्गसे बहुत दूर छूट जाते हैं।

विविध-संवाद

परमहंस श्रीश्रील गौर किशोर दास बाबाजी महाराज की अप्रकट तिथि पूजा :—

श्रीमायापुर में

गत २२ नवम्बर बुधवार उत्थानैकादशीतिथिको ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रील गौर किशोरदास बाबाजी महाराजका विरह महोत्सव परमाराध्यतम श्री श्रील आचार्यदेवके कृपाआर्शीवादसे श्री चैतन्य मठमें ब्राह्ममुहूर्तसे रात १० बजे तक पाठ, कीर्त्तन, वक्तृता, नगरसंकीर्त्तन और हरिकथा आलोचना सुचारुरूपसे सम्पन्न हुए।

दूसरे दिन २३ नवम्बरको श्री श्रील बाबाजी महाराजके सुसज्जित आलेख्यके सम्मुख एक विराट् सभाका अधिवेशन हुआ। गुरु-वैष्णव बन्दना महाजनपदावली और परम गुर्वष्टक कीर्त्तनके बाद श्रीपाद अघदमन ब्रह्मचारी भक्ति सर्वस्व, भक्तिशास्त्री प्रभुने श्रीगुरुतत्व एवं श्रील बाबाजी महाराजके अतिमर्त्य चरित्रके सम्बन्धमें एक वक्तृता दी सन्ध्यारात्रिकके बाद श्रीपाद किशोरीमोहन प्रभु वैष्णव-महिमा और श्रील बाबाजी महाराजके संबंध में प्रायः डेढ़ घण्टा तक एक वक्तृता प्रदान किया। फिर महाजन पदावली कीर्त्तन के बाद सभा भङ्ग हुई।

उसके बाद समागत बहु सज्जनवृन्दको विचित्र महाप्रसाद वितरण किया।

पटना में

गत २२ नवम्बरको पटना श्रीगौड़ीयमठमें भी वर्तमान गौड़ीय वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रसाद पुरी गोस्वामी ठाकुर के आनुगत्यमें परमगुरुदेव ॐ विष्णुपाद परमहंस अवधूत-कुलचूड़ामणि श्रीश्रील बाबाजी महाराजकी अप्रकट-तिथि पूजा हरिकथा कीर्त्तन द्वारा सम्पन्न हुई।

ब्राह्ममुहूर्त्तमें श्रीश्री गुरुगौराङ्गविनोद गोविन्दानन्दजीके मङ्गलारात्रिक और कीर्त्तनके बाद परम-गुरु 'श्रीगौरकिशोर' नामक ग्रन्थ पाठ हुआ।

सन्ध्यारात्रिक तुलसीमञ्च परिक्रमा तथा महाजन पदावली कीर्त्तनके बाद श्रीपाद मुकुन्द माधव ब्रह्मचारीजीने श्रीश्रील गौर किशोर प्रभुकी अप्रकट-लीला और उनके उपदेशामृतका पाठ और उसकी व्याख्या की। पुनः महाजन पदावली कीर्त्तन हुआ। सभामें बहुतसे भद्रमहोदय और महिलावृन्द उपस्थित थे।

दूसरे दिन सन्ध्यारात्रिकके बाद श्रीमठके श्रवण सदनमें एक सभाका अधिवेशन हुआ। गुरु वैष्णव बन्दना और कीर्त्तनके बाद ब्रह्मचारीजीने श्रील गौर-किशोर दास बाबाजी महाराजकी उपदेशावली पाठ और व्याख्या की। पाठके आदि और अन्तमें महाजन पदावली और महामन्त्र कीर्त्तनके बाद सभा भंग हुई। इसके बाद उपस्थित श्रोतृमण्डलीमें महाप्रसाद वितरण किया गया।

SREE KRISHNA CHAITANYA

BY PROF. N. K. SANYAL, M. A.

Late Senior Professor of History, Ravenshaw College, Cuttack.

A rational, scientific and comprehensive study, based on the SHRAUTA PATH, **with a highly appreciative foreward by His Divine Grace Parmahansa Srimad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami with an Introduction containing full information for following the narrative of events, as well as with an Index and a Glossary Royal 8 vo, 800 pages,** handsome calico jacket—Price Indian Rs 15/- ; Foreign 21 s. nett.

To be had at SREE GAUDIYA MATH, Baghbazar, Calcutta.

SREE BRAHMA SAMHITA (Fifth Chapter)

With commentary by Sri Jeeva Goswami and translation and purport in English by His Divine Grace Sreemad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami.

First class calico binding—Rs 2-8-0.

RELATIVE WORLDS

A lecture delivered on the 28th August 1932 at the Saraswati-Assembly Hall of Sree Gaudiya Math, Calcutta by His Divine Grace. Ans 0-6-0.

A few words on Vedanta by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

The Vedanta its Morphology and ontology by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

THE BHAGBAT

Its Philosphy, Its Ethics and its Theology New enlarged edition with an appendix by Srila, Prabhupad. Full calico bound—Rupee One. Thick, paper bound—Twelve Ans.

(बंगलामें)

श्रीमद्भागवतम्

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास—प्रणीत मूल, श्रीमन मध्वाचार्यकृत तात्पर्य निर्णयटीका, श्रीमद् विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर-कृत सारार्थदर्शिनी टीका, बंगानुवाद, संस्कृत अन्वय व प्रतिशब्द, तथ्य व विवृत्यादियुक्त। प्रति स्कन्धके आरम्भमें उस स्कन्धका प्रतिपाद्य कथासार, प्रत्येक अध्यायके प्रथममें उस अध्याय सारके साथ सुविस्तृत तात्पर्यादि विवृत है। श्लोकसूची, विषयसूची अध्याय-विवरण, पत्र व स्थान—सूचीके साथ उत्तम कागजपर उत्तम अक्षरमें मुद्रित। प्रथमसे १२वां स्कन्धतक छपा सम्पूर्णरूपसे शेष हो गया है। भिक्षा प्रथमसे १२वां स्कन्धतक ४०), १०म स्कन्ध सम्पूर्ण बिना बंधा हुआ ८) और कपड़ेकी बंधाई ६) मात्र।

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

श्रील कविराज गोस्वामीकृत। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर रचित 'अमृतप्रवाहभाष्य' व श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी-प्रभुपाद-लिखित 'अनुभाष्य' श्रुति स्मृत्यादि अनेक शास्त्र प्रमाणके साथ प्रकाशित हुए हैं। श्लोककी सान्वय व्याख्या, बंगानुवाद व प्रत्येक पयारके पूर्व संक्षिप्त अभिधेय संयोजित है। प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें उसी अध्यायका कथासार लिखा हुआ है। श्लोक, पयार, शब्द, स्थान, पात्रका सुबृहत सूची व ग्रन्थकारकी विस्तृत जीवनी—समन्वित इस तरहका अभूतपूर्व संस्करण इसके पहले कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ है। उत्तम कागजपर सजावटके साथ मोटे अक्षरमें मूलांश मुद्रित हुआ है ग्रन्थ प्राय १५०० पृष्ठमें सम्पन्न हैं। भिक्षा बिना बंधा हुआ ६) कपड़ेकी बंधाई ७) मात्र।

श्रीचैतन्यभागवत

श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचित गौड़ीय भाष्यके साथ ग्रन्थका आयतन—क्राउन ४ पेजी मूल १०१६ पृष्ठ, सूचीपत्र २४४ पृष्ठ—कुल १२६० पृष्ठ भिक्षा—६)मात्र (बिना बंधा हुआ)।

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है । प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है । इसलिये प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रावलीका पाठ करनेका अनुरोध करते हैं ।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ नैतिक अवस्था, शिक्षा, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगत्की अवस्था, समसामयिक पृथ्वीकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व तथ्य और प्रमाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भावमें साधारणके पढनेके योग्य वर्णन किया गया है । ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं । सुन्दर जिल्द भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा । भिक्षा ३) । प्राप्तिस्थान—श्रीगौडीयमठ, पो० बागबाजार, कलकत्ता । श्रीमाध्वगौडीयमठ, पो० वोयारी, ढाका ।

सरस्वती जयश्री

गौडीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवनके मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है । निर्मत्सर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे । वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें एण्टिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें । विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं । भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौडीय

सामयिक संख्या [illegible] चित्र [illegible] अनेक [illegible] तथ्यपूर्ण [illegible] हुये हैं । [illegible] इसको सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा ।।० आना ।

ठाकुर भक्तिविनोद

[illegible] ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला [illegible] मुद्रित । भिक्षा ।।) [illegible] बागबाजार । श्रीगौडीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौडीय मठ

अणुभाष्यम्

चार अध्यायों [illegible] अधिकरण [illegible] टीकाकारोंसे बहुत संक्षेपमें बना हुआ । [illegible] संस्करण । पहले [illegible] विरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति [illegible] सूत्र समूह, अणुभाष्य मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्त्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है । इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्रभी संयोजित हुआ है । भिक्षा २) मात्र ।

Printed by :—Mukunda Madhab Das Brahmachari, at the Ramesh Printing Works
and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

Regd. No. L. 408

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

वर्ष ५ अङ्क—१२

भागवत

एकमात्र पारमार्थिक मासिक पत्र

गौराब्द ४५४	पौष कृष्ण ११	सं० १९९६ वि०

सवै पुंसां परोधर्मोयतोभक्तिरधोक्षजे।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति॥

जिसमें इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्ण में श्रवणादि लक्षण फलाभि-
-सन्धान रहित एकान्तिकी और स्वाभाविक निरपेक्ष
भक्ति उदित होती है, वही मानव जाति का
सर्वश्रेष्ठ धर्म्म है उसी भक्ति के
बल से अनर्थ शमन होने
पर आत्मा प्रसन्नता
लाभ करती है

सम्पादक—
पं० श्रीपाद रूपविलास ब्रह्मचारी
भक्तिशास्त्री B. A.

वार्षिक
भिक्षा ३)

उद्देश्य

शुद्ध भगवद्भक्ति का प्रचार करना

—प्रबन्ध सम्बन्धी—

[१] यह पत्र प्रति पंचमी कृष्ण को प्रकाशित होता है।

[२] इस पत्र की डाक व्यय सहित वार्षिक भिक्षा १) है।

[३] इस पत्र में किसी प्रकार का विज्ञापन वा समालोचना नहीं छापी जाती।

लेख सम्बन्धी

लेखक महानुभावों को केवल भागवत धर्म्म सम्बन्धी लेख ही इस पत्र मे छापने के लिए सम्पादक के पास भेजना चाहिए। लेख के छापने या वापस करने का अधिकार केवल सम्पादक को है। डाक व्यय भेजने से लेख लौटा भी दिए जा सकते है।

बदले में भेजे जाने वाले पत्र सम्पादक के पते से भेजना चाहिए।

सम्पादक,—भागवत, श्री गौड़ीय मठ, रमणा, गया।

या

अखौरी कृष्ण प्रकाश सिन्हा पो० औरंगाबाद, [गया]।

All communications are to be addressed to:—

Manager,

"BHAGWAT"

SRI GAUDIYA MATH: Ramna, Gaya.

or

A. K. P. SINHA, P. O. Aurangabad, Gaya.

श्री श्री गुरु गौराङ्गौ जयतः

भागवत

एकमात्र पारमार्थिक मासिक पत्र

वर्ष ४ पौष व माघ १९९६ सं० जनवरी १९४० संख्या

गान (भैरवी)

प्रभु हो ऐसे दिन कब अइहौं।

गौरधाम सुरधुनी तट पै कब छाँड़ि देह सुख, जइहौं ॥
लता विटप डारन के नीचे रोइ रोइ निन पछितइहौं ।
हा राधे ! हा कृष्ण कृष्ण कहि विकल पुकार मचइहौं ॥
खाइ कबहुँ स्वपच गृह भिक्षा सरस्वती पय पइहौं ।
कृष्ण कृष्ण कहि पुलिन पुलिन तट लोटी जन्म बितइहौं ॥
व्रजवासिन की कृपा लेश कब नत होइ याचन करिहौं ।
होई अवधूत चरण-वैष्णव-रज कब सुख सो सिर धरिहौं ॥
गौर धाम औ व्रज कानन में जबहि भेद नहीं लइहौं ।
ह्वै दासी राधा रानी की सबही आनत सुख पइहौं ॥

उपदेशामृत

[गताङ्क से आगे]

इसके बाद कहते हैं भजन विज्ञ, अर्थात जिसने भजन के विषय में विशेष रूप से ज्ञान लाभ किया है केवल वही सेवा में प्रतिष्ठित है। जो एकान्तिक हैं; केवल भक्ति परायण हैं वे अन्य निन्दादिशून्य हृद्यादिपिरत सङ्ग लब्धा हैं उनके हृदय में दूसरे की निन्दा स्तुति नहीं है।

अपने इन्द्रियों के भोगरूप से वे किसी पदार्थ को नहीं देखते इसी कारण से वहाँ पर प्रशंसा या निन्दा नहीं है।

"पर स्वभाव कर्म्माणि, न प्रशंसेन्नगर्हयेत।
विश्वमेकरूपं पश्यन प्रकृत्या पुरुषेण च॥"

उनको पर बुद्धि नहीं है अर्थात केवल भक्ति मे प्रतिष्ठित होने के लिए भोगबुद्धि नहीं चाहिए। उनका हृदय हरि सम्बन्धि वस्तु के संग में सजातीयाशयविशिष्ट है ऐसे ही हृदय भगवद्धाम है।

उनके निकट कृष्णकीर्तन श्रवण [शुश्रूषा] करना होगा अथवा शुश्रूषा अर्थात परिचर्य्या (Menial service.) करनी होगी। इस प्रकार की सेवा करने से मंगल होगा।

इसको इप्सित संग समझकर प्राप्त करना होगा। यदि भजन में उन्नति चाहते हो, उन्नतिकारीगणों का सङ्ग चाहते हो; इष्टदेवता श्रीकृष्णचन्द्र का पाद-पद्म चाहते हो तो इन्हीं तीन प्रकार के भक्तों का सङ्ग करना कर्त्तव्य है। किंतु दर्शन किस प्रकार का होगा? यदि उनमें कुछ शारीरिक दोष हो तो इसका समाधान करते हैं:

६]

दृष्टैः स्वभावजनितैर्वपुषश्च दोषैर्न
प्राकृतत्वमिह भक्तजनस्य पश्येत।
गङ्गाम्भसां न खलु बुद्बुद फेन पङ्कै-
र्ब्रह्मद्रवत्वमपगच्छति नीर धर्म्मैः॥

सभी श्री रूपानुग भक्त सम्प्रदाय के लोगों को प्रभु कहते हैं। और जितने सम्प्रदाय हैं वे लोग गुरु के सेवक को मान्य नहीं मानते हैं। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर ने सिखलाया है कि जो आश्रित है उनमें आश्रय ज्ञान करना होगा। अमानी होकर मान देना होगा क्योंकि उन लोगों ने तो गुरु के उपदेश का आश्रय लिया है किंतु मुझ से तो वह भी नहीं हो सका है।

गुरुवरों ने सिखलाया है कि उनको भी "प्रभु" कहो, तुच्छ समझकर अपमान मत करो, अनादर भी मत करो। प्राकृत सहजिया मत के माननेवाले कितने अपसम्प्रदाय वाले तर्क करते है कि सब किसी को "प्रभु" क्यों कहें।

श्रीमद्भक्तिविनोद के अनुगतों का ऐसा विचार नहीं हैं। प्रभुपाद सब किसी को प्रभु कहते थे, वे गुरुदेव होकर भी क्या कनिष्ठ अधिकारी को भी बाबाजी महाराज के समान समझते थे! यह क्या apotheosis है?

जिन सबों ने मंत्र ग्रहण किया था उनको वे "प्रभु" कहते थे, प्राकृत को अप्राकृत कहते थे, यह क्या apotheosis नहीं है?

"किंतु तोमार-वैष्णव, वैभव तोमार," वैष्णव गुरुदेव के वैभव हैं। कनिष्ठ अधिकारी जिन लोगों ने वैष्णवता की ओर यात्रा आरम्भ की है वे भी तुम्हारी ही वैभव हैं।

"तोमार-वैष्णव" में वैष्णव को यहां पर वैभव कहा है जड़ को नहीं। प्राकृतभूमि को वृन्दावनभूमि नहीं कहते।

कनिष्ठ भी स्वरूप से कृष्ण के नित्यदास हैं अतएव गुरु हैं। गुरु के सेवक भी अपने लिए मान्य हैं। आप अमानी तृणादपि सुनीच होकर इस प्रकार मानते हैं कि वे अज्ञी और गुरु अज्ञ हैं और मैं उनका सेवक हूं। जहां पर गुरुदर्शन है वहां पर जड़ का विचार नहीं है। बालिशों का भी वे मङ्गल चाहते हैं बालिश लोग तदीयज्ञान से अनभिज्ञ हैं उनको अद्वज्ञान के विषय में सिखलाना जरूरी है।

नामाश्रय के प्रति जिसकी जितनी रुची की गाढ़ता है उसको दूसरों के बीच में प्रकट कराने की उतनी ही चेष्टा है।

बालिशों के प्रति दया करके उसको तदीयत्व का सुन्दर ज्ञान देने की चेष्टा करना ही प्रकृत-उपकार करना है। इस प्रकार चेष्टा करके उनके गुरुत्व को प्रकट करने की चेष्टा प्रकृत-वैष्णवों में ही देखी जाती है।

"जीवे सम्मान दिबे जानि कृष्ण अधिष्ठान" प्रत्येक जीवात्मा भगवद्धाम है। जीव उसके ही हैं अतएव गुरु हैं, वे भगवान् के विलास के क्षेत्र हैं और उसके उपकरण हैं इसलिए वे गुरु भी हैं। सबों के गठन में ही यह योग्यता और धर्म छिपे हुए हैं। इसी को प्रकट करना ही श्रीगुरुदेव का कार्य्य है और यह होता है श्रीकृष्ण संकीर्त्तन के द्वारा, इसी संकीर्त्तन की पुरोहिताई ही गुरुदेव का कार्य्य है।

"यारे देखे तारे कह कृष्ण उपदेश।"
"आमार आज्ञाय गुरु हञा तार एइ देश।"

श्रीगुरुदेव का विचार है कि ये जीव कृष्ण-योग्य हैं इन्हें कृष्ण के पादपद्म में पहुंचा देना मेरा काम है वे कृष्ण योग्य हैं अतएव मेरे गुरु हैं।

इसी प्रकार योगत्व का प्रकट करना गुरुदेव का कार्य्य है। तटस्थ दर्शन में परमात्मदर्शन एवं भेदाभेद-दर्शन में ब्रह्मदर्शन है। नित्य कृष्णदास दर्शन में भगद्भाव दर्शन है। तटस्थ जीव अपने को तटस्थ वा भेदाभेद दर्शन कर सकते हैं। किन्तु हमलोगों का प्रयोजन कृष्ण दासत्व प्राप्त करना ही है। जो कृष्णदास हैं वे ही हमारे गुरु हैं। यहां पर तटस्थ दर्शन नहीं है बल्कि अपने को आश्रय-भेदांश और शिष्य में शुद्ध जीवात्मरूप गुरु-दर्शन होता है।

प्रत्येक को गुरु रूप से दर्शन करने की चेष्टा ही सेवा है। आचार्य्य सब को गुरु-बुद्धिकारी अतएव निरभिमानी और मानद हैं।

स्वभाव के धर्म्म में जो वैष्णवत्व है उसको शिष्यसूत्र में अपने गुरुपादपद्म के साथ मिलन कराना ही शिष्य का एकमात्र धर्म्म है

इस मिलन में स्तरभेद है यथा आदर प्रणति, और शुश्रूषा। गुरु के सहित मिलन कराकर कृष्ण के साथ मिलन करना ही सेवा है। वैष्णव का प्राकृत-दर्शन नहीं किया जाता उनमें वपुगत दोष भी नहीं है। कवि जिस समय गङ्गा या तुलसी की आलोचना करते हैं उस समय पङ्क या काठ अथवा काठ का विचार नहीं करते. माता के गोद में जिस समय बच्चा रहता है उस समय माता की नग्नावस्था की चिन्ता वह नहीं करता। इसी प्रकार के जगत के गुरु या पिता के शारीरिक दोष नहीं देखे जाते।

गङ्गा के जल में बुद्बुद फेन और पङ्क रहते हैं। बुद्बुद सामयिक धर्म्म से उत्पन्न होते हैं चिन्मय वस्तु में वह किस प्रकार उत्पन्न हो सकता है।

बुद्बुद आदि तो प्रकृति के उपद्रव के प्रकोप से होते हैं। जलब्रह्म में फेन वा पङ्क कहां से आ सकता है। "प्रत्यक्ष के न बाध्यते" आध्यात्मिक कहेंगे कि प्रत्यक्ष से देखते हैं कि जड़धर्म्म वर्त्तमान है फिर वह अप्राकृत कैसे हो सकता है?

जैसे विष्णु हैं उनका पादोदक भी वैसा ही है। जल के धर्म्म में बुद्बुद आदि रहता है। किन्तु इस प्रकृति के बनाये हुए धर्म्म के रहते हुए भी आदर करनेवाले सनातनधर्म्मावलम्बियों के लिए इस दोष का कुछ ध्यान नहीं रहता।

प्राकृतभक्त को कृष्ण वा गौराङ्ग के साथ मिलन कराने की चेष्टा होने ही से प्रभु के कीर्त्तन में अधिकार होगा। जहां पर उत्तमता और वैष्णवता प्रकाशित होती है वहां पर असद्धारना नहीं है. जिह्वा प्रशमित होती है जहां पर गौरनाम की भजन विज्ञता है, ऐसे लोगों की प्रतिष्ठा करनी होगी. वे हमारे गुरु हैं। जिस समय मेरी प्रवृत्ति-प्रणाम करने की, शिष्य होकर अनुकीर्त्तन करने की होगी उसी समय संकीर्त्तन रास में योग देने की मेरी योग्यता हो जायगी।

शिष्यरूप से अमानी मानदरूप से जो चेष्टा है इसी का नाम संकीर्त्तन रास योगदान देना है।

कनिष्ठ को आदर, निरन्तर नामपरायण को प्रणति और भजन विज्ञ की शुश्रूषा करनी चाहिए।

नाम में आठ भजनाङ्ग मिले हैं। इसलिए अभिज्ञ सुदर्शनवाले शास्त्रयुक्त सुनिपुण, दृढश्रद्ध भक्त की परिचर्य्या करने से संकीर्त्तन रास का अधिकार होगा।

यहीं तक विधि है। यहां तक सेवा की गति धीर है। इसके बाद acceleration फिर राग वा रुचि भक्ति के अभियान हैं।

[५]

रुचि रसना की चीज है। श्रीरूप रसिकमौलि हैं इसलिए उन्होंने रुचि, रसना प्रभृति शब्दों के व्यवहार किये हैं।

यहाँ तक steady वा slow progress है। यहीं से Velocity का आरम्भ होता है। आलोक की गति के समान सेवा की प्रगति आरम्भ हुई। क्रमशः।

कृष्ण और कृष्ण भजन

जगत में तीन प्रकार के पदार्थ देखे जाते हैं, इनके नाम हैं ईश्वर, चेतन और जड़। हमलोग: जिस वस्तु में इच्छा-शक्ति नहीं है उसे जड़ कहते हैं। जैसे मिट्टी, पत्थर, जल, अग्नि, वायु, आकाश, गृह, वन, शस्य, वस्त्र, शरीर इत्यादि ये सब इच्छाहीन वस्तु हैं।

मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग ये सब चेतन हैं। हमलोगों में इच्छाशक्ति और विचार-शक्ति है। मनुष्यों में जिस प्रकार की विचार-शक्ति है वैसी और किसी चेतन पदार्थ में नहीं है, इसी कारण से मनुष्य को सब चेतन और अचेतन पदार्थों का राजा कहते हैं।

ईश्वर समस्त चेतन और अचेतन पदार्थों का सृष्टिकर्त्ता है। उसको जड़ शरीर नहीं होने के कारण हमलोग देख नहीं सकते। वह परमस्वरूप और शुद्ध चेतन पदार्थ है। वह हमलोगों का सृष्टिकर्त्ता, पालक और नियन्ता है। उसकी इच्छा होने से हमलोगों का मङ्गल होता है। उसी की इच्छा से सर्वनाश हो जाता है।

वे भगवत-स्वरूप में स्थित होकर वैकुण्ठ-धाम में राज्य करते हैं, वे सभी राजाओं के राजा हैं। इनकी इच्छा से जगत के सभी काम होते हैं।

जड़ पदार्थ का जिस प्रकार एक स्थूल आकार होता है वैसा ईश्वर का आकार नहीं है, इसी कारण से हमलोग उसको जड़-इन्द्रियों के द्वारा देख नहीं पाते। इसी कारण से वह वेदों में निराकार कहा गया है।

परन्तु सभी पदार्थों का एक स्वरूप होता है, ईश्वर का भी एक स्वरूप है। जड़-वस्तु मात्र का स्वरूप जड़मय है। चेतन पदार्थ का स्वरूप चेतनमय है। हमलोग भी चेतन पदार्थ हैं किन्तु हमलोग जड़ शरीर विशिष्ट हैं, अतएव हमलोगों का चेतन स्वरूप जड़मयस्वरूप के बीच में छिप गया है।

ईश्वर विशुद्ध चेतनमय है अतएव उसको चेतनमय स्वरूप के अलावे और कोई दूसरा स्वरूप नहीं है। यही चेतन स्वरूप उसका आकार है। और यह आकार हमलोग केवल शुद्ध चेतनमयी आंखों से देख सकते हैं, जड़ आँखें उसे देख नहीं सकती।

कितने अभागों को ईश्वर में विश्वास नहीं होता। उनकी ज्ञानमयी चक्षुएं बंद हैं। जड़ आंखों से देख नहीं पाने के कारण वे समझते हैं कि ईश्वर है ही नहीं। जन्मान्ध जिस प्रकार सूर्य्य का प्रकाश देख नहीं सकता उसी प्रकार नास्तिक लोग भी ईश्वर में विश्वास करने में असमर्थ हैं।

स्वभाव से ही मनुष्यमात्र ईश्वर में विश्वास करते हैं। केवल वही लोग जो बाल्य-काल से ही असत्संग में कुतर्क सीखते रहे हैं कुसंस्कार के वश होकर ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते। इस अविश्वास से उनकी

अपनी ज्ञान के सिवा ईश्वर की क्या ज्ञान हो सकती है ?

वैकुण्ठ-धाम कहने से उसे कोई एक जड़मय स्थान नहीं समझना चाहिए। मद्रास बंबई, काश्मीर, कलकत्ता, लण्डन, पेरिस प्रभृति स्थान जड़मयी है। वहां जाने के लिए हमलोगों को अनेक जड़मयी भूमि पार करनी पड़ती है। जहाज या रेल-गाड़ी में भी बहुत समय लगता है, जड़ शरीर के पैरों से चलना पड़ता है। किन्तु वैकुण्ठ वैसा प्रदेश नहीं है। समस्त जड़ जगत के पार एक अवस्थान विशेष का नाम वैकुण्ठ है। वह है चिन्मय, नित्य और निर्दोष।

उस को आखें देख नहीं सकती, मन चिन्ता नहीं कर सकता। उसी अचिन्त्यधाम मे परमेश्वर विराजमान है। उसको प्रसन्न करने से हमलोग वहां जाकर नित्यकाल परमेश्वर की सेवा कर सकते है।

हमलोग यहां जिसको सुख कहते हैं वह नित्य अर्थात सदा रहनेवाला नहीं है वह थोड़ी देर के लिए रहकर पुनः लोप हो जाने वाला है। यहां जो कुछ है सभी दुःखमय है। जन्म प्राप्ति बहुत कष्ट और दुःख का विषय है। जन्म होने पर अहारादि द्वारा शरीर पुष्ट होता है, परन्तु भोजन नहीं मिलने से उसका अभाव क्लेशजनक होता है, पीड़ा सब जगह और सदा है। शीत, उष्ण इत्यादि नाना प्रकार के कष्ट है। इन समस्त कष्टों की निवृत्ति करने के लिए अनेक प्रकार के शारीरिक कष्ट स्वीकार कर धन उपार्जन करना पड़ता है। घर द्वार बनाए बिना रहा नहीं जाता। विवाह करके सन्तानादि की उत्पत्ति करनी होती है। बुढ़ापा आने पर कुछ अच्छा नहीं लगता। जीवन मे अन्यान्य लोगों के साथ वाद-विवाद इत्यादि अनेक प्रकार के दुःख-प्रद परिस्थितियां आती हैं।

संक्षेपतः संसार में "अमिश्रसुख" ऐसी कोई चीज नहीं है। दुःख और अभावों के क्षणिक निवृत्ति को लोग 'सुख' कहते और समझते हैं। इस संसार में रहना हमलोगों के लिये कष्टकर है।

परमेश्वर को वैकुण्ठधाम मे पाने में इन अनित्य सुख दुःखों का लेश भी नहीं रह जाता और अजस्र नित्यानन्द प्राप्त हो सकता है। अतएव परमेश्वर का तुष्टिसाधन करना ही हमलोगों का कर्तव्य है।

जिस समय मनुष्य का ज्ञान उदय होता है, उसी समय से ईश्वर की प्रसन्नता के साधन में व्रत होना श्रेयस्कर है।

"आज हमें संसार में सुख-भोग करना है फिर वृद्धावस्था में ईश्वर की तुष्टि का साधन कर लूंगा" ऐसे सोचनेवाले से कोई काम नहीं होगा। समय अति दुर्लभ है। जिस दिन से कर्तव्य-ज्ञान होजाता है उसी दिन से साधन करने का यत्न करना अति आवश्यक है।

यह मानव जीवन अत्यन्त दुर्लभ और अस्थिर है। किस दिन मृत्यु आजायगी कुछ कहा नहीं जासकता है।

बालकपन में ईश्वर का साधन नहीं हो सकता इस प्रकार सोचना अनुचित है। हमलोग इतिहासों में देखते हैं कि ध्रुव, प्रह्लाद ने अत्यन्त शैशवावस्था में ही, ईश्वर की कृपा

प्राप्त की थी। जब एक मनुष्य कोई काम कर सकता है तो इस में सन्देह नहीं है कि मानव-जाति भी उस काम को कर सकती है। विशेषतः जिस काम के करने का अभ्यास शुरू ही से किया जाता है वह स्वभावरूप हो जाता है।

परमेश्वर की प्रसन्नता के लिए अथवा स्नेह से मनुष्य जो यत्न करते हैं उसके चार कारण देखे जाते हैं भय, आशा, कर्त्तव्य बुद्धि और राग।

नरक-भय, स्वर्गाभाव: पीड़ा और मृत्युभय से जो परमेश्वर का भजन करता है वह भय द्वारा उत्तेजित होकर ईश्वर आराधन करता है। जो संसार में उन्नति लाभ के लिए और विषय-सुख के प्रार्थी होकर ईश्वर भजन करता है वह आशा द्वारा उत्तेजित होकर ईश्वर भजन करता है। किन्तु ईश्वर साधन में इतना पवित्र सुख है कि शुरू में भय और आशा से भी किया हुआ साधन अन्त में अनेक भय और आशा से छुड़ाकर शुद्ध-भजन में अनुरक्त करा लेता है।

जो सृष्टिकर्ता के प्रति कृतज्ञता के कारण उसकी उपासना करते हैं, वे कर्त्तव्य-बुद्धि द्वारा चालित होकर उस काम में प्रवृत्त होते हैं। परन्तु जो लोग भय, आशा और कर्त्तव्य-बुद्धि द्वारा चालित नहीं होकर स्वभाव से ही ईश्वर साधन में प्रेम करते हैं वे लोग राग द्वारा साधन में प्रवृत्त होते हैं।

किसी एक विषय को देखने के लिये ही जब चित्त उसके प्रति प्रवृत्ति द्वारा बिना विचार किये दौड़ता है, तो उसी को राग कहते हैं। यही प्रवृत्ति जब परमेश्वर की चिन्ता करने साथ से ही किसी के चित्त में उत्पन्न होती है तब वह राग द्वारा ईश्वर-भजन करता है।

भय, आशा और कर्त्तव्य-बुद्धि द्वारा जो साधक भजन में प्रवृत्त होते हैं उनका भजन सिद्ध नहीं है। राग मार्ग द्वारा जो ईश्वर भजन में प्रवृत्त होते हैं वे ही यथार्थ साधक हैं।

जीव और ईश्वर में एक नित्य सम्बन्ध है। साधन के उदय होने से उसी सम्बन्ध का परिचय मिलता है। यही सम्बन्ध नित्य है किन्तु जड़बद्ध जीव के लिये यह गुप्तरूप में रहता है। सुविधा पाकर ही यह प्रकाशित हो जाता है; दियासलाई घिसने से अथवा चकमक झाड़ने से जैसे अग्नि का प्रकाश होता है उसी तरह से साधन करने से यह सम्बन्ध प्रकाशित हो जाता है।

भय, आशा और कर्त्तव्य-बुद्धि से भजन करनेवाले बहुतेरों को यह सम्बन्ध प्रकाशित हो गया है। ध्रुव ने पहले राज्य प्राप्ति की आशा से ही हरिभजन किया था किन्तु साधन के द्वारा हृदय में पवित्र-सम्बन्ध जनित राग के उदय हो जाने से उसने सांसारिक सुख-जनक वरदान ग्रहण नहीं किया।

भय और आशा नितान्त हेय हैं। साधक को जब अनन्य बुद्धि होती है उस समय वह भय और आशा का परित्याग करता है। और कर्त्तव्य-बुद्धि ही उसका एकमात्र [illegible]

हो जाता है। परमेश्वर के प्रति राग का जबतक उदय नहीं होता है तबतक कर्त्तव्य-बुद्धि का परित्याग नहीं करना चाहिए। कर्त्तव्यबुद्धि से विधि का सम्मान और अविधि का परित्याग इन्हीं दोनों विचारों का उदय होता है।

पहले पहले महापुरुषों ने परमेश्वर के निमित्त साधन करने के लिए जिन सब पद्धतियों को विचार कर संस्थापित किया है और शास्त्रों में लिपिबद्ध किया है उन्हीं सबों का नाम विधि है। कर्त्तव्यबुद्धि के शासन होने से ही शास्त्र का शासन और विधि का आदर हो जाता है।

देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर निवासी मनुष्यों के इतिहास और वृत्तान्त की आलोचना करने से स्पष्ट प्रतीत होगा कि ईश्वर में विश्वास मनुष्य का साधारण धर्म्म है। असभ्य लोग वन के रहनेवाले पशुओं के ऐसे पशुमांस खा कर समय बिताते हैं तथापि सूर्य, चन्द्र, और बड़े २ पर्वतों, बड़ी २ नदियों एवं बड़े २ वृक्षों को दण्डवत् प्रणाम करते हैं और उनको दाता नियंता कह कर पूजा करते हैं, इसका कारण क्या है ?

जीव नितान्त बद्ध होकर भी जबतक उसका चेतन आच्छादित नहीं होता है वहां तक चेतन धर्म्म के परिचय स्वरूप कुछ-ईश्वर विश्वास अवश्य ही प्रकाशित करता है।

सभ्य अवस्था प्राप्त कर के जब वह नाना प्रकार के विद्याओं की आलोचना करता है उस समय कुतर्कों के द्वारा इस ईश्वर विश्वास को दबाकर नास्तिकता, अभेदवाद के अन्तर्गत निर्वाणवाद को मन में स्थान देता है।

ये कुत्सित विश्वास केवल अप्राप्तबल चेतन के अस्वस्थता के लक्षण हैं, ऐसा ही समझना चाहिए। नितान्त असभ्य अवस्था और ईश्वर विश्वास की उपयोगी अवस्थाओं में मानव जीवन की तीन अवस्थाएं आधान्तर में देखी जाती हैं।

इन तीन अवस्थाओं में ही नास्तिकवाद, जड़वाद, और सन्देहवाद और निर्वाणवाद रूप पीड़ाएं जीव की उन्नति के प्रतिबन्ध रूप से रहतीं या दुर्गति की ओर ले जाता है।

ऐसी बात नहीं है कि सभी मनुष्य इन अवस्थाओं में उपरोक्त रोगों से रोगी हो जाते हैं बल्कि बात यह है कि जो लोग इन सब रोगों से आक्रान्त हैं वे उन्हीं अवस्थाओं में बंधे रहकर उच्च जीवन के अधिकार से वञ्चित रह जाते हैं।

असभ्य वन के रहनेवाले सभ्यता नीति और विद्या नैपुण्य बल से अति शीघ्र ही वर्णाश्रम रूप धर्म्म का अवलम्बन करके ईश्वर भक्ति के साध्योपयोगी भक्त जीवन लाभ कर लेते हैं। यही मानव जाति का नैसर्गिक उन्नति का क्रम है, प्रतिबन्धकरूप रोग के आ जाने से जीवन की अनैसर्गिक अवस्था हो जाती है।

मनुष्यों ने भिन्न २ दीपों में रहकर भिन्न २ प्रकृति का अवलम्बन किया है। परन्तु मनुष्यों की मुख्य प्रकृति सब जगह एक ही है। गौण प्रकृति अवश्य ही भिन्न २ है। मनुष्य की मुख्य-प्रकृति एक होने पर भी जगत में

एक प्रकार के ऐसे दो व्यक्ति नहीं पाये जाते जिनमें सभी गौण प्रकृति एक सी हो।

जब एक गर्भसे जन्म ग्रहण करके दो भाइयों की आकृति-प्रकृति एक प्रकार की नहीं होती है तो किस प्रकार भिन्न देश के जलवायु में पैदा हुए मनुष्य एक प्रकार के हो सकते हैं। भिन्न२ देश के जलवायु, पर्वत, वनादि, खान-पान, वेश-भूषा, आहारादि सभी भिन्न२ प्रकार के हैं। इसी कारण से उन देशों के रहनेवाले मनुष्यों की आकृति, वर्ण, व्यवहार, पहिरावा, भोजन, निवासदेश भिन्न२ होते हैं। देश विशेष का सत्ताभाव भी पृथक् होता है। और उनके अन्तर्गत ईश्वर भाव मुख्यांश में एक प्रकार के होने पर भी गौणांश में भिन्न२ प्रकार के होते हैं।

इस प्रकार देश विदेश में जिस समय असभ्य अवस्था लांघकर मनुष्यगण को क्रमशः सभ्य अवस्था, वैज्ञानिक अवस्था, नैतिक अवस्था, और भक्तावस्था प्राप्त होती है उसी समय क्रमशः भाषाभेद, परिच्छेदभेद, भोज्य भेद, और मनोभावभेद से ईश्वर भजन की प्रणाली भी भिन्न२ हो जाती है।

निरपेक्ष होकर विचारने से मालूम होगा कि इस प्रकार के गौण भेद समूहों से कोई नुकसानी नहीं है। मुख्य भजन विषय में ऐक्य रहने से फल के समय कोई दोष नहीं होता। अतएव श्री मन्महाप्रभु की विशेष आज्ञा है कि विशुद्ध सत्त्वस्वरूप भगवान् का भजन करो किन्तु सामान्य भजन-प्रणाली की निन्दा करनी नहीं चाहिए।

उपरोक्त कारणों से भिन्न२ देशों के लोगों के चलाए हुए धर्मों के नीचे लिखे हुए पाँच भेद हैं:—

[१] आचार्य भेद।

[२] उपासक की मनोवृत्ति और भजन अनुभव भेद।

[३] उपासना की प्रणाली भेद।

[४] उपास्य-तत्त्व के सम्बन्ध में भाव और क्रिया भेद।

[५] भाषा भेद के अनुसार से नाम और वाक्यादि भेद।

आचार्य भेद से किसी देश में ऋषि लोगों का, किसी किसी देश में महम्मद साहब के ऐसे प्रचारक लोगों का; किसी देश में क्राइस्ट से धर्मात्मागणों का और देश-विदेशों में बहुतेरे विद्वानों का विशेष सम्मान होते देखा जाता है।

उन आचार्यों का यथायोग्य सम्मान करना उनके देशवासियों का कर्त्तव्य है परन्तु अपने देश के आचार्यों की शिक्षा को दूसरों से, निष्ठा के कारण, श्रेष्ठ समझने पर भी दूसरे देश में इस प्रकार के विवादजनक प्रतिष्ठा का प्रचार करना उचित नहीं है। ऐसा करने से जगत का कुछ भी मङ्गल नहीं होगा।

उपासकों की मनोवृत्ति और भजन अनुभव भेद द्वारा किसी देश में आसन पर बैठ कर श्वास प्राणायाम इत्यादि प्रक्रियाओं के द्वारा भजन किया जाता है। कहीं पर मुक्त कच्छ होकर अपने गुरु पू मन्दिर की ओर मुख करके खड़े होकर गिरकर दिन-रात में

पाँचरात्र उपासना करते हैं। कहीं पर हाथ जोड़कर दीनता प्रकाश कर ईश्वर का यशोगान करके भजन मन्दिर में वा अपने घर में ही पूजा करते हैं। इस प्रकार भिन्न २ प्रकार के वस्त्र भोग व्यवहारों के द्वारा शुद्धता और अशुद्धता के साथ पूजा करने की स्थानीय विधि देखी जाती है। भिन्न २ धर्म्मों की उपासना देखने से उपासना-प्रणाली के भेद देखे जाते हैं।

भिन्न २ धर्म्मों में उपास्य तत्व के सम्बन्ध में भाव और क्रिया भेद देखे जाते हैं। कोई २ चित्त में भक्तिपरिप्लुत होकर आत्मा में मन और जगत में परमेश्वर की प्रति-छविरूप श्री मूर्ति का संस्थापन करते हैं। और उस में तदात्म्य बोध द्वारा पूजा करते हैं। किसी २ धर्म्म में अधिकतर तर्क द्वारा मनही मन में ईश्वर भाव का गठन कर उसी के द्वारा उपासना करते हैं। प्रतिमूर्ति को स्वीकार नहीं करते। किन्तु वास्तव में यदि देखा जाय तो सभी प्रतिमूर्ति हैं।

भाषा भेद के अनुसार कोई कोई किसी २ विशेष नाम से ईश्वर को पुकारते हैं। धर्म्मों का भिन्न २ नाम दिया हुआ है। भजन के समय में भिन्न २ वाक्य बोले जाते हैं। इन भेदों के कारण जगत में भिन्न भिन्न धर्म समूह आपस में एक दूसरे से अत्यन्त पृथक होगए है यह बात नैसर्गिक है, किन्तु इन पार्थक्य के कारण परस्पर विवाद करना नितान्त अन्याय और हानिकारक है। दूसरों के भजन के समय में उनके भजन मंदिर में उपस्थित रहने पर ऐसा व्यवहार करना चाहिए और इस दृष्टिकोण से देखना चाहिए कि हमारे ही उपास्यदेव की एक भिन्न प्रकार से पूजा की जा रही है। हम अपने अभ्यासवश इस प्रस्तुत प्रणाली के द्वारा पूजा करने से असमर्थ हैं किन्तु इसके देखने से अपनी भजन प्रणाली में अधिकतर भावोदय होरहा है

स्मरण रहे परमतत्व एकही है दो नहीं। यहाँ पर जो ईश्वर चिन्ह देख रहा हूँ वह मेरे ही ईश्वर का है और इस प्रकार प्रार्थना करना चाहिए कि हे इस प्रकार के चिन्ह धारण करने वाले मेरे आराध्यदेव ! मेरा प्रेम आप बढ़ावे।

जो इस प्रकार व्यवहार नहीं करके भिन्न प्रणालियों के प्रति द्वेष, हिंसा असूया वा निन्दा करते हैं वे नितान्त असार और हतबुद्धि हैं। वे अपने परम प्रयोजन की उतनी परवाह नहीं करते जितना दूसरे से विवाद करने की।

इस में केवल एक बात विचारणीय है। भजन प्रणालीभेद की निन्दा करना असारता है किन्तु यदि उस में कोई प्रकृतदोष देखी जाय तो उसका आदर नहीं करना चाहिए बल्कि जहांतक हो सदुपाय से उसको दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए इस से जीव का मंगल होगा। इसी कारण से श्री महाप्रभु ने बौद्ध, जैन, और निर्विशेष वादियों के साथ विचार करके उन लोगों को सत्पथ पर लाने का उद्योग किया था। प्रभु का समस्त चरित्र प्रभुभक्तों के लिए आदर्श स्वरूप होना ही उचित है।

जिस धर्म्म में नास्तिकवाद, सन्देहवाद,

स्वभाववाद, आत्मवाद, और निर्विशेषवाद आदि अनर्थ हैं भक्तलोग उन धर्मों को धर्म्म नहीं कहते। बल्कि उनको विधर्म्म, छलधर्म्म धर्म्माभास वा अधर्म्म समझते हैं जहाँ तक हो सके इन सबों से जीव की रक्षा करनी चाहिए।

विमल प्रेम ही जीव का नित्यधर्म्म है। उपरोक्त पाँच प्रकार के भेद देखे जाते पर भी धर्म्म का असली उद्देश्य विमल प्रेम ही है वही धर्म्म धर्म्म है नाम भेद लेकर वितर्क करना अनुचित है धर्म्म का उद्देश्य यदि विमल है तो तो सब कुछ सल्लक्षण युक्त है। नास्तिकवाद, सन्देहवाद, अनीश्वरवाद, जड़-वाद, अभाववाद अर्थात कर्मवाद स्वभाववाद और निर्विशेषवाद स्वभावतः प्रेम के विरोधी हैं।

कृष्ण प्रेम ही विमल प्रेम प्रेम का धर्म्म ही यही है कि वह किसी एक तत्व का आश्रय लेकर ही रहता है एवं किसी एक तत्व का विषय कहकर वरण करता विषय और आश्रय को छोड़ देने से प्रेम का परिचय नहीं रहता जीव का हृदय ही प्रेम का आश्रय है और एकमात्र कृष्ण ही प्रेम के विषय हैं। पूर्ण विमल प्रेम उदित होनेही से उपास्यवस्तु का ब्रह्मत्व, ईश्वरत्व, नारायणत्व श्री कृष्ण स्वरूप में लीन हो जाते हैं।

कृष्ण नाम सुनते ही जो नाम पर विवाद आरम्भ करते हैं वे यथार्थतत्व से वंचित हैं नाम का विवाद निरर्थक है। नाम जिस विषय का उद्देश्य करता है वही जीव के प्राप्त करने की वस्तु है

सब शास्त्र शिरोमणि श्री मद्भागवत में जो श्री कृष्णचरितामृत वर्णित है वह विद्वद्वर श्री व्यास देव का साक्षात समाधि-लब्ध-तत्व है नारद के उपदेश से व्यास-देव ने जब भक्तिरूप सहज समाधि अवलम्बन की तब श्रीकृष्ण स्वरूप का दर्शन करके, जिस प्रकार से उस परम पुरुष कृष्ण से जीव को शोक, मोह, भयनाशिनी अर्थात उपाधि रहिता भक्ति [प्रेम] प्राप्त हो, ऐसे चरितामृत का वर्णन किया है। श्री कृष्णचरितामृत का पाठ या श्रवण करने के अधिकार भेद से जीव को दो प्रकार की प्रतीति होती है। एक का नाम है विद्वत्प्रतीति और दूसरे का अविद्वत्प्रतीति।

भगवान कृष्ण के प्रकट काल में जो कृष्ण चरित प्रापंचिक चक्षुओं के द्वारा देखा जाता है वह भी विद्वानों के लिए विद्वत्प्रतीति और जड़ बुद्धि वालों के लिए अविद्वत्प्रतीति हो कर विस्तार पाता है।

विद्वत्प्रतीति और अविद्वत्प्रतीति समझने की इच्छा रखनेवालों को षटसन्दर्भ भागवतामृत, या कृष्ण संहिता का अच्छी तरह पाठ और उपयुक्त व्यक्ति के निकट आलोचना कर लेनी चाहिए। संक्षेप में समझ लेना चाहिए कि चित्-शक्ति के द्वारा जो प्रतीति उदय होती है वह विद्वत्प्रतीति और अविद्या के आश्रय लेने से जो प्रतीति उदय होती है वह अविद्वत्प्रतीति है।

श्री कृष्णचरितामृत में अविद्वत्प्रतीति से अनेक विवाद उत्पन्न होते हैं। परन्तु विद्वत्प्रतीति में कोई विवाद नहीं है।

जिनको सर्वार्थ लाभ की कामना है वे शीघ्र ही विद्वत्प्रतीति प्राप्त कर लेते हैं। अविद्वत-प्रतीति लेकर विवाद करके अपने असली स्वार्थ की हानी क्यों की जाय ?

विद्वत्प्रतीति का थोड़ा सा दिग्दर्शन यहां पर कराये देता हूं। जो लोग जड़ चिन्ता को अतिक्रम कर के चित्तत्त्व के पाने के योग्य हैं उन्हीं के लिए विद्वत्प्रतीति सम्भव है। वे ही चित्त-चक्षुओं के द्वारा कृष्ण-रूप का दर्शन करते हैं। वे ही चित्त-कर्ण के द्वारा कृष्ण-लीला श्रवण करते हैं और चिद्रस द्वारा वे ही कृष्ण को सर्वभावना से आस्वादन करते हैं। सारी कृष्ण लीला ही अप्राकृत और जड़ातीत है। कृष्ण की अचिन्त्य शक्ति के द्वारा वे जड़ चक्षुओं के विषय हो सकते हैं। किन्तु स्वभावतः चक्षु प्रभृति सभी जड़ेन्द्रियां उस का साक्षात दर्शन नहीं कर सकते हैं।

श्री कृष्ण के प्रकट समय में जो सब भगवत लीलाए इन्द्रियों के द्वारा गोचर होता है वे भी विद्वत्प्रतीति के बिना वस्तुसाक्षात-कार रूप फल के देनेवाले नहीं होते। अतएव साधारणतः अविद्वत प्रतीति ही प्राप्त होती है। इस प्रतीति के कारण बहुतों को कृष्णतत्त्व अनित्य ही मालूम होता है। ये लोग कृष्ण के शरीर का जन्म, वृद्धि, क्षय की कल्पना करते हैं। अविद्वत प्रतीति के द्वारा निर्विशेष अवस्था सत्य और सविशेष अवस्था प्रापञ्चिक बोध होते हैं। और कृष्ण तत्त्व का विशेषत्व भी प्रापञ्चिक सिद्धान्तित होता है।

परम-तत्त्व क्या वस्तु है इसका निर्णय करना बुद्धि का काम नहीं है। अपरिमेय पदार्थ में ससीम तर्कयुक्ति क्या कर सकती है। अतएव जीव की भक्तिवृत्ति के द्वारा ही परम-तत्त्व का आस्वादन किया जा सकता है।

जिसको विमल प्रेम कहते हैं उसी की प्राथमिक अवस्था का नाम भक्ति है। कृष्ण-कृपा के बिना विद्वत प्रतीति उदय नहीं होती। क्योंकि कृष्ण-कृपा से ही स्वरूपशक्ति जीव की सहायता करती है।

परमतत्त्व के जितने प्रकार के भाव जगत में देखे जाते हैं। उन सबों में कृष्ण-स्वरूप भाव ही विमल प्रेम के लिए एकमात्र अति उपयोगी भाव है। मुसलमान सम्प्रदाय में जो अल्लाह भाव स्थापित हुआ है उससे विमल-प्रेम निःसृत नहीं हो सकता है।

अति प्रिय बन्धु पैगम्बर भी उसके स्वरूप का साक्षात नहीं कर सके, क्योंकि ऐश्वर्यतत्त्व सर्वगत होने पर भी ऐश्वर्य के कारण उपासक से अत्यन्त दूरगतत्व रहता है। ब्रह्म की तो बात ही चलानी बेकार है। नारायण भी जीव के सहज प्रेम से प्राप्य वस्तु नहीं हैं। कृष्ण ही एकमात्र विमल-प्रेम के साक्षात विषय हैं। और स्वरूप चिन्मय व्रजधाम में नित्य ही विराजमान रहते हैं।

कृष्ण का धाम आनन्दमय है। वहां ऐश्वर्य के पूर्णरूप से रहने पर भी उसका प्रभाव नहीं रहता, वहाँ सभी माधुर्य्यमय और नित्यानन्द-स्वरूप हैं। फल-मूल, किशलय ही वहां की सम्पत्तिः गो-धन समूह ही धन, गोपालगण ही सखा, गोपीगण

ही संगिनी, नवनीत, दधि, और दुग्ध ही खाद्य-द्रव्य और गाग-कानन और उपवन कृष्ण-प्रेममय हैं। यमुना नदी कृष्ण सेवा में लगी हुई है। समस्त प्रकृति कृष्ण की परिचर्या करती है।

जो दूसरे जगह इतिहास में राजा की पूजा और सम्मान लेता है वही इस भाव का एकमात्र पात्र है। कभी शासक के नृत्य और उनकी चोरी हो। ऐसा भी देखा जाता है। ऐसा नहीं होने से क्या क्षुद्र जीव परमात्मा के साथ प्रेम कर सकता है? परमतत्त्व परम लीलामय, स्वेच्छा-मय और स्वभाव आदि के निमल-प्रेम-सिन्धु जो ईश्वर हैं वह क्या मनुष्यों की तरह पूजा की लालसा करता है? क्या वह पूजा [illegible] होकर स्वयं तृप्ति प्राप्त करता है? अपने भक्तों की माधुर्य द्वारा मोहित करके परम चमत्कार लीलारस के आधार स्वरूप होकर वह कृष्ण आकुल वृन्दावन में रस के अधिकारी जीवगणों के साथ हँसना और खेलना स्वीकार करके आनन्द-लाभ करता है।

जो विमल और पूर्णप्रेम को एकमात्र प्रयोजन मान कर स्वीकार करते हैं वे क्या कृष्ण को छोड़कर और किसी दूसरे को उस प्रेम का विषय मानकर वरण कर सकते हैं? यदि भागवत में कृष्ण, वृन्दावन, गोप-गोपी, गो-धन, यमुना, कदम्ब प्रभृति शब्द कहीं पर नहीं भी देखे जाते तो भी विशुद्धप्रेम के साधकों के लिए उन लक्षणों में लक्षित नाम, धाम, उपकरण और लीला समूहों का प्रकारान्तर या वाक्यान्तर में अवश्य ही स्वीकार करना होगा। अत-एव कृष्ण को छोड़कर और कहीं विशुद्ध प्रेम नहीं है।

जबतक निष्कलराग का उदय नहीं होता तबतक साधक को कर्त्तव्यबुद्धि से गौण और मुख्य विधि का अवलम्बन करके कृष्णा-नुशीलन करना ही होगा।

शास्त्रों में विचार करने पर देखा जायगा कि कृष्ण-प्रेम साधन के केवल दो ही उपाय हैं—एक विधि और दूसरा राग। राग स्वतन्त्र है। राग के उदय होने पर विधि का बल नहीं रहता। जबतक राग का उदय नहीं होता तबतक विधि का आश्रय करना ही मनुष्यों का प्रधान कर्त्तव्य है। अतएव शास्त्रों में इन्हीं दो मार्गों का अर्थात् रागमार्ग और विधिमार्ग का उल्लेख है। रागमार्ग नितान्त स्वतन्त्र है इसलिए उसकी विशेष-व्यवस्था नहीं है। जो अत्यन्त भाग्य-वान और उच्चाधिकारी हैं वे ही केवल इस मार्ग से चलने में समर्थ हैं।

दुर्भाग्यवश जो ईश्वर को नहीं मानते उन लोगों के लिए भी कुछ विधियों की व्यवस्था की गई है। इन विधियों को नीति कहते हैं। नीति के द्वारा परमेश्वर के बारे विचार करने की व्यवस्था नहीं है। नीति कितना ही सुन्दर क्यों न हो, परन्तु वह मानव-जीवन की सार्थकता सम्पादन करने में समर्थ नहीं।

वह नीति नितान्त बहिर्मुख नीति है। ईश्वर विश्वास और ईश्वर के प्रति कर्त्तव्य-कर्म की व्यवस्था से युक्त होने पर ही नीति

मानव-जीवन की विधि कहीं जाकर आहत होती है।

विधि दो प्रकार की है—मुख्य और गौण। जब ईश्वर की तुष्टि-साधन ही जीवन का एकमात्र तात्पर्य्य है तब जो विधि उक्त तात्पर्य्य को ठीक रूप से लक्ष्य करता है उसी विधि का नाम मुख्य विधि है और जो कुछ व्यवधान के साथ लक्ष्य करता है उसे गौण विधि कहते हैं।

एक उदाहरण देने से यह विषय साफ हो जायगा। प्रातः स्नान एक विधि है प्रातः स्नान करने से शरीर स्निग्ध और रोगशून्य होकर मन को स्थिर करता है मन के स्थिर होने से ईश्वरोपासना होती है। यहां पर ईश्वरोपासना जो जीवन का तात्पर्य्य है वह व्यवधानशून्य नहीं हुआ क्योंकि स्नान का व्यवधान-फल शरीर स्निग्धता हुई। शरीर की स्निग्धतारूप फल यदि इस विधि का चरम-फल समझा जाय तो ईश्वरोपासनारूप फल लाभ नहीं हुआ। ईश्वरोपासनारूप फल और स्नानविधि के बीच में अन्यान्य फल रहने से ये अन्यान्य फल व्यवधानरूप हैं। जहाँ पर व्यवधान है वहाँ व्याघात की भी सम्भावना है। मुख्य विधि का साक्षात फल ही भगवदुपासना है। विधि और उपासना के बीच अवान्तर फल नहीं है। हरिकीर्तन और हरिकथा श्रवण को मुख्यविधि कहते हैं। क्योंकि इस विधि का साक्षात फल ही भगवदुपासना है। हरिभक्ति मुख्यविधि है इसको सर्वदा स्मरण रखने पर भी शरीर-यात्रा निर्वाह के लिए कुछ गौणविधियों का अवलम्बन करना जरूरी है क्योंकि शरीर-यात्रा निर्वाह नहीं होने पर जीवन नहीं रहेगा। और जीवन नहीं रहने से हरिभजन रूप मुख्यविधि किस प्रकार अवलम्बित होगा।

गौणविधि के सहज लक्षण यही है कि वे नर-जीवन के अलंकाररूप समस्त पार्थिव-विद्या शिल्प और कारुकर्म्म, सभ्यता, परिपाट्य और अध्यवसाय एवं शारीरिक, मानसिक और सामाजिक नीति समूहों को क्रोड़ीभूत करके नर-जीवन को अकपटरूप से भगवत्चरणामृत का सेवन कराते हुए अङ्गीकार करते हैं।

मनुष्य वस्तुतः मुख्यविधि के अनुचर होकर अपनी अधीश्वरी की कृपा से उस चरणामृत के द्वारा नर-जीवन को साधनमय और फल-काल में परमानन्दमय कर देता है।

वन्य-जीवन, सभ्यजीवन, जड़विज्ञान सम्पन्न जीवन, निरीश्वर नैतिक-जीवन, सेश्वर नैतिक-जीवन वैधभक्त-जीवन, प्रेमभक्त-जीवन इस प्रकार नाना प्रकार के नर-जीवन देखे जाते हैं। इस पर भी सेश्वर नैतिक जीवन से ही प्राकृत-नरजीवन का आरम्भ स्वीकार किया जाता है। आस्तिक नहीं होने से नरजीवन पशु-जीवन से अच्छा नहीं हो सकता। प्रकृत-जीवन सेश्वर-जीवन की विधि और निषेध को लेकर काम करता है। सभ्यता, जड़विज्ञान-सम्पत्ति और नीति-सेश्वर नैतिकजीवन किस प्रकार भक्त-जीवन में परिणत होकर चरितार्थ लाभ करता है।

जीव का धर्म्म ही जैवधर्म है। मानव अवस्था में जैवधर्म को मानवधर्म कहते हैं। वह धर्म दो प्रकार का है:—

• गौण और मुख्य वा साम्बन्धिक और स्वगत। गौण का साम्बन्धिक धर्म जड़ है क्योंकि यह जड़ का गुण और सम्बन्ध का आश्रय करके विद्यमान है। मुख्य वा स्वरूपगत धर्म शुद्ध जीव का आश्रय करता है। मुख्यधर्म ही जैवधर्म है। गौणधर्म केवल जड़ गुण के वश होने के कारण मुख्यधर्म की गर्णी भूत अवस्था मात्र है। जड़ गुण के दूर होने से जैवधर्म केवली भूत होकर मुख्य धर्म हो जाता है। गौणधर्म को उपाधियुक्त धर्म भी कहते हैं। और उपाधि दूर होने से वही मुख्य धर्म हो जाता है। गौण विधि और गौण निषेध अर्थात पुण्य और पाप गौण धर्म के अन्तर्गत हैं। गौण धर्म जीव को परित्याग नहीं करता केवल जीव की गुणयुक्त अवस्था में मुख्य धर्म के रूप में बदल जाता है।

जड़बद्धावस्था में मुख्यधर्म के बदले हुए नकली रूप में गौण धर्म का जन्म होता है। गौणधर्म का यथाभूत परिणति से मुख्यधर्म पुनः उदित हो जाता है।

इस लेख में पहले 'ईश्वर' फिर भगवान शब्द स्थान में 'कृष्ण' शब्द व्यवहृत हुआ है। पाठकवर्ग ऐसा नहीं समझें कि 'ईश्वर' 'भगवान' और 'कृष्ण' पृथक् २ तत्त्व हैं। कृष्ण ही एकमात्र स्वरूपतत्त्व और जीव के विमल उपासना के विषय हैं। कृष्ण ही भागवततत्त्व का पूर्ण माधुर्य्य प्रकाश हैं। जिस समय अन्यान्यतत्त्व वा पदार्थ के साथ साम्बन्धिक रूप से कृष्ण का विचार किया जाता है उस समय उनको ईश्वर भाव से देखा जाता है एवं ईश्वर नाम का व्यवहार किया जाता है। इस लिये इस लेख के प्रथम में पदार्थमय कृष्ण नाम से परिवर्तित होकर 'ईश्वर' नाम से व्यवहृत हुआ है। ईश्वर भाव केवल स्वरूपतत्त्व कृष्ण की बनाई हुई पदार्थों के ऊपर स्वभाविक ईशिता के परिचय के अलावे और कुछ नहीं है। पदार्थ संख्या के जगह पर 'ईश्वर' नाम ही सर्वत्र व्यवहार हुआ है:— जैसे चित अचित और ईश्वर।

विविध प्रसंग

गया श्री गौड़ीय मठ

गत ३० दिसम्बर शनिवार को श्रीविष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीलभक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद का विरहमहोत्सव परमाराध्यतम श्री श्रील आचार्यदेव के कृपाशीर्वाद से श्रीगौड़ीय मठ गया में पाठ कीर्तन, वक्तता हरिकथा आलोचना के साथ सुचारुरूप से सम्पन्न हुआ और उसके बाद समागत बहु-सज्जन वृन्द को विचित्र महाप्रसाद वितरण किया गया।

श्रीधाम मायापुर में

त्रिपुरा की महामान्या राजमाता

स्वाधीन त्रिपुरा के महाराजा की राजमाता श्री युक्ता अरुन्धती देवी महोदया ने राजपरिवार के गृह चिकित्सक और कई एक सम्भ्रान्त देवियों के साथ गत १५ दिसम्बर १९३९, शुक्रवार को मोटर के द्वारा श्रीधाम मायापुर में शुभागमन किया। उनलोगों ने श्रीचैतन्य मठ, श्रीयोगपीठ श्रीमन्दिर और चांदकाजी की समाधि प्रभृति के दर्शन के बाद श्रीदण्डि-स्वामी श्रीमद्भक्तिसम्बल भागवत महाराज अध्यापक ब्रह्मचारीभक्तिशास्त्री भक्तिठाकुरविनोद इन्स्टिट्यूट के प्रधान शिक्षक श्रीपाद किशोर-मोहन भक्ति बान्धव बी० एल श्रीपाद नन्द-गोपाल ब्रह्मचारी भक्तिशास्त्री इत्यादि प्रमुख वैष्णववृन्द के श्रीमुख से श्रीधाम महिमा के सम्बन्ध में हरिकथा श्रवण किया। इस के बाद महाप्रसाद की सेवा कर करीब ४ बजे कलकत्ते की ओर यात्रा की।

॥ श्री हरि नाम प्रचार ॥

युक्त प्रदेश

हर्ष का विषय है कि युक्त प्रदेश के सितापुर जिलान्तर्गत मुकाम मिशृख में ता: १८-१-४० को एक सभा आयोजन किया गया जिसमें जनता की उपस्थिति लगभग ४०० से अधिक थी। इस सभा में कलकत्ता श्रीगौड़ीय मठ के सेवक श्रीसत्यनारायण दासाधिकारी जी कई ब्रह्मचारियों के साथ पधार कर दो घंटे तक हरिकीर्तन की व्याख्या किया कि श्रोतागण आप के कीर्तन को सुनकर बहुत आनन्दित हो गये।

सभा के आरम्भ और अन्त में महाजन पदावली और महामंत्र का कीर्तन आपने अपूर्व और सुललित स्वर से किये। जिसे श्रवण कर उपस्थित भक्तवृन्द आनन्द विभोर होगये।

इसके दूसरे दिन भी जनता की आग्रह से आपने एक और वक्तृता देने की स्वीकृति दी। तदनुकूल नवादा ग्राम के रहने वाले पंडित श्री लोकनाथ मिश्र जी का निमंत्रण तथा जनता के अनुरोध पर मिश्र जी के घर पर जाकर पाठ कीर्तनादि किये।

ता: २०-१-४० को उक्त पंडित जी की आगन में भी एक सभा हुई। उसमें छायाचित्र द्वारा श्री भगवान की लीला दिखाई गई। तदुपरान्त ब्रह्मचारी जी का सुललित और सार गर्भित व्याख्यान हुआ, जिसे सुन जनता मुग्ध हो गई और इनके शब्दों में हरिकीर्तन पुनः श्रवण करने का अपनी इच्छा प्रकट की। शेष

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

श्री चैतन्य शिक्षाष्टक

Printed by A. K. Narayan,
at the LAKSHMI PRESS, GAYA
and
Published by Sree Satya Govind Brahmacharya,
GOUDIYA MATH, GAYA.